



# मन की रानी

श्री कृष्णजीवन भार्गव  
द्वारा  
संकलित एवं संपादित

नवयुग ग्रन्थ कुटीर  
धीकानेर

प्रथम संस्करण

मूल्य ३.०

संकाशक

रावयुग सत्य कुटीर

रीकानेर

मुद्रक

एच.के.समल प्रिंट

बीकानेर

## सम्पादकीय निवेदन

श्री संभूदयाल सकसेना को साधारण पाठक कवि, नाटककार और उपन्यास लेखक के रूप में ही जानता है। परन्तु वे एक अच्छे कथाकार भी हैं। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के आदि काल से कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया है। संकटों की संख्या में उनकी कहानियाँ निरन्तर घुकी हैं। सामाजिक, ऐतिहासिक पौराणिक सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और बासोपयोगी अपनी कहानियों में उन्होंने नीति धर्म, दर्शन मनोविश्लेषण सामाजिक स्वाय, विज्ञान आदि सभी विषयों को स्पर्श किया है। उनकी कहानियों में सर्वत्र सुश्रुति और मानवतावादी दृष्टिकोण की झलक मिलती है। राष्ट्रीयता और जनजाति के हामी के रूप में वे कई कहानियों में जिस प्रकार झगड़ी हैं उसी प्रकार जीवन-सौंदर्य की व्याख्या में प्रतिष्ठीत हैं। उनकी भाषा कथा की भाषा के साथ तादात्म्य लेकर चलती है। बासोपयोगी कहानियों में वे प्रदुष्ट ढंग से सरल और सुवोध शैली को अपनाते हैं, छोटे-छोटे पात्रों में चुस्त और गठी हुई भाषा से उनकी कहानियाँ निखर उठती हैं। बेटी बिदेसी साहित्य को मथकर उन्होंने वाचकों के लिए अनेक काव्यमय कहानियाँ गढ़ी हैं। उनको पढ़ते वे चर्ची सकते नहीं हैं। उनकी सतयुग की कहानियाँ, श्रुतियों की कहानियाँ, देवताओं की कहानियाँ, जान की कहानियाँ, राजकुमारों की कहानियाँ राजकुमारियों की कहानियाँ, भाई बहनों की कहानियाँ, मुनहरी कहानियाँ आदि सुन्दर पुस्तकें हैं, जो उनकी सजीव भाषा ऐसी के कारण बहुत प्रोत्साहनी हो उठी हैं। उनके समालोचकों के ठीक ही कहना है

कि वे कथा के मर्म को भाषा की सावसण्या से रमणीय बना देते हैं उसका श्रु गार कर देते हैं।

प्रस्तुत संकलन में उनकी बालोपयोगी कहानियों में से एक भी नहीं ली गई है। कारण, इस संकलन का विषय बालकभाषा नहीं है। प्रीढ़ पाठकों के सहृदय से किया गया संकलना ली की कहानियों का यह संग्रह उनके कथा-साहित्य का एक खंड है। मेरा विचार है कि ऐसे ही तीन और खंडों में उनकी शेष कहानियों को भी संकलित कर दिया जाय। उनमें अंतिम खंड बालकभाषा का होगा। हिंदी पाठकों की बढ़ती हुई संख्या हमारे लिए एक बड़ा प्रोत्साहन है। मैं आशा कर सकता हूँ कि यह कार्य शीघ्र संभव हो सकेगा।

इस संग्रह से यह स्पष्ट हो जायेगा कि हिंदी कथा-साहित्य को संकलना ली की देन बहुत बड़ी है और उसका यथावत भूषण करना अपनी श्रेय है। जीवन के एक व्यापक क्षेत्र को उन्होंने अपनी कहानियों में व्याख्या प्रस्तुत की है और अनेक सजीव चरित्रों की अवतारणा करने में सफलता पाई है। साहित्य के क्षेत्र में एक युग पर्यन्त उन्होंने साधना की है, उसकी श्रंखला उनकी कहानियों के माध्यम से हमें प्राप्त होती है। साहित्य की बढ़ती हुई पधिकृतियों और स्थायी भूत्यों की संपदा से भी पाठक का परिचय कराने में वे समर्थ हैं।

# सूची

१ विज्ञ-परिचय		१
२ मलिन		१५
३ मन्त्रमु		२५
४ कृष्णार		४१
५. धर्म		४२
६ वनमता		६०
७. वनवाताप		७४
८. अर्थ		८२
९. प्रतिष्ठा		९०
१० निराशा		९४
११ अनादी काष्ठ		१०१
१२ लैलिक	--	१०६
१३ मुत्ताकिर		११५
१४ इलाज	--	११५
१५. आध्यात्म	--	११५
१६ आध्यात्मिनी		११५
१७ अकिम्पवाली	--	११५
१८. यात्रा	--	११५
१९. मन की रागी		११५
२०. मातेस्वर		११५
२१ 'बहु धर्म में होती'		११५
२२ विवाहिता कुमारी		११५
२३ आक मु की	--	११५

२४	मृत्यु-श्रीमा		२४१
२५	मिरोची	~	२४४
२६	जंजी	~	२४५
२७	तारा	~	२४७
२८	निबहुँ हय		२४८
२९	हत्पारा		२५१
३०	ज्यजमान		२५२
३१	निष्कल-स्वप्न		२५३

## चित्र-परिचय

सामने नदी थी, उसके पार अरत होता हुआ सूर्य और पीछे बहुत दूर दूरमई गेमुली की छाया । बिजकार हेमेश्वर भागा था रहा था । सतरंगी आकाश की ओर में भावों को बाधित करने छोले और तबि की बाहर छोड़े सहरों में प्रसन्न अनुभूति को समीपता प्रदान करने । वह इस शौक में भी अपने को बहुत पीछे समझता था क्योंकि उसकी कहपना पहले ही से बड़ा पहुंच चुकी थी । उसके पैर पूरी गति से आगे बढ़ रहे थे कि वह एकाएक रुक गया । वह ऐसे ठहर गया, जैसे बड़े हो जाने से मोटर ठहर जाती है और उससे के शहिनी ओर मकान की दीवार से सटकर समझित शिफारी की तरह लका हो गया, जिसके बरा दिलासे डुलने से चिह्नित के ठक जाने की शंका हो । उसके मुह पर आनन्द का चेला भिन्न था और उत्तेजना ऐसी प्रकट हो उठी थी कि वह अपने को न रोक सका । मुह से निकल ही गया, नही भण्डा है, हम स्वयं ही नहीं जानते कि हम कितने सुन्दर हो ! नहीं तो पैरों से रौंदी जानेवाली मूल में सोठने की कमी इच्छा नहीं करते । सब तो यह है कि दुम्हारा अज्ञान ही संसार का सबसे मूल्यवान् कन है ।

दीवार के उस ओर एक अचोच बालक भिलकारिण मरता हुआ



अपने सिलौने के धाव धूल में सोझ रहा था । बेसी मनोहारी कृति थी । मात्स्य पकड़ा था, मानों सत्तार की बिम्बा की कृपा वहाँ से उतरकर माप गई हो, या विश्वम्भरी कण्ठ की अन्धेरी रात का अन्त कर देने के लिये मयवान् का हनुमन्ती पूष्णी की गोच में स्त्रीका करने का गने हो ।

उसने बड़े कद से बड़ा कड़े कड़े उस वास्तव की सरल चेष्टाओं को देखा । उसका अपूर्व सीङ्गमार्ग, उसकी मिहन्त चपलता का प्रत्येक ठमार, कौतूहल-पूर्व निरव के प्रति उसका सरल मनोविकास, उसका अम्लान रूप उसके अंगों की कठन, यहां तक कि उसकी प्रत्येक मासमंजी को निरुद्ध ने अपने स्मृति-श्लोक में बन्द कर लिया । प्रायोजन की उत्कृष्टतम अवस्था को प्राप्त कोई आत्मा जब समाधि-मग्न होकर अनन्तर-नार में लक्ष्मी हो जाती है, तो उसका शब्द-बाल शून्य हो जाता है । उसी तरह वह अपनी सुब-सुब मूक मय । उसे वास्तव की प्रत्यक्ष मूर्ति तक का ध्यान न रहा । उसे वह भी पता न चला कि जब वास्तव की मूर्ति आकर उसे उठा ले गई । उसके स्मृति-श्लोक में जिस धर्माङ्ग सुन्दर वास्तव की छवि हुई थी वह उसी के ध्यान में लम्बव हो रहा था, और उसी को जब वास्तव की वास्तव मूर्ति समझकर, खेद में उठा लेने के लिये ध्येयता के धाव बढ़ा, तो बीमार के धिर टकरा मय । ध्यान की मात्ता बिखर गई । वास्तव को वहाँ न देखकर वह अपनी दशा पर आप ही लम्बा का अनुभव करने लग्य । उसने बीहड़ फिरकर देखा कि कोई उसकी दशा पर तरल की हँसी तो नहीं ईत रहा है । इकर ठकर दूर तक केवल धम्य का अन्धेरा और भी गाढ़ा हो रहा था । वह झपटकर अपनी रास्ते की ओर चला दिया ।

मरी की लहरों पर अब भी हलकी लालिमा की छ-एक छिरछी सलमला रही थी। आकाश ने नीले रंग पर कुछ-कुछ मुनहले बादलों की बाहर छोड़ रखी थी। हरन मनोरम था, पर निजकार के मन में जिन स्वर्गीय कुसुमों का चयन हो रहा था, उनकी छत्र ही निरासी थी। उसने एक बार भी झेलें उठाकर अपनी स्वामाधिक व्यक्तता से नहीं देखा।

हाथ से निकला हुआ रागन फिर प्राप्त करके जिननी सुखी हुमायूँ को न हुई होगी, उतनी सुखी उसे हा रही थी। उसकी नसों में आनन्द की सरसरहट फैल गई थी। न वहाँ से उठने की इच्छा होती थी, न कुछ देखने की। किन्तु झेलों में उस भुवन मोहन छवि का प्रतिबिम्ब पक चुका था, उनसे देखता भी और क्या। अपनी गतीबी की घाटी क्या भूल गई थी। क्या ही आत्मस्मृति थी। घर में, छो के अग्रज को माच-मोचकर बच्चे चीन रहे होंगे। पिण्ड के मासिक की नाक भी बर्मीन आसमान के इशिकोण नाप रही होगी। परवा कोई तैयार नहीं हुआ। आबकस दरवाजे का उघड़न भी कम हो गया। आत्मदानी बटुने की सूरत बिना मर्दानता पैदा किए हो नहीं सकती। जीवन-ममल्ल ठलमड़ी हुई थी—पारिवारिक क्या बढ़ा हुआ था, फिर भी बेफिद्वी की इतनी तस्लीनता और मविष्य की इतनी उरमल आशा।

बाहर चन्द्रमा का प्रकाश, कमरे में निजकार की तुलिका का रंग एक भाव से फैल रहे थे, और उन्हीं के साथ उसकी अकल्पित कल्पनाओं की छत्र बिखर रही थी। वह निज की एक-एक रेखा पर मुग्ध हो रहा था। अपनी अमर कला के गौरव पर उसका हृदय टढ़ता पड़ता था। बेचारी

अपने लिलौने के साथ धूल में खेल रहा था । वैसी मनोहारी दृशि थी ।  
माझम पकता था, मानों सधर की मित्रा की छाया वहाँ से उरकर भाग  
गई हो, या मित्रव्यापी कस्तुर की अग्नेयी रास का अन्त कर देने के लिये  
मगधान् का शुभ्यलौ शून्धी की गोद में झीका करने का गवै हों ।

उसने बड़े कल से वहाँ लड़े लड़े उस बालक की सरल चेष्टाओं  
को देखा । उसका संपूर्ण चौकुम्हार, उसकी निहन्द चपलता का प्रत्येक  
ठमार, औरस-पूरी मित्र के प्रति उसका सरल मनोविकार, उसका  
अन्तान रूप उसके अर्थों की गठन, वहाँ तक कि उसकी प्रत्येक भावभंगी  
को चित्रकार ने अपने स्मृति-लोक में कन्द कर लिया । प्राचाप्यम की  
उत्कृष्टतम अवस्था को प्राप्त कोई आत्मा जब समाधि-मग्न होकर अनन्द-बार  
में लक्ष्मी हो जाती है, तो उसका बाह्य-रूप शुभ्य हो जाता है । उसी तरह  
वह अपनी सुन्दर धूल मग्न । उसे बालक की प्रत्येक मूर्ति तक का ध्यान  
न रहा । उसे वह भी पता न चला कि कब बालक की ध्वं जाकर उसे डठा  
ले गई । उसके स्मृति-लोक में जिस सर्वज्ञ सुन्दर बालक की छवि हुई थी  
वह उसी के ध्यान में लम्बन हो रहा था, और उसी को जब बालक की  
छाया मूर्ति समझकर, गोद में डठा लेने के लिये व्यग्रता के साथ बढ़ा,  
तो दीवार के सिर टकरा गया । ध्यान की मात्ता बिसर गई । बालक को  
वहाँ न देखकर वह अपनी दशा पर आप ही लज्जा का अनुभव करने लगा ।  
उसने पीछे फिरकर देखा कि कोई उसकी दशा पर तरस की दृष्टि तो नहीं  
ईस रहा है । इधर उधर दूर तक केवल सध्य का अन्धेरा और भी गहरा  
हो रहा था । वह झपटकर अपने रास्ते की ओर चल दिया ।

नदी की सहरों पर अब भी हलकी साहिमा की दो-एक फिरौं मलमला रही थीं। आकाश ने नीले रंग पर कुछ-कुछ सुनहले बादलों की बाहर ओढ़ रखी थी। इतना मनोरम था, पर विनकार के मन में तिन स्वर्गीय कुसुमों का चपल हो रहा था, उसकी कृप ही निरासी थी। उसने एक बार भी झौंसें ठठाकर अपनी स्वाभाविक व्यथना से नहीं देखा।

हाथ से निकला हुआ राग्य फिर प्राप्त करके कितनी लुगी कुमायू को न हुई हामी, उसनी लुगी उसे हा रही थी। उसकी मछों में आनन्द की छरछरह फैल गई थी। न वहाँ से उठने की हथ्था होती थी, न कुछ देखने की। तिन झौंलों में उस युक्त मोहन लुबि का प्रतिबिम्ब एक चुका था, उनसे देखता भी और क्या ? अपनी गरीबी की सारी कथा भूल गई थी। क्या ही आत्मनिम्नृति थी। घर में, ली के अम्बल को नोच-नाचकर बच्चे चीन्च रहे होंगे। पिण्डर के मालिक की नाक-भौं कमील-आसमान के दम्भिरा माप रही होगी। परवा कोई तैयार नहीं हुआ। आचकल दर्शकों का उद्यन भी कम हो गया। आमदनी बढ़ने की शुरुत बिना मनीनता पैश किए हा नहीं सकती। जीवन-समस्या ठलभी हुई थी—वारिबारिक कष्ट बढ़ा हुआ था, फिर भी बेचित्री की इतनी सस्तीनता और भविष्य की इतनी उम्कन आस्य।

बाहर चन्द्रमा का प्रकाश, कमरे में विनकार की तृष्टिका का रंग एक भाव से फैल रहे थे, और उन्हीं के साथ उसकी अकल्पित कल्पनाओं की लय बिन्दर रही थी। वह विन की एक-एक रेखा पर मुग्ध हो रहा था। अपनी अमर कला के गौरव पर उसका हृदय ठकला पड़ता था। बेचारी

कलावती पति की यह दशा देखकर बकराहट से लड़ी हो गई । बच्चों की भूल-भ्रम और गृहस्थी के प्रबन्ध का सारा कार्यक्रम उसे भूल गया । उसने आगे बढ़कर कहा—भार ! यह क्या !

विश्वकार के हाथ में विश्वपट कौप गया । उसने फिर-फिर कलावती को देखा और मुस्कराकर कहा—क्या बरा रही हो ?

‘मैं बरा रही हूँ या तुम ?’

‘मैं !’

‘हाँ—अभी-अभी क्या कर रहे थे ? भगवान् जाने मेरा तो हृदय कौप गया ।’

‘तो आओ अब हम ठोके खाँस कर रहें ।’

‘कोई जरूरत नहीं—पर मैं कहे देती हूँ । इस तरह पागल जैसी हरकतें करके वृमहों का परेशान न किया करो ।’

‘बहुत अच्छा सरकार, पर जिसे देखकर मैं पागल हो सकता हूँ, उसमें कुछ अभुतपूर्व विशेषता होगी । यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा ।’

‘जहाँ, तुम जो ही बका करत हो । वहाँ रात दिन भिन्ता खाए जा रही हो ।’

‘भिन्ता काहे की ?’

‘घर की—बच्चों की । तुम तो याद रखते हो, तुम्हें पस पता, वहाँ तो हर समय मेरे मिर पर मूँग दली जाती है ।’

‘तो, देखा ! परमात्मा ने साक्षात्, तो तुम्हारी ये सभी भिन्ताएँ तुम और आनन्द में विलीन आरंगी ।’—यह कहकर उसने स्त्री-के हाथों में

चित्रपट रक्त पिम्प ।

पति की चित्रकला पर कलावती की आँखें हर्ष से सजल हो गई ।  
आज उसने अपनी हीन वशा में भी अपूर्व गौरव का अनुभव किया । उसने  
कहा—“ऐसी सुन्दर और सजीव सृष्टि करमेवाला बुनिर्वा की आँखों में  
कबतक क्षिपा रहेगा ?”

“तुम्हारी वैसी प्रशंसिका पाकर भी क्षिपा रहूँगा ऐसा मैं नहीं  
समझता ।”

“प्रशंसा तो नहीं, अगर कहो, तो इसका चित्र परिचय मैं ही  
लिया हूँ ।”

“अबश्य—इसके लिये पूछने की क्या आवश्यकता ?”

“तो इसका नाम जानते हो क्या होगा ?”

“क्या होगा, बोझो तो सही ।”

“साधार-शैशव ।”

“भई बाह ! यह तो बेंबा कुआ नाम है ।”

बस कलावती ने चित्र के नीचे ‘साधार शैशव’ लिख दिया और  
एक उसी साइज की कापी लेकर उसका विस्तृत परिचय लिखत बैठ गई ।  
कमल की कल्पना थी । हेमन्त बैठा अपनी स्त्री की लेखन प्रतिभा पर  
आश्चर्य और आनन्द से फूला न समाता था । चित्र शिक्ष के बड़े बड़े  
आचार्य और पत्र-संपादकों की लेखनी बर्हा पर मौन और  
रूढ़ हो जाती है, वहाँ पर उड़लती हुई माया का वह सजीव चित्र था किन्तु  
उस घरे कौशल में सांख्यिक और आदर्श-जीवन की मलक के साथ साथ

## चित्र परिचय ]

एक प्रकार की गूढ़ात्मक-कल्या की छाया,लैसिका के अपने जीवन का अत्यन्त प्रतिबिम्ब होकर पड़ रही थी। फिर भी ऐसा सुन्दर चित्र-परिचय एक अपूर्ण साहित्यिक प्रयास था।

कलावती की कोमल उँगलियों ने लिजना समाप्त किया, और चित्रकार ने उन्हीं पकड़कर चूम लिया। उसने अपना हाथ खींच लिया, और कुछ कहने को ही थी कि नीचे से पिण्डर के लीफर ने आवाज दी। सब काम बन्द हो गए। दोनों विन्मुक्ति और चौदई-कला के स्वर्ग से उतरकर फिर दूसरे लोक में आ गए। चित्रकार के सामने पिण्डर हास की गैलरी में घूमते हुए परबों का दृश्य आ गया, और कलावती को मिठाई के सिने बूँदें हुए बच्चों का। उसने पंक्ति के सामने पड़खी की कटिनाइयों को पेश किया। चित्रकार प्रसन्न करने का आश्वासन देकर बाहर निकल गया। कलावती ने चित्र और उसका परिचय दोनों लेकर बस में रक दिए।

×

×

×

उस सप्ता के समय एमला प्रदर्शनी के चित्र कक्ष में "साकार-शैत्राण" की धूम मच रही थी। सारी प्रदर्शनी की मीक उसी चित्र पर तमकती पड़ती थी। हेमेश भी जब अपनी विभिन्न वेश-भूषा के साम चित्रकक्ष में गया, और उस कीगूला-पूर्ण कलाकृति को देखने के लिये जाने लगा, तो लोगों ने उसे तुरी तरह से बसका देकर एक ओर कर दिया। उसका दिल बुला जाकर, पर संसार के ऐसे अनेक अनुभव उसे अक्षर हो चके थे। जगजिने वह अपनी सासना का दबाकर चुपचाप दूसरी ओर

बताता गया ।

बाहर निकल कर उसने जहाँ देखा, वहाँ लोगो की जिज्ञा पर "साकार शेरान" और चित्रकार 'हम्रे' का ही नाम सुन सकता था । खर भर के लिये हम्रे ने सोचा कि वह पागल तो नहीं हो गया है । उसने कभी कोई चित्र किसी मुमयरा में नहीं भेजा था । वह फिर से एक बार चित्रकक्ष में जाने को व्यग्र हो उठा ।

इस बार वह अलपूर्यक मीढ़ को चौरकर वहाँ पहुँच गया । चित्र को ध्यान से देखा, पहचाना और आनन्द से टकस्य पड़ा । उसे आश्चर्य था इस बात का हुआ कि वह यहाँ आया कैसे । उसी विचार में हुआ वह कड़कर चित्र को ठटान लगा, त्यों ही पीछे से गाड़ का लम्बा चालुक उसकी पीठ पर पड़ा । वह बिलबिलाकर खोल पड़ा, पर किसी ने सुना नहीं । एक-दो सेकंड में मीढ़ का बक्का त्याकर वह समुद्र की लहरों के फेन की तरह बाहर आ पड़ा । वह हर्ष और तिरस्कार के मिश्रित भाव में उस आर जाता गया, जहाँ लोगो की मंडलियों उस चित्र तथा चित्रकार की प्रशंसा करके अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दे रही थी ।

एक पर्व-लिखी युवती अपने साथी-युवक से कह रही थी—चित्रशिल्प का ऐसा नमूना कौन तो जीवन में नहीं देखा । भावमयी और शरीर सौंदर्य का इतना सूक्ष्म और हृदयहारी मेल बिस्मो ही देखा जाता है ।—वह कुछ और कहने आ रही थी, पर हम्रे के आ जाने से थप हो गई ।

हंसमुख युवक ने हम्रे की उपस्थिति का विचार न करके कहा—पर शायद उन रँगशियों का तुम्हारे हाथों की मिठास की बकरत न होगी ।



विष परिचय ]

“बस तुम्हें इसके सिवा कुछ और भी आता है ? कभी किसी की मर्यादा भी करते हो ?”

“मर्यादा करने के लिये एक आत्मी बहुत है। मर्यादों की मर्यादा के लिये भी तो किसी का रहना चाहिये ?”

“अरे बाह !”

“सुन तुम न !”

“नहीं—आज तो मैं अभी सुन हूँगी, जब उस विचार और वेश परिचय लेनिका से साक्षात्कार कर लूँगी।”

‘ता क्या मैं समझूँ कि किश्किश उठ गई।’

“बाह जो समझ लेना। मैं तो—” हेमेट बीच ही में बोल ठटा—

“अभी वहाँ जाकर क्या करोगी ? वह अमराता तो कभी का सापता हो चुका है।”

सुवक—‘आप उसे जानत हैं ?’

हेमेट—“लूत।”

सुवती—“कम सावेगा ?”

हेमेट—‘नहीं, दो-तीन रोज़ में।’

सुवक—“आप आ गये, नहीं तो अभी—”

सुवती ने सुवक का हाथ के संकन से चुप कर दिया। हेमेट वहाँ से लौट पड़ा। मर्यादा की उम्मादिली मदिरा पीन से उसके पैर हक-ठप्प पड़ रहे थे। पर पहुँचते पहुँचते मन में वही एक श्लाघि रह गई कि सुवती के सामने अपने आपको मकद करके क्यों न गौरव-पूर्ण मर्यादा के उपर

शब्दों से जानों को सार्थक कर लिया ।

×

×

×

‘साक्षर सैधाक’ पर प्रदर्शनी में पहला पुरस्कार मिला । यह पढ़कर कलावती का हृदय हर्ष से उछल पड़ा । उसकी मुरझाई आत्मा वर्तत का मनीन शठा की तरह खिल उठी । कागज को एक बार फिर आलाकर पढ़ा । अहा ! कैसे सुन्दर सजीव छाने की स्वाही से लिख हुए वे अक्षर माधुर्यम पावते थे ।

हेमेट्र कमरे से निकला । कलावती ने लिफाफा तो पाकेट में छिपा लिया, पर हांठा के भीतर आवश्यकता से अधिक भारी हुई कुुरी की खन्ड मुस्कराहट न छिप सकी ।

हेमेट्र ने कहा—“दिमी आयुक्त बस्तु छिपे छिप क्यों लुप्यप देरही हो कला !”—कलावती न हँस लिया । कुछ बाली नहीं ।

“कन मे मोर नाचा—भयै । बही हँसी किसी कद्रमान की मजर में पक जाती तो—”

“बस-बस, रहने दो । गुन्हारी इस तरह की बातों के लिए मुक्त अवकाश नहीं है । मैं काम से आ रही हूँ ।”

“किस काम से ?”—कहकर हेमेट्र ने उसका हाथ पकड़ लिया ।

“बस्ता देख न लेना । हरएक बात की कहानी कौन करे ।”

“हाँ ठा अब इसी तरह कटी रहोगी । बात करने का समय भी

म निकल सकेगा ?”

“नहीं ।”

“कह, आप ही आपराध करे और आप ही सब की व्यवस्था ।

यह तो असहनीय कालाचार है, कत्ता ।”

“असहनीय ?”

“हाँ”

“क्यों ?”

“क्योंकि तुमने बिना पूछे तस्वीर मेजी ही क्यों भला ? कहीं गड़  
हा जाय—सा जाय ?”

कत्ता ने हल्की हँसी बिपाकर उत्तर दिया—“अपनी नीज के स्निग्ध  
कोई पूछने की बक़रत नहीं समझता । फिर मैं ही क्या ऐसा करती ।”

“अच्छा”

“और अगर एक तस्वीर को भी जाय, तो कौन बड़ी बात है ।  
फिर मैं तो बन सकती हूँ ।”

इमैड ठोकेबित होकर कुछ कहना चाहता था, पर कत्ता की  
लिललिललललललल ॥ कुछ दब गन्ध और उसके मुँह की आर किम्बिट् आरम्भ  
से देखने लग्य ।

कत्ता ने कहा—“बात मानो, यह तो नहीं सकती ।”

“तभी मागूँगा, अब भरे हाथ में आ जाय ।”

इसी समय बालक न आकर कहा—“बाहर कार्र आये हैं ।”

कत्ताबती समझ गई । उसने पहले अपने ही मुँह से पति को

शुभ समाचार सुनाने का संकल्प खाते न देना चाहता । उसने प्रसन्न मुद्रा में एक निष्काफ़ा निष्काशा और पति का पुकारकर देना ही चाहती थी, कि वह 'अमी आया' कहता हुआ बुझा जाता ही गया ।

बाहर कई मंते वर की महिलाएँ और पुरुष मौजूद थे । पहले तो उन्होंने हम का पागल से अधिक कुछ नहीं समझा, पर जानकीत होने पर सबने बड़े आदर और कौतूहल से उससे हाथ मिलाए । उनमें सभी ने उसकी विभक्तता की प्रशंसा की, और उसके वर्तन पाकर अपने को फल माना । हेम इकट्ठा-जकट हो गया । इतने प्रतिष्ठित लोगों ने उसकी प्रशंसा की । जिन सु-दरिया के रूप सौंदर्य के लिये लोग सर्वनिष्ठता की रचना पर मुग्ध हो जाते हैं, वे भी उसके विजय की प्रशंसा में गद्गद बँट से न जाने क्या क्या कह गए ।

कलावती की इच्छा पूरी न हुई । इस को सब समाचार बाहर ही मिला गया । आगत समुदाय ने अनुसंधान किया कि हेम कुछ देर के लिए उनके साथ आकर उस आयोजन में शामिल हो जावे या न उसके सम्मान में आयोजित कर रहे हैं । हेमेश भी इनकार करना नहीं चाहता था, फिर भी इस समय उसने अक्षमता बताकर कुछ देर बाद पहुँचने का समय देकर अपने गौरव का प्रदर्शित किया ।

वे लोग जाते-जाते अनुरोध कर गये और कह गये कि उसके लिये ठीक समय पर गाड़ी वा जयगी । हेमेश प्रशिक्षित बदन पर के भीतर लौट गया ।

कलावती मन ही-मन पटुताकर बार-बार पत्र का पढ़ रही थी कि

चित्र परिवर्तन ]

हेम ने चुपचाप आकर उसे सहस्रान्न आलिंगन करके कहा—मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी प्यारी हो !—सचमुच तुम्हारी जीत हुई !

क्यों—क्या हुआ ?—कहकर कला मुस्कराये लगी ।

अब तुम प्रसिद्ध कलाकार की पत्नी हो गई । मामूली चित्रकार की स्त्री कहलाना तुम्हें पसन्द नहीं था—क्यों न ?—तभी गुपचुप इतना बड़ा प्रपञ्च रच डाला ।

कला रची-रची समझ गई, पर तनिक बनकर बाली—क्या कहते हो ? मैं कुछ नहीं समझती, साफ साफ कहना हो तो कहा ।

हमें—अभी, कह तो दिया कि अब तुम एक संपन्न और विभूत पति की पत्नी बन गई ।

“ठंडू !”

“नहीं समझी—तुम्हारे ‘साकर शैशव’ ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया है ।—और, और विशाला मेस की मासिकिम आकर तब कर गई है । पांच सौ रुपया मासिक का स्वाम मुझे मिला गया है । कल फ्लारपन पर हस्ताक्षर हो जायेंगे ।”

इस अन्तिम संदेश से कला और भी प्रणम हो उठी । उसका कंठ से उस समय कद बाढ़ गयी मिऊली । कुछ टहरकर उसने पूछा—सच सच बताओ ।

“सच सच ही कहता हूँ, कला ।”

“तुम्हीं देना—अच्छा, अब तो मुझमें नाराज न हूँगे ?”

हेम ने एक चुंबा का बीज का साक्षी बनाकर कहा—“नहीं,

कमी नहीं ।

कला से न रहा गया । उसने हाथ का पत्र ज्योत्सकर हेम की गांव में रक्त दिया । दाना गन्गुद् हो गया ।

×

×

×

अब हेमेट्र सम्मानित चित्रकार है । 'साधार जंगल' के बाद से उसकी मान-प्रतिष्ठा नंदमा की किस्सों की तरह सदैव व्याप्त हो गई है । फल-संपत्ति की कमी नहीं रही है । वही नहीं, चित्र का परिचय लिखकर कलावती भी पाप्य पत्र की उपयुक्त आयोगिनी हो गई है । अब उसे घर के छूटे-छूटे कामों में अपनी शक्ति नहीं लगाती पकती । चित्रकला में अभिव्यक्ति करने के कारण वह अधिकतर चित्रशाला में ही रहती है ।

एक दिन वह कुट्टी पर पड़ी कुछ सोच रही थी । सापद किसी सुन्दर चित्र की चरचना कर रही होती । वह चित्र हाथ में लिए हेमेट्र बाहर का द्वार ज्योत्सकर उसके पास आ गया । आते ही उसने ठीके स्वर में पुकारा—कला ।

कलावती—क्यों, मैं तो जाग रही हूँ—छाई नहीं ।

हेमेट्र—बस, आज स हमारा काम समाप्त हो गया ।

कलावती बात को निजकुल न समझकर बचकाहट के स्वर में बोली—आखिर बात क्या है ?

उत्तर में हेमेट्र ने दाना चित्रकलावती को देते हुए कहा—कला से जो महान्तरम उर्दे रक्त सिद्ध हो सकता है, वह हो चुका । हमने जिसकी आशा नहीं

की थी, वह हमें मिला गया । फिर और क्या चाहिए ? सी दोनो विष मरने से बेला । इसकी बरीकत हमें जो कुछ मिला है, वह संसार में किसी कलाकार को नहीं मिला ।

कलावती ने देखा, एक या बही उसका विर-परिवित 'साकार शैशव' उस देखकर एक बार फिर घबरा के लिए कला स्मृति-लोक में पहुँच गई । उसका हृदय गद्गद हो उठा । उसके उपरांत उसने दूसरा विज देखा । इस बार उसका सारा शरीर झोंपी से झकझरी हुई लता की तरह काँप उठा । ऐसी कठोर और अमानुषिक आकृति उसने पहले कभी न देखी थी । उसकी कर्तुलम झोंकें विज की भविकरता का न सह सकीं । उसने भयभीत होकर उन्हें बन्द कर लिया । उसने मञ्जुशर स्वामी से कहा—हे आद्यो, ओह मगवान् ! इस तो देखते ही बर लगता है । भला इसे बनाय किसने है ?

हेमेन्द्र ने हँसकर विज कलावती के हाथ से ले लिया, और कहा—यिस एक मञ्जुक देखकर तुमने उपेक्षा से लौटा दिया है यदि उसकी कथा सुनो, तो निश्चय है कि तुम उसे अवश्य ही पसंद करने लगागी । कथा की पृष्ठभूमि के साथ ही इस विज का मजा है ।

कला—नहीं, ऐसे विज का मैं कभी पसंद न करूँगी । मेरा हृदय बापाय नहीं है ।

हेमेन्द्र—तुम्हारा हृदय नितांत कोमल और मायुक है । बस, इसीलिए मैं कहता हूँ कि तुम उस स्यामुभूति की दृष्टि से बलागी—मैं जानता हूँ कला, तुम उतनी अमानुषी नहीं हो ।

कलावती ने स्वामी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप उसकी बातों को सब सुनती रही।

योद्धी देर ठहरकर हेमेट फिर बोला—अच्छा सुनो, ऐसी ही कृति की इच्छा मैं बरसों से कर रहा था। मैंने कल्पना के आधार पर अनेक चित्र बनाए भी, पर किसी में अनुकूल और स्पष्ट चित्रण नहीं बन सका। कल्पना शीकते-शीकते एक हद पर आकर रुक जाती थी। चित्र की मूर्तिमान्, अमन्युषिकता का सजीव चित्र न मैंने कहीं देखा, न जब तक मैं स्वयं ही बना सका। इस जानती हो अनेक बार दूर-दूर रज्या के कारागारों का निरीक्षण कर मैं यो ही करता फिरा था। उसका दर्शन केवल यही था—आसिर एक महाविजयल, सम्राज की तरह भयावही मूर्ति मुझे मिली। बिना पर्याप्त सामग्री के भावों और छवनी में धारावाहिनी शक्ति नहीं आती। उस मानव मूर्ति को देखते ही मैं उसका चित्र बनाने लगता। अनेक वर्षों की संवित कल्पना के साथ वास्तविकता ने मिलकर चक्षुओं में चित्र तैयार कर दिया। इतनी जल्दी ऐसा सुन्दर चित्र बन जाने की मुझे कदापि आशा न थी—इसी से मेरे हृदय के मुझे बेअसिक्तार हँसी आ गई। मुझे हँसते हुए देखकर उसने उषा के माथ से सिर झिन्ना कर पूछा—क्यों, क्या बात है।

उस एकलव्य स्नान में उसके मीम-स्वर को सुनकर एक बार मेरा हृदय दहल गया। उसने फिर पूछा—क्या कुछ गहरी रक्तम हाथ लगी है। इसना हँसने क्या हा।

उस समय मेरे पास और कोई उपाय नहीं था। चित्र उसके सामने रचना ही पड़ा, पर इस विचार से कि कहीं वह अप्रसन्न होकर मेरे



ऊपर कुछ दे न मारे, मैंने साथ में 'साकार शीशु' भी रख दिया। उसके एक बार इस पित्र को गौर से देखा, फिर अपने शरीर को मरोड़कर कहा—ओह ! तो मैं क्या ऐसा ही बीसता हूँ ?—मैं उसकी लास-लास आँखों और ओष्ठ के चढ़ाव उतार के माथों को देखकर अपनी कुशल चेष्टा की प्रायश्चात कर रहा था। थोड़ी देर में वह वृद्ध पित्र भी गौर से अग्रश्रोतन करने लगा। इस बार उसके मनोविचारों में जो परिवर्तन आया उसे देखकर तो मैं कुछ भी निश्चय न कर सका। क्या मर में ही वह एक नन्हे से बालक की तरह बिलस बिलसकर रोने लगा। उसने मेरे पैरों पर अपना माथा रगड़कर अत्यन्त धीन स्वर में कहा—बाबा, मैंने तो सब कुछ सो दिया। हाय ! अब मैं क्या करूँ ? एक दिन जो अमृत्यु का मेरे पास था, उसे मैंने मृग तुच्छा के लोभ में पकड़कर गँवा दिया।

उसके अनुसृत हृदय की कण्ठ पुकार से मंत्र हृदय द्रवित हो गया। मैंने उसके भीगे हुए चेहरे का अपनी गोद में रगड़कर कहा—कहो तो क्या हुआ ? देखी कौन सी बात हो गई है, जो क्षीमद नहीं जा सकती ? उसने अपने मस्तक का मेरी गोद से अलग करते हुए कहा—बाबा मैं, महापातकी हूँ। मैंने अपना अमृत का शृंगार बोढ़े-से लाल में भीगे हुए छिरे मोटी इकट्टे किए हैं। मैं नितांत देव और पृथिवी हूँ। उस पित्र में जो कुछ अंकित है, वह सब मेरे पापों की या पर हाय ! संसार के वैभव से भी परम पुनीत उस सरलता का गँवाकर आज मैंने क्या बर्बर रक्खा है ? मुझे मेरी आँखें बोलती हैं, पर क्या अब वह सीधिया जा सकता है ?—नहीं मैं आज शीशु का बीड़ा हूँ। अब इस जीवन में मेरा उद्धार कहीं ?

मैंने उसका सिर अपनी गोद में लेकर स्नेहपूर्ण शब्दों में उसे डाढ़स दिया—अरे वह क्या कहने हा ! तुम्हारा पञ्चाग्रास फिर से तुम्हें दुग्धारी संपत्ति दिला सकता है । उठा जा चही, बच्चा—तुम्हें ठा संपन्न होने से पहले ही अपनी भूल का पता लग गया है ।

उसने उसी समय उठकर मेरे चरखों की धूल को सिर पर लगाया, और प्रतिज्ञा की कि वह अब मे कोई भी दुष्कर्म न करेगा ।—सुनता हूँ, उसका अत्यन्त बदलकर एक पवित्र और सरल बालक की भाँति हो गया है ।

कलान्ती ने विन्मय के साथ पूछा—ऐ ! क्या सच कहने हा !

हेमेश—हाँ मिलकुल सच । भला, इससे बड़ा सजाना और हमें सब क्या मिल सकता है—मैं समझता हूँ, अब इस बूढ़े पिता का भी परिचय लिखना तुम पसन्द करोगी ।

कलान्ती—परिचय तो तुम ने सुना ही दिया है । अब मुझे लिखने की क्या आवश्यकता है ! पर हाँ, लाओ, मैं एक बार उस पिता को गौर से देखूँ वा चही ।

## नलिनी

नलिनीप्रभा वैश्वीय रत्नमण्डली प्रचलन अभिनेत्री थी। उसके लिये प्रायः और पाश्चात्य दोनों प्रकार का अभिनय एकलतापूर्वक करना एक साधारण बात थी। उसने रोम्सपिक्चर के ड्रामों में नाम पैदा किया था। शॉ और हप्पन के अभिनय में वह अपना सानी महो रक्ती थी। जापान में जब उसने जापानी नाटकों का अभिनय किया, तब टाकिनों में इसने भंडेख पापित किये गये कि उनका परिचय देने में पत्रों को कालम के कालन रंगने पड़े। यह सबर जब स्टूड के द्वारा कलकत्ते आई, तब भारतीय पत्रों में भी उसकी लम्बी-चौड़ी चर्चा होने लगी। एक दिवसको मे अपना पुगना प्रसन्नम निकाल कर तेरह चित्रों में कालिदास की शकुन्तला का अभिनय करत हुए नलिनी का दिखलाया। वह अभिनय हीन करत पहले किम्ब गया था। उस समय नलिनी का बौद्धिक खाल शुद्ध हो रहा था।

प्रसिद्धि के इसी दौर में नलिनी ने कैलीकोर्निश की यात्रा की। जहाँ मेरी पिक्चर्डे, जालीं वेपलेन, जगजस पेन्स बैबस जैसे कलाकार संसार में इसका मजा देनेवाले चित्रों की भूमिका में उतरते हैं, वहाँ नलिनी की धूम मच गई। जगह जगह पोस्टर्स, प्लोकार्ड, चित्र और विज्ञापन विपन्न रहे थे। प्रायः और सायकालीन पत्रों में केवल एक ही चर्चा थी, 'धूँ की रानी' नलिनी का चित्राकर्णक अभिनय।

बिजेटर हाल की गैलरी में तिल रक्तने को जगह नहीं थी। अपार जनसमुदाय का प्रत्येक व्यक्ति कौतूहलपूर्ण मनो से अग्निनेही मस्तिनी की वाट देख रहा था। वास्त्रियों की करतलम्बनि के बीच एक टेलीग्राम हाल में लिये जब मस्तिनी ने उपस्थित जनता से धुमा मांगी तो हाल में गम्भीर रुक्ति का वा समाप्य हुआ गया। उर मस्तिनी के घर से आया था। उसमें उसके एकमात्र सहोदर का निष्कल-संवाद था।

आगले दिन सबेरे छूटनेवाले मेल स्टीमर से बिपाद मस्तिनी मस्तिनी चलने को तैयार हो गई। जब वह जा रही थी, तो एक मारतीय युवक ने समवेदना के स्वर में उससे कहा—“इमारा दुर्भाग्य है कि आपका इतनी जल्दी वहाँ से जाना पड़ा। आपका माह दुःख भूलनेवाला नहीं। ईश्वर आपके माई की आत्मा को शान्ति दे।”

मस्तिनी ने बड़ बड़ से उत्तर दिया—“जीन जानता है, कामिपंठा ने क्या समझकर ऐसा किया। आपकी इस हृषा के सिने मैं सदा स्तब्ध रहूँगी।”

फिर मस्तिनी ने उससे हाथ मिलाकर और बाहर केविन में अपना मुँह छिपा लिया, पर वह युवक अपना स्माल हाथ में सिने तक तक लटका रहा, जब तक पात हटि से आगस्त नहीं हो गया।

युवक का नाम तावकन्य था।

जैसे जैसे कल-कल बाध आ रहा था, मस्तिनी का शोभवेय बढ़ता जाता था। जना के भाँके से दिनों में उसका साया सी-दर, सारी सोमा, न जाने कहाँ किलीन हो गई थी। किन्तु जब उसमें दूसरे स्टीमर में विविन को

नस्तिनी ]

लड़ा देखा, तो आत्मस्य से पागल हो गई। जिसकी मृत्यु के लिये शोक संताप करती हुई, निराश और विषाद भग्न वह छा रही थी, ठीकी भाई ने जब उसका हाथ पकड़, सब रहस्य ईस ईसकर समझा दिया, तो नस्तिनी का मन ठक्साट से विकसित हो उठा, पर भाई के मापी संकट की आशंका का विचार करके वह चिन्तित भी कम न हुई।

[ प ]

नस्तिनी का कम एक साधारण परिवार में हुआ था, लेकिन उसकी माँ बड़ी रूपवती और सम्पन्न करने की थी। पिता को समुदाय से पर्याप्त धन मिला था, पर वह उन्हें पला नहीं। रुपया हाथ में आते ही उन्हें अनेक दुर्भिक्षन लग गये। जब उनकी मृत्यु हुई, तो नस्तिनी की माँ एक दम निराश्व हो चुकी थी। उनके मायके में भी कोई न रह गया था। इसके बाद जो भी दिन आया वह उन्हें दरिद्रता और दुःख की ओर पसीपसा ले गया। जब उन्होंने जो करस की नस्तिनी और पांच बरस के विमि को छोड़ा था, तब उनके पास दो आँतुधों के सिवा और कुछ न था, और वे ही दो आँतु अपने प्यारे बच्चों की गोद में गिराकर उन्होंने सदा के लिये आँसू बन्द कर ली थी; पर ठीकी मि से अशोक, अज्ञान, बेचारी नस्तिनी की आँसूें क्षुब्ध गई। उसे किसी-न-किसी भाँति भाई की रक्षा का विधान करना पड़ा। अनेक कष्टों को भेलाकर नस्तिनी ने विपिन का शासन-पालन किया। जब विपिन कुछ-कुछ बड़ा होने लगा, तो उसकी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ भी बढ़ने लगीं, पर उनके मार को सहन करने लायक कोई सुक्ति नस्तिनी के

[ मस्तिनी ]

पास न थी। आखिर उसने एक दिन घर से निकलकर अपना सर्वस्व भाई के लिये उत्सर्ग कर दिया, और जाकर एक बेरुख के गहाँ मौकरी कर ली। वहीं से धीरे धीरे उसने स्टेज पर प्रवेश किया।

विपिन को हर तरह की छायापटा करते हुए भी उसने जिनी पर वह प्रकट नहीं होने दिया था कि वह उसकी बहिन है। मस्तिनी ने इतना कल कयापा था कि विपिन को रुपये पैसे की कमी न रही। वह कपडों पर पढ़ा हुआ भी ए० में पहुँच गया। जब उसने मस्तिनी को अपनी मृत्यु का तार भेजकर बुलाया था, तो वह बी० ए० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो चुका था। उसके विवाह के लिए आग्रह होने लगा था और एक अच्छे घराने की लड़की से बातचीत चल रही थी। विपिन जानता था कि कैसे मस्तिनी कमी नहीं आकाशी क्योंकि वह विपिन की बहिन बनकर उसे समाज के सामने नीचा नहीं बनाना चाहती थी।

मस्तिनी ने विपिन को बहुत समझाया, पर उसने एक न मुनी। आखिर भाई के हठ के सामने उसे अपना निरुपेक्ष त्यागना पड़ा। विपिन और मस्तिनी का संबंध तथा तार की असारता का मनोरंजक वर्णन लोगों ने दिलचस्पी से पढ़ा। पर जब थोड़े हुए विलक की परवाह न करके लड़की के पिता ने दूखी लगा लड़की का ब्याह तब कर दिया, तब विपिन को मालूम हुआ कि समाज का शासन उसके बैभव और उसकी शोम्पता की तनिक भी विता नहीं करता।

[ तीन ]

वाराणसी को मस्तिनी का रूप-सावय बहुत समय तक नहीं

मृगा । वह जब-तब वही विचार करने लगता कि क्या उसका हृदय भी वैसा ही सुन्दर हो सकता है ।—लेकिन गुरम्त ही सोचता कि अगर हो भी तो उसे क्या ।

तात्पन्द एक निर्वासित देशमुख युवक था । उसने आज़म अविवाहित रहने का संकल्प किया था । एम० ए० पास करके वह स्टीनरसेपड, जमनी, बस आदि छोटा हुआ अमेरिका पहुँचा था । वही उसने नशिमी का देखा था । उसे मातृभूमि में आने की इच्छाबल नहीं थी । भारत सरकार की दृष्टि में वह अशक्तिन व्यक्ति था । उस देश में क्या कर आने दिया जाता । उसके लैल और मायरा सरकार की दृष्टि में राजद्रोह की भाग कू बनवाले थे । ऐसे आपत्तिग्रस्त युवक को देश में आने देना कहाँ तक उपयुक्त था ।

इन सब कारणों से नशिमी के प्रति स्नेह का लगाव रहने पर भी वह यह नहीं सोच सकता था कि इस जीवन में फिर कभी उनकी मदद हो सकेगी ।

जिस समय नशिमी को माई का ता० मिला । उसी दिन तात्पन्द को बहिन के विवाह का समाचार मिला । हर्ष और विषाद की एक अपूर्व स्थिति में उसका जी किसी काम में न लगा । वह धिक्कर देलने लगा गया । जी को बहुत मुत्ताने का मन किया परन्तु चकला न हुआ ।

नशिमी जब जहाज़ में चढ़ने लगी तो उसने प्रवित बँट से उससे दो बार समवेदना मूलक शब्द माग कहे । नशिमी अभ्युत्थित मैत्री से उसकी

और साफ़ती ठाकसी बिबा हुई ।

×

×

×

मालूम नहीं किसके सौभाग्य का सारा उदय हुआ, कि कुछ दिनों बाद ही ताराचन्द का भारत जाने की अनुमति मिल गई । परन्तु अब वह नीसिमी को भूल चुका था । उसे घर जाने की कैसी खुरी हो रही थी, वह कौन बता सकता है । जो जीवन भरके लिये निराश हो चुका हो, वही इसका अच्छी तरह अनुभव कर सकता है । पर उसकी इस खुरी में भी एक बात रह-रहकर लटकती थी कि बार महीने पहले यदि आशा मिल जाती, तो वह प्रतिमा का विवाह भी देखा लेता ।

उसे स्वप्न में भी यह अनुमान न था कि वह ठीक अवसर पर ही पहुँच रहा है ।

यह देख कर आत्मन्द से उसका हृदय उझलने लगा कि प्रतिमा अब कभी लकी है और अपने मनोनीत पति के गले में जयमाळा काल रही है ।

विवाह कार्य संपूर्ण हो जाने पर ताराचन्द के पिता शिवचन्द ने कहा—प्रतिमा का पहला सम्बन्ध अच्छे के लिए ही टूट गया था अन्यथा तुम विवाह न देख पाते ।

ताराचन्द—तो पहले अच्छा विचार था ।

शिवचन्द—हाँ, तब ही हाँ चुका था ।

ताराचन्द—कहाँ ?

उत्तर में शिवचन्द ने विपिन का नाम लिखा और उस सम्बन्ध में



नलिनी की मी चर्चा चल रही । नलिनी के पतित जीवन के प्रति अनेक लक्ष्मणा भरे शब्द कह कर उन्होंने इस बात पर संतोष प्रकट किया कि बात समय से पूर्व प्रकट में आ गई । यदि कुछ दिन की बेर हो जाती तो कुछ की मर्यादा में संसक का बच्चा लग जाता ।

ताराचन्द को नलिनी की सूली हुई खबर आई । वह चुपचाप खाम्ब बैठा रहा । उसे चुप बैठा देखकर शिवचन्द बोले—आश्चर्य तो इस बात का है कि विपिन देखने में इतना झुंझला है पर भीतर कितना करेब मर है ?

ताराचन्द—करेब की इसमें क्या बात है ?

शिवचन्द—ओह, तुम नहीं जानते । उसे पहले ही बतला चाहिए था । पिता के आग्रह में कोई कुछ-बसक को कैसे झिपा सकता है ?

ताराचन्द ने चुपचाप गर्जन मीची कर ली । शिवचन्द ने समझ बैठे क मन पर उनकी बातों का प्रभाव पड़ रहा है । वे इससे उत्साहित होकर बोले—इस घटना से सम्ब-समान में विपिन की बड़ी फिटफिट्टी हुई । वह किसी को मुँह दिखाने शायक नहीं रहा ।

ताराचन्द की बेचना कु टिठ हो गई थी । पिता की बातें वह सुन रहा था पर जैसे उनके आचार्य को प्राप्त नहीं कर पा रहा था । कककर रूम हल्ले से कमरे के बाहर की हठी वृक्ष पर वह कोई कार्य बीच जैसे जोर रहा था । शिवचन्द कहते गये—वह अपनी बहिन को लेकर दूर देहात में नहीं चला गया है । स्वर्ग भद्र विराट्ट की तरह देहातियों के बीच वे दोनों रह रहे हैं । इस जीवन में इससे अधिक की कामना उन्हें नहीं करनी चाहिए ।

सायबख्श को एक बच्चा था सगा । वह चौक पड़ा, बोला—  
मे कहा रहते हैं ।

शिबबंद—आबीब का नाम है याब का । मुझे या याब भी नहीं ।  
एक दुस्स्वप्न की शक्ति में उधर-वर्षा का ही समाप्त कर देना चाहता हूँ । अपने  
परिवार के साथ असीर के उससे सारे सम्बन्ध छिड़-भिन्न हो चुके हैं ।

सायबख्श को शक कि वह उसी चूस दीहा दीहा उनके गंध में  
पहुँच गया है । आँखों में आपमान के आँसू भरे नसिनी प्रभा उसके सामने  
लगी उस मौन उठाहना बे रही है । वह उससे पूछ रही है कि कौन से  
कंधक की कसिमा से उसका आँखल मुक्ति हो गया है क्या वह बतावे तो  
सही और फिर वह भी बतावे कि सम्ब-समाज में, कुर्छिता की भवली में,  
कौन निष्कर्षक है ।

सायबख्श उकल पड़ा, बोला—आ हो गया वह छोटापन नहीं का  
छफटा । उस सब के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ । अपना समझकर उधर क्षमा  
करें और मुझे आदेश दें कि आ कुछ बस में है वह करके मैं उसका  
परिमार्जन कर सकूँ ।

सायबख्श की चेष्टना लौठ आई । उसने कहा—आपके नहीं मैं विपिन से कह  
रहा था । उधर से मैं क्षमा मांग रहा था । उसके साथ और नसिनी के साथ भारी  
अन्धत्व हुआ है । मैं उनके पास आ रहा हूँ । मैं उसका परिमार्जन करूँगा ।

शिबबंद—अन्धत्व हुआ है । तुम आ रहे हो क्षमा माँगने, परिमार्जन  
करने ।

सायबख्श—हाँ, मैं आ रहा हूँ । पिताजी, मैं आपके चरण लूँगा

हैं आप आखीरों होजिये कि मैं अपने कार्य में सफल नूँ ।

शिखरद—आरे, बेटा ! तुम कहाँ क्या करते हो ? तुम्हें वह कैसी विषय पार् है ?

ताम्रपद—मेरी विषय मानव की स्वाधीन चेतना की रक्षा करने वाली है । बरख कहकर जिस मसिनी का आपमान किया गया है उसे मैं बरख करूँगा । उसे मैं शिरोधार्य करूँगा । उस मैं देवी के घर पर स्थापित करूँगा ।

जबतक शिखरद कुछ नहीं समझ सका वह तभी उसे निकल गया । तब के शब्द भी उसके कानों में मूँ पड़ सका—पामना लकड़ा । आप-बाहों की कनारें फूँक आया है । जब स्वर्ग कमाकर संविष्ट करेगा तब मामूल बड़ेगा ।

## [ चार ]

आधी और तुम्हें आत और निकल आते हैं । उसके बाद आतारण शम्भु लिंग हा उठता है । ताम्रपद के आग्रह को शब्द में विविध में मान विषय पर मसिनी इनकार ही करती रही । वह अपने छोटे मर्द को छुड़ने को लेकर य थी । ताम्रपद ने दीक्षुष करके विविध का सम्बन्ध अपनी एक बहिन से पकड़ा कर कर उसके उस बहाने को भी निराधार कर दिया । आचार मसिनी का उसका प्रस्ताव मान लेना पड़ा ।

आठ दिन के भीतर वे दोनों परिवार के रूप में मेल गये । शिखरद ने इस लुप्टी के कार्यक्रम में भाग नहीं लिया । वे बराबर रुठे रहे । बरख

प्रतिमा अपने भार के ब्यह में जाकर सम्मिश्रित हुई, और सबसे मजे की बात इसमें यह रही कि विपिन का इस बार भी प्रतिमा ही मिली। उसकी नववधू का नाम भी प्रतिमा ही निकला।

सायब ने नववधू का स्वागत करने के उपसर्ग में जो प्रीतिभोज निक, उसमें नसिनी ने हँसते हुए कहा—जैसा विपिन आज दुम्हारी परीक्षा होगी। दुम्हें धूँध में बाँटनेवाली बानों में से अपनी प्रतिमा को आज्ञा सोच निकालना होगा।

विपिन ने मुस्कुराकर उत्तर दिया—और यदि भूल कर बैठा तो क्या होगा बसिनी ?

‘ता भी दुम्हें कोई फायदा न होगा।’ कहकर सायब हँस पड़े। उनकी हँसी से बातावरण गूँस उठा और बेर तक गूँसता रहा।

## नववधू

दशन्त-पञ्चमी की लग्न थी, पर श्यामा ने ब्रिटीश से ही एकन्त शास कर लिया। उसे कामा-बीमा, हँसना-बालना कुछ भी बाधता नहीं लगता था। वह दिन-रात सबसे मीठरवासी बँसिरी कोठरी में कभी बिछर पर कभी घूमो पर ही बैठी हुई न जाने कितनी बातें सोचती रहती थी। उसकी सहेलियों अब उस आ-आकर उस निम्नगती और समझती थी। वह चुपचाप उसकी बातें सुन लेती थी।

श्यामा अपनी सतुरास का बिच पहले भी अनेक बार कल्पना के आकार पर खिंच चुकी थी। अपनी सहस्रिध के मुँह से सुन-सुनाकर कई बार ऐसी भावनाएँ उसके हृदय में उठी थी, लेकिन वे भावनाएँ और वे कल्पनाएँ ठण्डिही की छतों की तरह वा उष्ण के लाल-पल्ले हरे बादलों की तरह सब भर में अस्थिरित हो जाती थीं, उनमें श्यामा का कौतूहल ही अधिक होता था। उसमें कभी भी निश्चयपूर्वक वह नहीं समझ पा कि वह दिन सचमुच ही आ जायगा, जब उस अपने माई-बहनो को प्यारी माता को, पिता का, चाचा-पापी का और बास-पड़ोस के सब बड़े-छोटे को हककर दूर एक अचरितित बरिदार में अनायास भगा ही पड़ेगा।

आज तीन चार दिन से उसका वह विचार परिवर्तित हो गया था। उसके हृदय में, मन में, वह बात मसी-मांसि बैठ गई थी, कि वह अब नहीं, वह नहीं। चलने के अतिरिक्त उसे दूसरा विचार भी न आता था। वह चार दिन बाद लौट भी आया, वह उसके अर्धर हृदय में किसी तरह समाता ही न था। उस छोटी कोठरी के एकान्त कोने में बैठकर श्यामा ने अपने अतीत जीवन को कई बार स्मरण किया।

दो दिन बाद उसका संसार बदल जायगा। वे छोटे-छोटे मार्ग कहाँ मिलेंगे? स्वतन्त्रता का जीवन अब उसे छोड़ जा रहा है। रात दिन धूँध के मीटर, परदे की छाँट में, रहना पड़ेगा। अब उसे दीदी की जगह मामी कह-कह-कर देवर पुकारेंगे, अब वह किस तरह ब्याह होगी? स्वभाव के अनुसार कहीं कोर से कोई बात मुँह से निकल गई तो उसकी हँसी होगी। वह खाना बहुत अच्छा बनाती है। उसके समुद्र जब उसकी प्रशंसा करने लगेंगे तो वह मना शाब से पृथ्वी में न गड़ आया। वह बड़ी लज्जावन्त है, पति से बात करने का साहस तो उसे जन्म भर न हो सकेगा। ऐसे सिचकते श्यामा के दो दिन पड़ा होकर कटे। घर-परिवार

दूँधने का मानसिक क्लेश इतना व्यापक और विस्तृत होकर आ गया कि हर समय विकसित कल्लो की तरह प्रगुलित रहनेवाली श्यामा मोह मग्न की प्रतिमा हो गई। मातृम पकवा या कुत-बभूत के, आदर्श-ग्रहणी के एवं स्नेहशीला माता की भावनाओं के उत्कार की क्षमा उछी। मन से उसके हृदय पर एक छांव पड़ने लगी। आपस आप उसका हृदय अपने सभी आत्मीय को हृदय से सगा लेने के लिए व्याकुल हो पड़ा। पकोष की कई

लक्ष्मियों से श्यामा की नहीं पड़ती थी। उसने दो-एक से कदम  
भी हाँ नहीं थी। बालमा तक बन्द था। श्यामा ने स्वभाव  
के अनुसार कभी उनसे बात करने का विचार तक न किया था।  
इस वह अपना अपमान समझती थी। आज व सभी बातें, सार मनाईकार,  
छद्ममम मूर्ति से कामर का भाति आदर्य हा गये थे। उसका हृदय आज  
अपने सामाजिक रूप को छुड़कर बाहर निकलता पड़ता था। आज वह उन  
सबका किसी प्रकार यह बचका देना चाहती थी कि वह वास्तव में उन्हें  
कितना प्यार करती है। मुह से न बोलकर भी, उन्हें छुड़ते हुए उसे  
कितनी बेइया, कितना स्नेह और कितना सन्ताप है। कम से कम यहाँ  
वह जमी और इतनी बड़ी हुई बर्तों से उस अचञ्छावना से स्पर्श करने  
वाला कोई न हो। वह जा रही है, बिना रुक जा रही है। छाँटाईक  
और सामाजिक प्रथा के अनुसार जा रही है। किन्तु वह सबकी मजल-कामना  
करती है और सदा करती रहेगी।

अनुरजित अतीव मूर्ति के साथ साथ ही वह वह मन्त्र का भी  
मनोरम भाव-अर्थक पित्र-वत् नहीं लेकर कर रही थी। उसके एक अंग  
के दृष्ट तमसाक्षर बेइया बिहित और इच्छा अक्षर वे लेकिन दूसरी  
आद आस्था और अभिलाषा की एक शाखा में नई-नई भावनाएँ अपना  
अभिव्यक्ति प्रारम्भ करके जा रही थीं। वह अपने सुकुमार भावों के लक्षण  
प्रभाव में अक्षराकी बनकर प्रवेश करना चाहती थी। वैसी सुन्दर चाह थी,  
वैसी मनाइ प्रतीक्षा और आकुल उत्पत्ति।

उसे समुद्रात जाने की इच्छा थी, और साथ से आकाश में जाने का

बाब । गगन और देवर के आसीनिक व्यवहार को भी वह अनुसृत्य और आहोभाग्य की सम्पत्ति समझती थी ।

संवरूप विवरण की इस स्थिति में श्यामा की विभिन्न वया कर दी थी । विचारों के इसी प्रमुल छद्म में, कल्पनाओं के इसी कोसाहस में, बरात आ गई । बाबों और आतिथ्यात्री के धूम-ध्वाके से श्यामा का हृदय कण्ठने लगा मावे पर मोरियों के बानों की तरह पर्वीने की बूँदें मलमलाने लगी । उसके विचारों का ठार दूर गम्य कल्पनाओं की मात्ता बिगड़ गई । हृदय मर गई केवल एक उन्मुक्तता—बरात के लिए नहीं किन्तु अपने जीवन-साथी की एक मलक पाने के लिए । सुन्दार और सुर्मित सुसंस्पर्शों को आँसों में छिपाने हुए उसे बाहर निकलना पड़ा । चहेतियों के राग जब वह द्वार की ओर चली तब उसके मुख पर अनुभूतपूर्व शम्भा-सङ्कोच और उन्मुक्तता की मिश्रित छाया थी और आँसों में या उल्लस मौजूद ।

पाणिग्रहण के समय उसका हाथ काँप रहा था । शरीर रीना पर्वीला हो रहा था और मात्ता पिता के आसुओं के साथ हृदय उमड़कर मंत्र के नीचे आस्य पड़ता था । लेकिन बहुत अच्छी तरह सब काम हो गये । भौंभौं पड़ गई, पाणिग्रहण हो गया, श्यामा कंधों का बोझ हलका करके फिर अपनी अम्बुकारमयी गुफा में चली गई ।

श्यामा पहले सुना करती थी कि अनुक नथू अपने पति को बी-जाल से पाहती है, उसका डेम इतना शगाव है कि वह थोड़ी देर के विराम से ही व्याकुल हो उठती है । वह सुनकर कहती थी—



‘हं, हो सकता है यह होगा।’ इससे आगे न उसने कभी सोचा था, और न समझती थी कि उसका कोई उपयोग हो सकता है। अभी अभी अपने विवाह में ही माँदों से पहले तक उसे इस तरह के किसी माँद की अनुभूति नहीं थी। उसे यह कौतूहल आकर था कि वह अपने पति को देखे। पति कुरूप अवस्था कुरूप कैसा है ? कुरूप होगा, तो वह क्या करेगी और कुरूप होगा तो क्या होगा, यह तक उसने निश्चय नहीं कर पाया था। केवल देखने भर की उत्कण्ठ थी। इसीलिए सबसे पहला काम अष्टाष्टन के मंदिर से नेत्रों ने अपने-आप समझभ्रमकर पूरा कर लिया, किन्तु उस एक मल्लक में ही असौकरिता बात हुई। अपरिचित अनजान मुक्त का मीर के बोझ से अवनत मुक्त शय्या को जैसे निम्नप्रति का देखा हुआ था लगता। वह अनुपम नहीं था। उसमें कित्कृत साधारण उत्तम सुन्दरता थी। शय्या ने उसे पहली ही बार देखा, पत्नी में देखा, पर न जाने क्यों आकर्षक पाहूँ हुआ। बसन्त में ऐसा समझ पड़ा जैसे बरतों का स्नेह रहा हो। देखते ही देखते शय्या पर पड़ा हो गया। उसका संस्कार-आव डेम जागकर उसकी नस-नस में बहकर काटने लगा। उसने ठहर कर एक बार सोचा—क्या इसी तरह अपने पतियों के लिए अज्ञात रूप से अनायास सबका प्रेम-मद उमड़ सकता है ?

विदा के समय सप्तम्य एक बार फिर विकट बड़ी आई। वह रोना चाहती थी, पर आँखें नहीं मिरठाया। कसट से बाँध नहीं डूँटा था। उस समय उसके सज्जन नेत्रों में माता का स्नेह, मलिन मुख पर पिता का आर और निर्दय मिथ्याचार में गुह जन का सम्मान पर्वण की तरह प्रतिबिम्बित

ये । साय ही हृदय के अन्तर्गत प्रवेश में, लालसा के झुनझुने आकर्षण से आन्ध्रादित, तन्नासमयी फुलझरी अस्तित्व मात्र से जगमग कर रही थी ।

इस प्रकार श्यामा, अशु टनकती श्यामा, पालकी में चढ़कर चली गई । अपने मां बाप के घर का झाड़ गई । उस घर का छोड़ गई जिसमें उसने बचपन बिताया था । उस घर का छोड़ गई जिसमें उसने बरिष्मर का मुख पाया था । आज उसके लिए किसी नये घर का बुलावा आया था । उस अनजाने घर के लिए न जाने कहाँ से अनायास उसके हृदय में ममत्व का सागर उमड़ आया । और उसे ऐसा लगा कि वह अपने असली घर का आ रही है । वह उस घर में आ रही है या अन्तःकर्मन्तर से उसका अपना है । वही वह घर है जिसकी उसे चाह थी पर वह सम्मत् नहीं पा रही थी । वही वह घर है जिसमें आज प्रवेश करने के बाद वह उसी दिन निकलेगी जब और कहीं न जाकर सीधी बिता पर जायगी ।

नवमः स्थान ने पुराना सब कुछ छोड़ दिया । नय परिवार से उसका नाता हुआ, नये घर में प्रवेश हुआ, नये जीवन से परिचय हुआ । एक दम सब नया-नया, एक दम सब नया-नया । नवमः की नई रंगीन बुनियाँ, ननद देवों के हास्य किंवदं से मरी नवेली बुनियाँ ।

‘हां, हो सकता है या होगा।’ इससे आगे न उसने कभी सोचा था, और न समझती थी कि उसका कोई उपयोग हो सकता है। अमी अमी अपने विवाह में ही मांभरों से पहले तक उसे इस तरह के किसी मांभ की अनुभूति नहीं थी। उसे वह कौतूहल आकर्षण था कि वह अपने पति को देखे। पति स्वरूप अपने ही स्वरूप कैसा है? सुख्य होगा, तो वह क्या करेगी और दुःख्य होगा तो क्या होगा, यह तक उसने निश्चय नहीं कर पाया था। बेमेल देखने मर की ठकबटा थी। इलीसिए सबसे पहला काम अपना टन के भीतर से नेत्रों ने अपने आप समझभूमकर पूरा कर लिया, किन्तु उस एक मल्लक में ही अलौकिक बात हुई। अपरिचित कामजान बुद्ध का मौर के बांध से अचानक मुक्त स्वभा को कैसे निष्प्रति का देखा हुआ था। वह अनुपम नहीं था। उसमें क्लिप्त साधारण सरल सुन्दरता थी। स्वभा ने उसे पहली ही बार देखा, जखी में देखा, पर न जाने क्यों आकर्षक भाव्य हुआ। स्वप्न में देखा समझ पड़ा जैसे बरसों का स्नेह रहा हो। देखते ही देखते स्वभा पर जादू हो गया। उसका अस्कार-आठ डेस जागकर उमड़ी मध-मध में चक्कर काटने लगा। उसने ठहर कर एक बार खाया—क्या इसी तरह अपने पतिव्रतों के लिए अज्ञात रूप से अज्ञात सबका प्रेम-मद उमड़ पड़ता है।

विवाह के समय सचमुच एक बार फिर विचल बनी आई। वह रंजना चाहती थी, पर आँख नहीं मिलता था। कष्ट से बांध नहीं पड़ता था। उस समय उसके सबसे नेत्रों में माता का स्नेह मणि मुग्ध पर पिता का प्य और विचल शिक्षाचार में मुक्त-जन का सम्मान वपेश की तरह प्रतिबिम्बित

है। साथ ही हृदय के अन्तर्गत प्रवेश में, शास्त्रों के सुनहले आवरण से आच्छादित, ठरुआसमयी पुष्पमयी अलङ्घित मातृ से अगम्य कर रही थी।

इस प्रकार श्यामा, अश्वत्थ ठनवटी श्यामा, पालकी में बढ़कर बसी गई। अपने माँ बाप के घर को छोड़ गई। उस घर को छोड़ गई जिसमें उसने बचपन बिताया था। उस घर को छोड़ गई जिसमें उसने परिवार का मुल पाला था। आज उसके लिए किसी नये घर का मुलाकात आया था। उस अनजाने घर के लिए न जाने कहाँ से अनायास उसके हृदय में ममत्व का सागर उमड़ आया। और उसे ऐसा लग कि वह अपने असली घर को जा रही है। वह उस घर में जा रही है या जन्म जन्मन्तर से उसका अपना है। यही वह घर है जिसकी उसे चाह थी पर वह समझ नहीं पा रही थी। यही वह घर है जिसमें आज प्रवेश करने के बाद वह ठीक दिन निकलेगी जब और कहीं न जाकर सीधी पिता पर जायगी।

नववधू श्यामा ने पुराना सब कुछ छोड़ दिया। नये परिवार से उसका माता बुढ़ा, नये घर में प्रवेश हुआ, नये जीवन से परिचय हुआ। एक दम सब नया-नया, एक दम सब नया-नया। नववधू की नई रंगीन मुनिवा, मनद देवरा के शस्त्र विनोद से मरी नवेली मुनिवा।

नववधू ]

‘हाँ, हो सकता है यह होगा।’ इससे आगे न उसने कभी सोचा था, और न समझती थी कि उसका कोई उपयोग हो सकता है। अभी अभी अपने विवाह में ही मंथने से पहले तक उसे इस तरह के किसी भाव की अनुभूति नहीं थी। उसे वह कौतूहल आश्चर्य था कि वह अपने पति को देखे। पति मुख्य आश्चर्य कैसा है ! मुख्य होगा, तो वह क्या करेगी और कुत्तप होगा तो क्या होगा, यह तक उसने निश्चय नहीं कर पाया था। केवल देखने भर की उत्कण्ठा थी। इसीलिए सबसे पहला काम आम्बु ठन के मीनर से मैत्री ने अपने आप समझभूम्बर पूरा कर लिया, किन्तु उस एक सप्ताह में ही प्रतीकिक बात हुई। अपरिचित अनजान युवक का मीर के बोझ से अकतव मुक्त स्वभा को कैसे निम्नपति का देखा हुआ सा लगा। वह अनुपम नहीं था। उसमें क्लिष्टता साधारण सरल सुन्दरता थी। स्वभा में उसे पहली ही बार देखा, जल्दी में देखा, पर न जाने कसे आकर्षक मानस हुआ ! स्वभाव में ऐसा समझ पड़ा कैसे बरसों का स्नेह रहा हा। देखते ही देखते स्वभा पर जादू हो गया। उसका संस्कार-जात डेम आगकर उसकी नस-नस में बरकर काटने लगा। उसने ठहर कर एक बार पाया—क्या इसी तरह अपने पतियों के लिए अज्ञान रूप से अनाद्यतन सबका प्रेम-भर उमक पड़ता है !

विदा के समय सचमुच एक बार फिर विचर पड़ी आई। वह रोमा चाहती थी, पर चाह नहीं मिरता था। कष्ट से बोल नहीं पूछता था। उस समय उसके सख्त नेनो में माता का स्नेह मलिन मुन परविता का प्यर और विधवा मित्राचार में मुक्त-जन का सम्मान दर्पण की तरह प्रतिबिम्बित

ये। साथ ही हृदय के आन्तरिक प्रवेश में, लालसा के मुनहले चामरख से आभ्युदित, टट्टासमयी फुलभङ्गी आलसिन मात से आमग कर रही थी।

इस प्रकार श्यामा, अरगु टमबती श्यामा, पास्तकी में चढ़कर चली गई। अपने माँ बाप के घर का झूठ गई। उस घर का झूठ गई जिसमें उसने बचपन बिताया था। उस घर का झूठ गई जिसमें उसने परिवार का कुछ पाया था। आज उसके लिए किसी नये घर का बुलावा आया था। उस अनजाने घर के लिए न जाने कहाँ से आनावास उसका हृदय में ममत्व का सागर उमड़ आया। और उसे ऐसा लग कि वह अपने आसली घर का आ रही है। वह उस घर में आ रही है या अम्म कमलान्तर से उसका अपना है। यही वह घर है जिसकी उसे चाह थी पर वह समझ नहीं पा रही थी। यही वह घर है जिसमें आज प्रवेश करने के बाद वह उसी दिन निकलेगी जब और कहीं न आकर सीधी बिठा पर जायगी।

मन्वन्तू श्यामा ने पुटना सब कुछ छोड़ दिया। नये परिवार से उसका नाता छुड़ा, नये घर में प्रवेश हुआ, नये जीवन से परिचय हुआ। एक दम सब भूल-भया, एक दम सब भवा-भया। मन्वन्तू की नई रंगेन दुनियाँ, मनद देवते के हास्य भित्त से मरी नचेसी दुनियाँ।

## बहिष्कार

जयपुर का सा पहासान सा, लेकिन उसकी सारी पहासानों, सारी गलियों, सारी बगैचों और सारी बहादुरी कायम होती थी पर के मीठर— उसकी मुठाना लकड़ा गलियों की कमानों पर भी और उसके मुठाने परसे हाथों पर । विवाह हुए के बाद बने हो चुके थे लेकिन वह वह न समझ पायी थी कि किस समय क्या करने से स्वामी के निकट उसकी बख्त होती । इस बीच मिलने दिन गुजरे होंगे उसके गुजने बार स्वामी के हाथों प्रहार का स्वाद उसे भकरय मिला होगा । इसलिए उसकी सहनशीलता की मात्रा बढ़ गई थी । ससुराल का वही एक मुल है ऐसा उसने मान लिया था ।

एक दिन मार होते ही किसी विशेष कारण के जयपुर ने विवाह कर कुम्भी की पीठ पर से चालुक क्या लिये और अभी आदेश में लुप पर से बाहर निकल गया । जिस की तरह कुछ देर धन्यकर वह उठ पैदी । मकान की सफाई की, खान किया, मोजन लगाया और उस लेकर चौके में बैठी-बैठी बक गई लेकिन जयपुर वापस न आया ।

हठमी देर तो वह कभी बाहर न ठहरते थे—वह सोचकर कुम्भी एक बार अपने कटोर स्वामी के लिये योग्य-मात्र से जयपुर निर्मित हो उठी ।

वे मारपीट कर बाहर चले गये थे, और वह बड़ी देर तक अन्दर रुकी रही थी। कहीं उसका राना सुनकर किसी पक्कासी ने उन्हें कुछ कह ही नहीं दिया। न जाने इन लोगों को क्या पड़ी रहती है, जो मर औरत की परेशु बातों में इन्कल दे बैठते हैं। उनकी आदत है वे मारते हैं, मैं पिठती हूँ—यही सोचती हुई कुन्ती दरवाजे के पास लकी हुई पवि की प्रतीक्षा कर रही थी।

सुबह से निकलकर शाम कर ही और अभी तक वापस नहीं आये। किना कारण इस सभी प्रतीक्षा ने कुन्ती का करीब करीब रूखा दिया। खाने का भोजन वैसा ही पका हुआ था। मूनी पक्कासी कुन्ती स्वामी की प्रतीक्षा में रिस रही थी। एक-एक दरवाजा ठेलकर उसे ही बरबाद करने लगा तो पीछे लकी कुन्ती लकड़ ज़ाकर गिरते-गिरते बची।

दिन मर गयाव रहकर उसे मूना मार जाला, किन्ता से उसे अकमरा कर निकल—इस तरह की का बाजिन शिकायतें सोचकर वह लकी थी, वे सब उमी के पास रह गईं। ठकुर बेतरह कड़ी फटकार उसक ऊपर पड़ी—‘बिहारी! दरवाजे के पास लकी हाकर किसे मँकती है!’

कुन्ती के मुँह से काई उत्तर न निकला। वह किसके लिये रूँक रही थी। वह कीम से मान लेकर किसी की प्रतीक्षा कर रही थी वह सब बवलाकर सफ़ाई बेते समय उसकी ज़बान रुक गई। जिसे किसी ने मर्दों के आगे कभी सिर उठाने नहीं देखा था उस कुन्ती को यह सब अपने स्वामी पर मन्द करके निर्लज्जता का अभिनय करना गबारा नहीं था।

बस, फिर क्या था। ‘जो कोड़ा दु’ महीने पड़े की पीठ पर बसकर



बहिष्कार ]

नहीं दूया था, वह चार सप्ताहों में अलग था पड़ा। कुन्ती मार से बेहम हाथ पर धृष्टी पर लाठ गई। बतहाया गिरने से वह बहोश हो गई। उसकी सारी सुप्त-सुप्त जाती रही, लेकिन जयशंकर का हाथ न रुका।

[ दो ]

पकाल की अलगाव को पता था कि जयशंकर सवेरे से ही उपद्रव मचा कर पर से निकल गया है। कुन्ती ने उसे बतसाध था कि किस तरह वह सुबह से मोशन बना कर उसकी प्रतीक्षा में बैठी है। जयशंकर कुन्ती की नीक मुलाकर बौद्ध भाव पर उसके पहुँचने तक वह अचेत हो गई थी और जयशंकर उसके शरीर को धुने का रहा था। जयशंकर ने मांग कर हस्ता मचा दिया। पड़ोसी इकट्ठे हो गये, परन्तु उस समय तक जयशंकर अपनी इच्छा पूरी कर चुका था। कुन्ती निराश ही पड़ी थी।

सांग जयशंकर की निन्हा करने लगे। पड़ोसियों की सेवा सुधुवा के बाद कुन्ती होश में आई। फिर भी कई दिन तक उसमें ठठने बैठने की सामर्थ्य न थी। जगह जगह शरीर में घाव हो गये थे। वह शायद महीनों तक ॥ जयशंकर और उसके मिशन कार्यक्रम चल रहे होंगे।

जयशंकर की इस अमानुषिक-प्रकृति पर लोगों में असम्योप फैला। समाम गाँव में मिलकर पंचायत की। उन्होंने उसे उपद्रव दण्ड देना विचार, लेकिन वह भी किसी से क्षिपा नहीं था कि जयशंकर के लिये किसी कष्टकर दण्ड का निश्चय करने से उस समाज का सात मार कुन्ती पर पड़ेगा। सोच-विचारकर उन्होंने उसका सामाजिक बहिष्कार करना तय किया।

## [ तीन ]

जन, कुल, मान मर्यादा, प्रतिष्ठा जिनका सदा से बर्खास्त को गर्व था। समस्त कुलमय जिनका सहारा होकर उसने न जाने किसमें असंभव संभव कर बांधा था—इस बार ठठके सारे असन्न कुम्हिले सिद्ध हुए।

घर के मौजूद, छोड़कर बैठ रहे। सेठ में काम करनेवाले नहीं आये। मेहतर, खेवी, जमार समी ने अपना अपना काम बन्द कर दिया। वह कहीं जाता तो कोई बात नहीं करता। उसे ऐसा माझूम पड़ा जैसे वह एक मर्बूज परिस्थिति में पड़ गया है। उसका रहना असंभव हो गया। जिन लोगों को वह कृपा-कचरा और हीन-अपराध समझता था, उनका महान्न अब समझ में आया। कुत्ती को छोड़कर रोप समी अपने से बिरहने होम्ने। वह केवल एहिदी ही न रह कर, नीकर चाकर, खेवी-कहार समी कुल बन गई। अपनी शक्ति पर उसने त्वाभी को कष्ट नहीं होने दिया।

बर्खास्त फिर भी न बदला। उसका बर्खास्त बैठा ही रहा जबकि उससे भी अधिक कुटी तरह वह उसकी कबर लेता। वह जानता था कि उससे ऊपर समान के कोप का कारण तो कुत्ती ही है।

## [ चार ]

घर में खाने पीने का सामान थक गया। अब कुत्ती क्या करे। वह भी निरुपाय हो चली। तुकानदार बर्खास्त के हाथ सीधा नहीं बचते थे। ऐसी दुर्रैया की कल्पना उसने न की थी। मिनोंसे मिलने को, लोगों से बातचीत करने को, बालकों से हँसने-बोलने को उसका जी मचल-मचल कर रहा

## बहिष्कार ]

जाता था पर सब उसे देखकर ऐसे भागने लगे जैसे कि वह मृत हो। वह अपने ही गांव में एक अपरिचित की तरह रहते हुए म्याकुल हो उठा। उसके जैसे हो गये, साधुन नहीं था। रो दिन तक कुछ मिला नहीं। सूसा खासा वह और अधिक सहन न कर सका। उसके से रात को वह घर से निकल आया। गांव मर का कोप उसे सहन न हुआ।

त्रिच बाठ को कुन्ती डरती थी वही हो गई। वह अपने मित्रों स्वामी के लिए ब्राह्मणों के आँखों में रोक सकी। रो-रोकर लोगों की आलापना करने लगी।

राखस गांव छोड़ गया लोगों को सुनकर प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने अमोघ हथियार को वापस ले लिया। अन्धकार के घर को पहले बैठी सुविचार मिलने लगे इसका प्रबंध कर दिया, पर सवाल यह था कि सुविचारें मोगे कौन ? कुन्ती जबरन के बिना आसन्न छोड़ बैठी थी। वह न काटी-पीटी, न किमी से बोलती। लोग समझ समझ कर हार गये पर वे उसे अपने निग्रह से विरत न कर पाये।

जलेश्वर ने आकर समझाया—कुन्ती मामी तुम किसके लिए तान-पान छोड़ बैठी हो ? आदमी ही होता वह तो इतने बर्ष तक तुम्हारी अनन्य सेवा को न समझ पाता ? तुमने उसके लिए क्या नहीं किया और उसने तुम्हें क्या बदला दिया ? फिर भी तुम उसके लिए म्याकुल हो। मार मार कर तुम्हारी कुन्दन सी काण को हड्डियों का ढांचा बना गया, ऐसे आदमी को अगना कौन रहेगा ? एक दूरी हो जा उस का नाम भीम पर रखाये बैठी हो।

कुन्ती ने शान्त माण से उसे उत्तर दिया—इस विषय में तुम मुझे न समझाया बहन । मैं मूढ़ हूँ । मैं समझ न सकूंगी ।

वह अपने निश्चय पर पत्थर की तरह दृढ़ बनी रही ।

## [ पाँच ]

बयरोकर को बहिष्कार के दिन तक इतना नीरस न लग बें, जितने इस समय दिल्ली जैसे बड़े नगर में लाखों छात्रमियाँ को भीड़ में प्रतीत होते हैं । वह अच्छी तरह अनुमन करने लगा कि पर नौकरा के अलङ्कार में और मित्रों के कूठ आने में एक तरह का रस था, जिसका यहाँ सर्वत्र अभाव है । यहाँ के मौखिक शिक्षाध्यय में एक हृदयहीन छात्रा क्षिपी हुई है, जो नीरस है, शुष्क है और है स्वार्थी संश्लिष्ट किन्तु गाँव के लोगों के सर्वत्र बिच्छेद में एक सौहार्द था, उनके कोप में एक हितकामना थी । यहाँ अपरिचित जगह में लोग का प्रति कोई सम्बन्ध की जाँच नहीं करता । स्वार्थ की बुनियाँ में सब अपने अपने हित की बात सोचते हैं ।

इन सब बातों को निवारकर बयरोकर का हृदय पर्याप्त से इतित हो गया । जो आँखें सदा श्रेय की क्वाला में जलना जानती थीं, वे आज कल विन्दुओं के शीतल स्पर्श से भीतर शान्त हो गई । जो हृदय निष्कल आश्रय से बचका करता था वह मधुर पीड़ा से आवृत हो उठा । उसने इस निर्वासन में अपने जीवन के ध्येय का खोज लिया । उसी दिन उसने पर जाने के लिये अपने सारे मनीष बन्धन निर्वहता से ताड़ दिये । वह पिंजर-मुक्त पक्षी की तरह स्वच्छन्द आवागमन से लौट आता ।

अच्छूत ]

वह कर पहुँचा पर कुन्ती एग से दुर्बल होकर चारपाई पर पड़ी थी। उसकी जीबमगाया का अन्तिम अन्वय बहुत ख़री समाप्त होने वाला था, फिर भी जकड़कर को लौटा देकर एक अचूक आत्म से उसका मुँह सिल उठा। जीवन की दुष्कृतम छावना के पवित्र अभुक्क दोनो मेरो से मिश्रित होकर अन्तिम मंत्र की तरह जकड़कर के पैरों पर गिर पड़े।

वह स्वयं-निरुपल माव से चुपचाप कहा रह। जैसे अन्तर्गत की अज्ञात सभी बातें एकएक उसके समीप स्पष्ट हो उठी ह। उसने कुन्ती का हाथ, बड़े प्यार से, अपने हाथ में ले लिया।

कुन्ती की हल-हलवाई काँका से एक स्थिर ज्योति अचल माव से छाकर बैठ गई। उसका निष्पाद्य-निरुपल शीतल हाथ लिये जकड़कर अलङ्कार-सा बैठा रह गया।

## अच्छूत

भोजन खमार का बिक्वा ने दूदी माँपड़ी से निकलकर बालक का गद्द में भर लिया और उसका मुँह धूम-कर कहा—“बिदा ! तू निरा पगला है। भला वे रोटी के टुकड़े लेकर कहाँ जायगा ?”

बालक—“नहीं अम्मा ! मैं तो लेमाऊँ गा।”

माता—“बिद अम्मी नहीं होती। जिन्हें सुन्हर से सुन्हर भोजन का भोग लगाया जाता है, उन्हें यह खूनी रोटी।” —“बलो, ऐसी बातें नहीं करते। तूम वा बड़े राजा-केस हा।”

बालक फिर हिसाकर कहने लगा—“रोटी से भी अच्छा भोग लगात है ! मंदी रोटी न खाएगे ! बाह, मैं उनके मुँह में दूख न दूँगा”।

मौ की आँखों में आँसू आगम। वह मन में मन कहने लगी कि उसने जोहक सिर पर एक बस्ता बाँधी कर ली है। यदि वह स्वयं उसके हृदय में ऐसी भावना न भरती तो आज वह समय क्यों आता ? फिर भी उसने बड़े बीरव के साथ कहा—“मान जाआ। वहाँ तुम्हें कार्य जाने भी तो नहीं देगा। बड़े पुजारी महाशय वहाँ पहरा बैठे हैं। वे हम हांगों की पूजा के ठाकुर मर्हो हैं। अपने ठाकुर तो अपने घर में ही हैं। उन्हें क्यों

मधुर ]

नहीं जाता देख । वे गरीब भी हैं और उतने ऊँचे भी नहीं हैं । मन्दिर के ठाण्डर धर्म-मुर्तियाँ हैं । हम जानूँ यही कि उनके दर्शन का अधिकार नहीं है ।”

बालक ने मजलकर कहा—“यही मैं तो जानूँ था । मुझे वहाँ कोई नहीं जानता । मैं ओर से चिल्ला दूँगा तुम्हीं कहती थी कि वे बड़े दयावान हैं । कब तक भी आपने पास न जाना लेंगे ।”

मैं ने ठमकते हुए हँस का सामना कहा—“अच्छा चले जाना, मैं तुम्हें रोकती नहीं । लेकिन इस बापटरी में मन्दिर का द्वार बंद होगा । हमी ठाण्डर की के आराम में विश्र्व कहगा । नहीं मानता है तो योही घर बाद लौट का जाना ।”

मैं की वह बात बालक ने सहज ही मान ली । माता ने भी संताप की लौ ली । उसने समझा कि जल-कूट में सब भूल जायगा, पर बालक की पुनः एकी थी । उसने छे जाकर छोटी कटीया के नीचे छिपायी । मैं अपने काम में लग गई ।

गाँव के कुँसे मकान में उस ने फिर एक बार धीरे से कहा—  
“अब तो आरती का समय हो गया ।”

उसके कोमल और सरस स्वर की और जाई किसी ने न सुना हो, पर वे छड़ी के टुकड़े और कूटा कटीया वाली उलुका से सुन रहे थे । सनसनाते हुए समीर के मधुर में जानो उम्मी की बुझती हुई बात प्रतिध्वनित हो उठी । बालक ने शीघ्रता से उठे उठा खिच और मन्दिर की ओर दौड़ गया ।

मन्दिर की बकान्नीय पहली ही बार उसने देखी थी। वह बकी  
 देर तक अकित और संवकाय हुआ था चारा बार साकता रहा। वहाँ की  
 ठकठ-भकठ और गज गजे का उसके हृदय पर गहरा असर पड़ा। उसके  
 मनमें आया कि सन्ध्या ही मैं की बात न मानकर उसने भूल की। उसने  
 अपनी रोटी का टुकड़ा हथों से बसकर कुरत में छिपा लिया। वहाँ आ गया  
 था, इसलिए भाग भी नहीं सका। हिंडोले पर मूसाही हुई उसने जब  
 ठाकुर की की मूर्ति देखी, तब भद्रा और लाल ॥ माया झुका लिया।  
 उसी समय उसके सामने किसी ने धारती बढ़ा दी। वह मग से पीछे हटा  
 पर उसके हाथ बढ़कर धारती लाने लगे और रोटी छूटकर ठाकुर की के  
 चरणों के पास आ पड़ी।

पुजारी ने हस्ता किया, और लोगो न 'शूद्र' 'बमार' की नील  
 पुकार के साथ छि छि करके उसे बाहर ठकेल दिया। वह अचेत होकर  
 चबूतरे के नीचे आ गिरा, पर उस बार किसी ने ध्यान न दिया। सब लोग  
 शूद्र की हवा से अपवित्र हो गये मगवान को गंगा जल से आशमन करा  
 रहे न। गाव के गबर से शूद्र चरणों से अपवित्र हुई दुष्पी लीपी आ  
 रही थी।

[ १० ]

जब बासक ने जोर से कराहकर ओलें खोलीं, सब अपने  
 आपकी राती हुई मी की गार में पाया। उसकी आंखों से आंसुओं की धार  
 बह रही थी।



अक्षुत्त ]

कतुव दिन हो गये पर बालक का मन इस घटना का स्मरण करके  
 सदा कष्टाग्ना रहा। उसे ज्ञानि और शास्त्र केवल इतना ही था, कि जिनके  
 मन पर वह मन्दिर में प्रवेश करने का साहस कर सता था, उन्हीं की  
 उपस्थिति में, वह कुटी तरह बुरबुरास गया। व देखाते रहे, और कुम्भी  
 न कहा। सारा जन्मभार उन्हीं के सामने हुआ, पर वे चुप थे। उनकी  
 निष्ठुरता पर उस दिन उसे और भी कष्ट हुआ, जब उस जन्म और  
 अस्तित्व के बाद उसकी माता का भी उन्होंने पकड़ लिया। वह फिर पकड़  
 कर जब उसे को रोकने लगा तो उस में ने जहाँ कोलकर इतना ही कहा  
 था—“मुझे ठाकुर की कुल्लते है। उनकी आज्ञा अमान्य नहीं हो सकती।  
 दूध बर नहीं। वे ही मुझारी रखा करण। साधो, एक बार अपना हाथ  
 मुझे लुप्त हो।”

इसके बाद उसे को प्रार्थना हो गया। जन्मेता बालक रोता  
 बिस्लाता रहा। उसी समय से ठाकुर की की कठोरता और स्वार्थरता से  
 उसका मन सिम हो गया। अनेक बरों की स्थापित मूर्ति का लेकर उसने  
 माते में बैठ दिया। तुमहीचारे का लुररी से दहाकर डेर कर दिया। उस  
 समय उसके मन में लज्जा भी दया मया का संसार न हुआ।

एक अक्षुत्त का अज्ञानाशित साहस पुनारी महाराज के दिल में  
 काटे की तरह लटकता रहा। उसका कहना था कि वह उपद्रव नाम-बुद्ध  
 कर दिया गया है। वर कलिकुल था गया है। शूरा ने शास्त्रों की पवित्रता को  
 मज करने का ठेका ले लिया है, वर उसका विश्वास था कि ऐसी जन्मभार  
 की प्राप्ति संसार में कई बार आ चुकी है, लेकिन दीपक की प्रशस्ति वर

पतंगों की भाँति आतताइयों का शन्त ही अपरयम्माणी है। उनकी दुर्ग-  
क्रांक्षाओं का समस्त स्वर्ग भगवान को अभीष्ट है। उन्हें तो स्वप्न में कई  
बार भगवान की आश से यह पवित्र आदेश मिल भी चुका था कि शत्रु को  
कभी पराजय न हो। अपने भक्तों के हाथ से उनके प्रवास को मजबूत  
देखकर वे प्रसन्न हुनि।

पुजारी जी के इन भाषा ने भक्तों के ठठार हृदय में तहलका मचा  
दिया। छुट्ट रस्ती की जगह मरकर छाप बन कर रेंगने लगा। एक छोटे  
से बालक की सरस और बालकोषित भावना ने विग्रह और मनोमालिन्ग  
का विरगुप्त रूप धारण कर लिया। नीचा की इस दृक्छ से स्निग्ध-मानी  
दुर्लभ कमीनगर और महावना का भी भरा मासूम पड़ा। और कुछ ही  
जाता, यदि उसी समय सड़की के अचानक बीमार हो जाने से पुजारी जी  
को बाहर इलाक के लिए न जाना पड़ता। इधर पुजारी जी चले गये, और  
उन्हीं के साथ विशेष का प्रखलित भाव भी बस गया। इसी बीच अपने  
दुलारे बच्चे मुकुटा को अनाथ छोड़कर, लापन की विषय उस घम को  
पसी गई, जहाँ ऊँच-नीच का बदमाश नहीं है।

मौ के बाद किसी ने उस बालक की परवाह नहीं की। वह  
बेधात दर-दर मारा फटा। आसिर उसे अपने देतुक कर्म से काफी प्रसन्न  
हो जाने पर ईर्ष्यामत्त की ईर्ष्या होनी पड़ी। ऐसा करते समय उसे कुछ  
हुआ नहीं मासूम पड़ा। म तो उसकी टांग ही अधिक थी और न अपने  
कर्म के प्रति भद्र के ही कोई विशेष कारण थे।

पुजारी जी जब प्रवास से लौटे, तब आनन्द से पूछकर उन्हें यह

कुछ दिन हो गये पर बालक का मन इस बटना का याद करके  
 सदा कषाग्रता रहा। उसे मालि और शाक बरसा इतना ही था, कि जिनके  
 कल पर वह मन्दिर में प्रवेश करने का साहस कर सका था, उन्हीं की  
 उपस्थिति में, वह कुटी तरह दुरगुण्य गय। वे देखते रह, और कुसुमी  
 न कहा। सदा अन्धकार उन्हीं के सामने हुआ, पर वे चुप थे। उनकी  
 निष्पत्ति पर उस दिन उसे और भी शय हुआ, जब उस अमास और  
 अशुभ काल पर उसकी माता का भी उन्होंने पकड़ लिया। वह फिर काह  
 कर जब माँ को रोکنे लग्य था, तब माँ ने बालों साखकर इतना ही कहा  
 था—“तुम्हें ठगुर जी कुलावे हैं। उनकी माया अमास्य नहीं हो सकती।  
 तुम बड़ नहीं। वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे। साक्षा, एक बार अपना हाथ  
 तुम्हें झुम्ने दो।”

इसके बाद माँ का प्रस्थान हो गया। अकेला बालक रोता  
 बिस्ताता रहा। उसी समय स ठगुर जी की कठमरता और स्वाधैरता स  
 उसका मन सिध हो गया। अनेक दलों की स्थापित मूर्ति का लेकर उसने  
 माते में बैठ कर शिव। कुलभीषीरे को लुरवी स दहाकर ठेर कर दिया। उस  
 समय उसके मन में तनिक भी शय मय का संसार न हुआ।

एक अशुभ का अमासाशित राहण पुनारी महापत्र के दिवस में  
 कावे की तरह सडकता रहा। उनका कहना था कि वह उपद्रव पान-भुक्त  
 कर किध गय है। बार कसिपुत्र था गया है। शूद्रा में शास्त्रों की पवित्रता को  
 नष्ट करने का ठेकर ले लिया है, पर उनका विश्वास था कि ऐसी अमाचार  
 की अप्रति संसार में कई बार आ चुकी है, लेकिन दीपक की ज्योति पर

पतंगों की मंति आतताइयों का शक्त ही अक्षर्यगमानी है। उनकी दुरा-  
 कंचाओं का दमन स्वयं भगवान को अभीष्ट है। उन्हें तो स्वयं में कई  
 बार भगवान की ओर से यह पवित्र आदेश मिल भी चुका था कि शत्रु का  
 कर्मी पमपन न हो। अपने मर्त्य के हाथ से उनके प्रवास को नष्ट होते  
 देखकर वे प्रसन्न हुये।

पुजारी जी के इन भावा ने मर्त्यों के उदार हृदय में तहलका मचा  
 दिया। छुट रस्ती की जगह मरकर साँप बन कर रेंगने लग्य। एक छोटे  
 से बालक की सरस और बालकान्धित भावना ने विग्रह और मनोमालिन्य  
 का विस्तृत रूप प्रारम्भ कर लिया। नीचों की इस हरकत से कनी-मानी  
 दुर्जाल जमीनदार और महाकर्ता का भी दुरा माखूम पडा। और कुछ ही  
 जात, यदि ठीकी समय लड़की के अचानक बीमार हो जाने से पुजारी जी  
 को बाहर हस्ता के लिए न जाना पड़ता। इधर पुजारी जी चले गये, और  
 उन्हीं के साथ विद्वेष का प्रज्वलित भाव भी घम गम्य। इसी बीच अपने  
 दुष्टार बन्ने मुलुआ का अनाथ झुंझर, लाचन की विनय उस घम को  
 चली गई, जहां ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है।

मैं क बाह किसी ने उस बालक की परवाह नहीं की। वह  
 बपरा दर-दर मारा पड़ा। आतिर उस अपने दैतुक कर्म से काफी बला  
 हा जाने पर ईर्ष्यामत्त की दृष्टि लेनी पड़ी। ऐसा करते समय उस कुछ  
 कुछ नहीं माखूम पडा। न तो उसकी टम ही अन्तिक थी और न करने  
 कर्म के प्रति अज्ञा के ही कोई विचार प्रारम्भ थे।

पुजारी जी जब प्रवास से लौटे, तब आनन्द से फूँसकर उन्हें था

मनुष्य विन हो गये पर बालक का मन इस घटना को याद करके  
 सदा कष्टाच्छिन्न रहा। उसे भ्रान्ति और शोक केवल इतना ही था, कि दिनक  
 वन पर वह मन्दिर में प्रवेश करने का साहस कर सका था, उन्हीं की  
 उपस्थिति में, वह कुरी तरह नुनुराया गया। वे देखते रहे, और कुम्भी  
 न कहा। बाप अत्यन्त उन्हीं के सामने हुआ, पर वे चुप थे। उनकी  
 निष्ठुरता पर उस दिन उसे और भी क्रोध हुआ, जब उस क्रमाप और  
 प्रसन्न बनाकर उसकी माता को भी उन्हीं के पास बुलाया। वह फिर क्रोध  
 कर जब मं को रोकने लगा था, तब मं ने आँखें खालकर इतना ही कहा  
 था—“मुझे ठाकुर जी बुलाते हैं। उनकी आज्ञा क्रमाप नहीं हो सकती।  
 मुमं नहीं। वे ही बुझाती रखा करण। लाधा, एक बार अपना हाथ  
 मुझे धूमने दो।”

इसके बाद मं का आश्रय हो गया। अनेक बालक रोता  
 बिस्ताता रहा। उसी समय स ठाकुर जी की कठोरता और स्वार्थपरता से  
 उसका मन लिप्त हो गया। अनेक वर्षों की स्थापित मूर्ति का लेकर उसने  
 मात में बैठ दिया। तुलसीदास का मुरपी स बहाकर डेर कर दिया। उस  
 समय उसका मन में तनिक भी दया-मय का संसार न हुआ।

एक अज्ञान का अग्रतान्त्रित पाहस पुकारी महाराम के दिम में  
 काट की तरह अक्षरता रहा। उनका कहना था कि वह उपद्रव आम-भुक्त  
 कर किया गया है। बार कलियुग का गया है। शूद्र ने शास्त्र की वविधता का  
 नष्ट करने का ठेका हा लिया है, पर उनका विश्वास था कि ऐसी क्रमाचार  
 की आविर्भाव संसार में नष्ट बार आ चुकी है, लेकिन दीवक की मूर्ति पर

वही कामों पर हाथ रख लेता था, पर पुजारी भी लापता थे। बहुत ठण्डा हुई परन्तु उनकी गिरफ्तारी न हो सकी। उस दिन से मन्दिर के द्वार बन्द रहने लगे। धीरे धीरे मूलों की भीड़ भी कम होती गई। सुनसान सा हो गया।

माघ की अँकरी रात थी। पुजारी भी सिंहासन के नीचे मूर्ति पर माथा धिसकर खमा मांग रहे थे। आँसों में अमृतताप के आँसू थे, माँसे पर कलह की काशिका। जिस मन्दिर पर अन्य मर अधिष्ठार रहा था, वही जोरों की तरह सिसकियाँ तक लेने में डरते थे। बहुत मिन्नत और प्रार्थना की, पर स्वीकार नहीं हुई। जैसे होती, अनाचार से ठाकुर जी संत आ गये थे। एक हो नहीं, दर्जनों सतियों के सतीत्व का अपहरण पुजारी जी ने उन्हीं के सिंहासन की ओर में किया था। उस दिन तो उन्होंने छामने ही, चरखों के पास, अपने पापों की गठरी कोस दी थी। प्यारा तो लबालब भय हुआ ही था। एक बूँद तक डालने की गुंजाइश न थी, पर कुल गन्ध मरके का मुँह। सब आत्रिणी और मिन्नत, खमा और प्रार्थना क्या कर सकती थी।

ठाकुर जी के मुँह केर लेने पर भी आज पुजारी जी उठते न थे। इसी समय द्वार खुला, और बैटरी का प्रकाश चारों ओर फैल गया। पुजारी जी हड़बड़ा कर जूठ बैठे। उनके चारों ओर पुलिस के सिपाही थे, और सामन जिन्दी सुपरि-टेन्डेन्ट पुलिस उपकीर्ण लड़े थे। पुजारी जी ससम्भ्रम हाथ जोड़कर उस मुगल जोड़ी के आगे लड़े हो गये। छाह का पुण्य नाम सुझाया था।

मैसूर ]

कहने में रुकोच नहीं हुआ कि ठाकुर जी के अपमान के कारण ही ठेठ शूद्र का घर गिरकर ढर हा गया। माँ मर गई, बेटी लापता हो गयी। बनीन का भी कमी-कमी दुर्भाग्य हुआ है, अब वहाँ कुछे और विस्मय तक नहीं रहें। उस समय पुजारी महाराज यह बात भूल ही गये कि उसी बीच उनकी लकड़ी भी तो मर गई थी। घर में अब कुछरा दिव्य जलाने वाला नहीं रह गया था। लेकिन शायद वह बात बाद में आजाती, तो भी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता था कि वह भी मगधन का ही काम है। क्योंकि बात बात में उनके मुँह से निकलता था—‘मगधन जो करते हैं अपना ही करते हैं।’

[ छीन ]

इन बातों का बँटते जमाना हो गया। न किसी को सुलुआ की शूद्र थी, न उस घटना को। पुजारी जी की ठेठ छाठ से हो-एक बर्य ऊपर निकल चुकी थी तथापि ठाकुर जी की कृपा और घर मान की बगैरत बेहरे पर मौजवानों से बढ़कर रीमक थी। मगधन की राखलीला के सम्प्रदाय उत्सव समय से जिस रूढ़ि से आह्वानही दिलाते थे, वह ओताओ में अनुगम और भक्ति की तरहिनी सहारा देती थी। उनकी बेबी-बाटी तो उन्हीं में रूढ़-देव का आमास पाकर भूम-भूम जाती थीं।

अन्धधनक विपत्ति दूर पकी। पुजारी महाराज पर एक और बर्य की मुबती पर बलात्कार का अभियोग जता। सारी बस्ती में यह खबर बिजली की तरह दोड़ गई। लोगों का विरवास नहीं होता था। यह सुनता,

वही कामों पर हाथ रक्क सेता था, पर पुजारी जी सापता थे । बहुत तन्नामा हुई परन्तु उनकी गिरफ्तारी न हो सकी । उस दिन से मन्दिर के द्वार बन्द रहने लगे । धीरे धीरे मूलों की मीड़ भी कम होती गई । सुनसान सा हो गया ।

माघ की अंघेरी रात थी । पुजारी जी सिंहासन के नीचे भूमि पर गंगा बिसकर जमा मांग रहे थे । आँसों में अनुताप के आँसू थे, माँसे पर कलाह की काशिका । जिस मन्दिर पर जन्म भर अग्रिम रह चुका था, वही चोरी की तरह सिसकियों तक लेने में डरते थे । बहुत भिन्न और प्रार्थना की, पर स्वीकार नहीं हुई । कैसे होती, अनाचार से ठाकुर जी का आ गये थे । एक हाँ नहीं, दूसरों सतिष के सतीष का अपहरण पुजारी जी ने उन्हीं के सिंहासन की ओट में किया था । उस दिन तो उन्होंने सामने ही, करणों के पास, अपने पापों की गटरी कोल ली थी । प्यारा तो बालक मरा हुआ ही था । एक बूँद तक बालने की गुआदश न थी, पर कुत गया मडके का मुँह । तब आजिजी और भिन्न, जमा और प्रार्थना कर सकती थी ?

ठाकुर जी के मुँह पर लेने पर भी आज पुजारी जी ठठते न थे । इसी समय द्वार खुला, और पैटरी का प्रकाश चारों ओर फैल गया । पुजारी जी हकबका कर कूठ बैठे । उनके चारों ओर पुलिस के सिपाही थे और सामने बिप्री सुपरिस्टेन्डेंट पुलिस उपजीति लड़े थे । पुजारी जी सचम्भ्रम हाथ जोड़कर उस मुगल शाही के आगे लड़े हो गये । साहब का पुजना नाम मुसुआ था ।



अक्षत ]

कहने में सकोच नहीं हुआ कि ठाकुर जी के अपमान के कारण ही ठंठ गृह का घर गिरकर बर हा गया। मां मर गई, बेरा लापता हो गया। जमीन का भी कर्म कमी हुआ होना है, अब वहां कुत्ते बीर विस्मय तक नहीं रहते। उस समय पुजारी महाराज वह बात सुन ही गये कि ठंठी बीच उनकी लकड़ी भी ता मर गई थी। घर में अब बुरा दिव्य बलासे बाला नहीं रह गया था। लेकिन आपर वह बात रात भी आभासी, ता भी निश्चय-पूर्वक नहीं कही कहा जा सकता था कि यह भी मगवान का ही कोप है। क्योंकि बात रात में उनके मुह से निकलता था—‘मगवान का करते हैं अच्छा ही करते हैं।’

[ तील ]

इन बातों को बंते समाला हा गया। न किसी को दुःखता की मर थी, न बस बटना की। पुजारी जी की ठंठ छाठ से द-एक वर्ष ठंठ निकल चुकी थी, तथापि ठाकुर जी की कृपा और तर माता की बदौलत बेहरे पर मौजबानो से बहुरर रीतक थी। मगवान की राक्षसीता के अण्डय उलटन समय के जिस स्थिति से अङ्गमङ्गो दिव्यताते थे, वह आताओं में अनुराग और मङ्गि की तरङ्गिनी लहरा बेती थी। ठंठी बेली-बासी ता ठंठ में इष्ट-देव का आमास पाकर मूम मूम जाती थीं।

अचानक बिपति दूर पकी। पुजारी महाराज पर एक पातह वर्ष की मुबती पर कलाकार का आभिशग बला। छारी बंती में यह कबर बिबली की तरह बीक गई। लागों को विश्वास नहीं होता था। आ मुनता,

वही कातों पर हाथ रख लेता था, पर पुजारी जी सापता थे। बहुत उल्लास हुई परन्तु उनकी गिरफ्तारी न हो सकी। उस दिन से मन्दिर के द्वार बन्द रहने लगे। धीरे धीरे मठों की भीड़ भी कम होती गई। मुनसाग सा हो गया।

माघ की आठवीं रात थी। पुजारी जी विहासन के नीचे मूर्ति पर माघ बिठकर समा मंत्र रचे थे। आँखों में अनुत्पाप के आँसू थे, माँह पर कलङ्क की कालिमा। जिस मन्दिर पर जन्म मर अविकार रहा था, वही जोतों की तरह विचलियोंने तक लेने में डरते थे। बहुत मित्र और प्रार्थना की, पर स्वीकार नहीं हुई। कैसे होती, अनाचार से ठाकुर की तब सा गये थे। एक हा नहीं, बर्बनों धरिय के धर्ती का अपहरण पुजारी जी ने उन्हीं के विहासन की ओर में किया था। उस दिन तो उन्होंने सामने ही, करघों के पास, अपना बापों की गटरी कोस दी थी। पत्नी तो सवालन भय हुआ ही था। एक बूँद तक शासन की गुण्डरा न थी, पर कुन मर मठ के का मु ह। तक आगिजी और मित्र, समा और प्रार्थना कर कर सकती थी।

ठाकुर जी के मुँह पर लेने पर भी आज पुजारी जी उठते न थे। इसी समय द्वार खुला, और पैरी का प्रकाश चारों ओर फैल गया। पुजारी जी हड़बड़ा कर जूट बैठे। उनके चारों ओर पुलिस के सिपाही थे, और सामने बिप्री गुपरिस्टेड्ड पुलिस उपलीक लड़े न। पुजारी जी ससन्न हाथ आँककर उस युगल आड़ी के आगे लड़े हो गये। सादर का पुजना नाम मुमुखा था।

इस समय साहब के मन का विचित्र हाल था। वे बीस वर्ष पहले का दृश्य देखकर लुब्ध हो रहे थे। वे सोचते थे कि उस समय शेष में आकर उन्होंने ठाकुर जी के साथ कैसा सुख-व्यस्य किया था। उन्होंने ठाकुर जी की कृपा से आज यह अवसर मिला, जब उन्हें जमान कहकर निकालने जाता कोई न था। स्वयं पुजारी जी हाथ जोड़ कर क्षमा मांग रहे थे। एक दो मिनट में गठ जीवन की सारी बातें एक एक करके उनके स्मृति पट्ट से गुजर गईं। मृत सास में अंतिम समय पखोरा का हाथ उन्हें छीपकर अपनी कहानी दूटे फूटे शब्दों में बसाई थी कि किस तरह पुजारी जी अपनी ही असहाय लड़की को छोड़कर अपना कलक तूर कर आये थे। उन्होंने एक बार भी यह विचार न किया था कि वे अपनी ही संतान के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं। उन बातों को याद करके एक बार उनकी भुदुदियों पर शेष की कुम्भित रेखा दिग्वार्त्ती थी पर मुरझाई थी प्यारी पत्नी के संयमित स्मृति की नम्र-पूर्ण मुख का देखकर उनका वह मास सिंघहित हो गया, स्मृति उन्हें निश्चय हो गया कि उस दिन की मूली रोटी मुसामा के चावल बन गई थी। उसी के प्रसाद-स्वरूप उन्हें जीवन में इतने बड़े परितोष का साक्ष्यभर का पाप।

## वनलता

व्रतगामिनी, शुभ्रतोला दुःखमय समीपवर्ती पर्वतमाला से निष्कृत  
 सपन-वनस्पती को पीरती हुई अमन्तकाल से नयी मांति प्रवाहित है।  
 प्राचि जगत का अनन्त बार कायापलट हो चुका। किन्तु उसकी अमिनरकर  
 गति का कभी भी अवरोध न देला गया। उसके अङ्गस-पुगल से छटी  
 हुई मिटपावली में वही ममरूपानि और तरल-तरङ्गा में वही कल-कल-निनाद  
 है। वहाँ का कुल शारवत, सौन्दर्य विरस्तम और देमव अचल है। विपद्  
 किरन की प्रकृत शोभा ने केन्द्रीभूत होकर वहाँ एक अनुपम गङ्गा की  
 सदि कर दी है। शब्दा में शक्ति नहीं कल्पना में गति नहीं, जो उसकी  
 वास्तविक रूपमा की अनुभूति करा सके।  
 वही एक प्रस्तरकण्ड का सहारा लेकर समीत मृगी की मंति

वनलता, अलक्षणासम्पत्ति सूर्य का तिरस्कार करती हुई, जाती थी।  
 सुखमर स्वप्न-भाव से अचल रहकर विकम्पित स्वर में कहने लगी—  
 'हाँ! पिताजी ठा कहते थे कि अब हम निरापद स्थान में आ गये। यद्यपि  
 वह सच है कि शत्रु वहाँ नहीं नहीं आ सक्त। किन्तु पिताजी के चले जाने  
 से मेरे स्थिते आपदा अवसरमायी है। साथ ही मेरे समीप रहने की अपेक्षा

उनको माता जी के उद्याराये जाना भी अचरक या परम्य इतना विनाश करने ? क्या अत्यन्त प्यारी माता जी बेइता बड़ गई अचाना पिताजी छोड़िये के एत-रहित हाथों में पड़ गये ।"

उसी समय पारबैबती बन-वय से उद्युक्तकर एक स्नाहित कुण्ड-शावक उसके धूमि-धूमरित शीर्ष अन्धकार में शरय मंगले लग्य । मर पिताजी द्वारा पर्वित, मीरय बनम्बली में आगय प्रत्युत्तरनेवस्ती कनकलता ने उसे बतचरी द्वारा सताय हुआ—मानवीय-आत्मन की शोक में, समस्त बुद्धि सगम पड़े बाध से स्थान दिया । उसको मुन-सतिकाओं से बेहिनकर समुपल करने हुए, वह कहने लगी—“ह कानन की शोभा ! तुम्हें सतानेवाला मूर हिसक सचमुच ही दुःख-हीन है ।” वह सब बिना उसने इस भाँति पूर्ण की, माना वह अपने सामान्य बुद्धि भूख गई हो ।

इसी समय पीछे से अचानत मुष्ठी मयन कालिका का भीरकर लीन शम्भ-सती वयन निकला आये । शिखर विपिन में मन्मथकवा रमणी-रत्न को मृग शावक के साथ दूरकर कीर्तुहय एवं मय ने उनसे दृश्य का हिन्दा दिया । धूमर के पिये उहनि अपन अपन आपका धार विपद् में पड़ा मुन्ना नमस्त । उनका वह सन्देश स्वाभाविक ही का कि म जाने कितने समयों में भागकर उस उक्तका में आगय लिया है । यदि वह स निकल-आये का मार्ग सुगम होता तो इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग वैसे ही लीन लगे, किन्तु उस दुर्गम पाटी से किसी की रक्षि में पड़कर भी निकल आगया कलुषा असम्भव था । अतएव जब ‘उत्पन्न मति देता निज मरना’ का उन्होंने शोच—यदि विपत्ति का कोई कारण उपस्थित होगा, तो इसी पुषी



वनलता ]

करो, हमें कामिला यकीन है कि तुम्हारी धर्म कुशल होगी ।

विपत्ति के समय मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जाय करती है । उसे मले-तुरे का ज्ञान नहीं रहता । उसकी छायाछन्न-विवेचन शक्ति छुन हो जाती है । अतएव माता-पिता के विवेक में व्याकुल वनलता वैसी मोहती पुत्र की बाह् मिथ्यात्व कर्मा के कपट-जाल में फँस जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं । बच्ची को विश्वास हो गया । उसने सोच लिया कि पिता के कल्याण के लिये उसे क्या करना चाहिये । सुवर्णम अर्थात् उबड़-धुन न कर वह तुरन्त बादशाह के पास चलने को प्रलुप हो गई किन्तु अन्ध हो कामादुर सैनिकों को यह प्रस्ताव पसन्द न आया । वे उसे कहीं से जाने से पूर्व ही अपनी बाधना दून किया चाहते थे । फलतः उन्होंने पहले शब्दों से फिर बलपूर्वक प्रतिरोध करना आरम्भ किया किन्तु पहला सैनिक स्वामिम्यद, इद्विच और स्थिर प्रतिक्रिया । उसने उनकी किञ्चित् परवा न कर कमबमाती हुई अनुपाकार लहू के गन्के से एक की जीवन-संज्ञा का पटाघेप करते हुए पुनः तलवार खींच ली । एक क्षण में इतनी बड़ी बच्चा पट गई । दूसरा सैनिक प्राणों की रक्षा के लिए अपने उस माथी के पैरों पर लट्ट गया ।

वनलता को इस तरह के दृश्य देखने का अस्मरण न था । वह बेतनाहीन हाकर कटे हुए की तरह गिर पड़ी ।

[ २१ ]

त्रिषके जीवन-नाटक का प्रयोग राष्ट्र रामकुमारियों के नाच हाव

परिहास में बीता और द्वितीय छाह में उल्लिखित घटनाक्रम सङ्कलित हुआ, प्रस्तुत दृश्य उसी वनसता को दुस्विनारी चम्बिनी के रूप में उपस्थित करता है।

परन्तु अब वह भ्रम में नहीं है, संशेह उसे नहीं घटाता। वह अपने बन्दी-जीवन को दुस्वप्न का परिभाषक नहा समझती। वह शारीरिक मर्यादा को अनुभव करती है—शाह के कपड़-आस का उसे बाल है। वह उसके दृष्टिकोण को समझती उसके ठपासम्म का चुपचाप सुनती और उसकी मरुम्मत कुचेष्टाओं का विरस्कार करती है। शाह भी उस आचरोप पम्पर-बटना रमसी की लाम्बना से विरसुत होकर चुप रह जाता है, उसके श्रेष्ठ विकसित क्षीण कलेवर को देख कर काँप जाता है, चाप ही उसकी एकाग्रता, अतिशयता, सहनशीलता और हृदय को देखकर वह अपने नेत्रों की स्थिति पर संशेह करने लगता है।

साधारण मछली की कन्ध कर्मा कर इतनी अभिमानिनी हो सकती है जो बहापनाह की अकलाकिली बनने के गौरव का विरस्कार कर दे रही बात उसकी समझ में न आती थी। वह सब तरह के प्रयत्न करके हार गया पर वनसता को बरा में न कर पाया। नित्य नये आवांयनों के साथ वह उसे पाने की कोशिश करता पर अपूर्व था उसका सम्म, अद्भुत थी उसकी निष्ठ जिसके सामने मुलतान को निष्फल ही हटना पड़ता। परन्तु वह कब तक चल सकता था। इमीक्षिए वह वनसता को नीला दिने का रहा था।

[ छिन ]

वनसता के पिता ने मगर में शीरकर ओ दृश्य देखा, उससे



उसका हृदय काँप गया। जहाँ पर कुछ दिन पूर्व गाम्मस्यारी अष्टाधिकार्य  
 भेद्येवह काही थी, वहाँ मिट्टी और पत्थर के ढेर पड़े हैं। जो सपन और  
 कोलाहलपूर्ण निवास स्वतः व, वे मीरब और उजाड़ मैदान मन्दर आवे हैं।  
 चौक-विहारिणी-कोरिज-कटी-पुराङ्गनाएँ, जिनहन कमी द्वार का मुँह  
 नहीं देखा था पय की मित्वालिनी हो रही हैं। जिनके अगमित दास दासी  
 वे वे स्वर मोक्ष सरदारों और साधारण रिपाहिय की परिचर्या कर रह  
 हैं। अनेको कर्मप्राप्ति गिलाएँ मुझकर विवेरी कर्म की बीदा हो रहे हैं।  
 बेचालन कुर्म के ग्रहों हो रह हैं। इसके अतिरिक्त हो रहा है—भीषण  
 एत-पात।

कई भीषण रिपाही किसी भी हिन्दू सरदार के अम्बपुर में  
 बेराक टोक जाकर मनमाने पारायिक अस्वपार कर छपटा था। हिन्दुत्व  
 का मान, हिन्दुत्व का गौरव सब पद पर लाञ्छित अपमानित एवं पद  
 दलित होकर जम्पत के हृदय में गहरी ठस भगी बिन्दु हो क्या सकता था।  
 बचारा सब कुछ पुपचाप देवता हुआ अपन घर की ओर जा रहा था।  
 नहीं कह सकते कि उसके हृदय में अपनी प्यारी स्त्री मुनन्दा का विषय में  
 क्या-क्या भाव उठ रहे होंगे। जिस समय उद्यने अपनी सख्ती काय्य वनमता  
 के साथ घर त्याग था, उस समय प्रिय मुनन्दा का सामयिक कमजोर हर्म  
 के कारण मृत्यु के मरते-मरते मरणा पर ही दुःख जाना पड़ा था। अतएव  
 उपरोक्त हृदय बेराकर जम्पत का उसके विषय में निमित्त होना अन्धामाविक  
 नहीं कहा जा सकता। जेते-नैम वह गसी-कृपा का पार करना हुआ अपने  
 मुहल्ले में पटुपा, तो क्या बेगता है कि वहाँ किसी उपद्रवी ने आग लगा



कनसता ]

बापों का हृदय टूक-टूक हा जाता था, बहुश्रुत कौंय जाती भी, विद्याएँ रो  
बेटी की और शिक्षाजनक पिता का, किन्तु उम्रियों पर इसका ललित  
भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने मरके के साथ उसे सीधे लिखा। बाल्यभार  
लिखा लिख कर ईस पड़ा, कबला पलाह मंगने लगी, बहुश्रुत पाव मर से  
दब गई और प्रकृति ने विप्लवक की आस में बड़ी हुई उससे भरकर उनके  
कार्य को पूरा हा जाने दिया।

[ बार ]

'इस्लाम वा मृत्यु—को चाहो स्वीकार कर लो ?—बहुश्रुत प्रमाण  
आपस-हृद-मनिता समस्त बंदिश को तुला दिया गया। बहुश्रुत प्राची के  
मन से फिजल पड़े। हिम्मत के लिए उठारकर, अष्टिक अपमान को  
सहकर सांसारिक मुक्तता के लिए पर-वर्ग में दीक्षित हा गये। बहुत से  
अपने रक्त के बन्धे हैं, उन्होंने हृद रहकर धर्म की मर्मांश को स्मर रक्ता।  
वे एक-एक करके ललवार के पार उठार दिये गये।

आज जम्मत की वारी है। अनेक छँच-नीच मुमलने पर भी अब  
उसने इस्लाम स्वीकार करने में आजा-कानी की, तो उसे भी बकवत की  
आज जाने की आवा हुई। उसकी पार्न ललवार के नीचे पहुँच गई।  
मारने में देर नहीं थी कि उसी समय वह बाहक ने शरीर दुष्ममामा लाकर  
दिया। आई हुई मृत्यु उल गई। ललवार म्मन के अन्दर पहुँच गई जम्मत  
के बहने हुए आन्त साजीवन उम्ह जलप्रवात की भाँति बहन ही रहे—  
हुन्नी हृदय की बंद मरी आदि किम्बत कम न हुई।

बनसत ब्रह्म एक बनसता के विषय में निश्चित था। उसे मालूम न था कि, वह भी कारावास की बातें मोग रही है। ब्रह्म उसे बार विषय में पड़ी हुई सुनकर उसका सम्पादक मर्मांतक पीड़ा से अभिभूत हो गया। किसी तरह यह समाचार मुटुलाबाबा को सचता—यदि प्राणा के माल मी इसकी ब्रह्मता खरीदी जा सकती—तो भी बनसत के लिये वह सस्ती भी किन्तु इन्तिबा पर ही दुःख का पहाड़ टूटा है। नहीं तो जिसका घर बार बूटा, यही ब्रह्म-मृत्यु का प्रास हुई, पुत्री विधवा के ब्रह्मचार का शिकार बनी, स्वयं की कोई गति शेष न रही फिर भी उसका दुःखों से मुक्तकार न था।

देर तक विचार करने के उपरान्त उसने ब्रह्मण्य करना निश्चय किया। पर किसी ब्रह्मण्य में उसे ठोक दिया। उसके हठानु हृदय में ब्रह्मण्य की तरह ही उठने लगी। उसका कुम्हलाया हुआ वदनमंडल प्रसन्नता सा शत होमे लगा। उसे प्रसन्न देखकर कवन विप्राद्विओं का भ्रम हुआ कि उन्होंने वाणी देर पहले का संकेत उसे दिया था उसे पूरा करने के लिए वह तैयार है। उन्होंने ब्रह्म स्वयं शब्द में उसे कहा कि वह ब्रह्म बनसता को समझने कि वह मुत्तवान का प्रस्ताव स्वीकार करते। हठ करने से कोई काम नहीं है। यदि वह उस मना सका तो उसका शेष जीवन सुख प्राप्त।

उसमें मौन भाव से सब कुछ सुन लिया। सोम्यो ने उसे स्वीकृति का बिह समझा। नाना भाषि उसकी ब्रह्मण्यता जान लगी। "भूषु किस प्यारी हाथी है। घर आई हुई सम्पत्ति पर भीम लाठ मारता है। उम्ह

पर की किसी सम्मिलताया नहीं। साधारण मात्सी से बादशाह का दिन कबना कौन न जाहेगा।<sup>19</sup> दुपहरि। बाघ की बात में वह समाचार सारी हस्तनी में केला गया। साग का छाकर उसे सम्मिलित होने लगे। उसने भी मुन्कराकर, हुंकर उनकी बात का अनुमान किया और कहा—“ईश्वर की कृपा से सब कुछ ठीक हो होगा। आप साग पिता न करें, मैं अपने कर्तव्य से मत्सी प्रकार परिचित हूँ।”<sup>20</sup>

कमैक प्रकार से परीक्षा ले-लेने के उपरान्त उसकी बेटी बाट दी गई। गुप्त पर उसके चार। छोटे लम्बे दिने गये। कहने को तो वह इस समय स्वयम्भूत था। किन्तु उसके प्रत्येक कार्य का निरीक्षण अनिमेष दृष्टि से होता था। उसके कठोरता चाहने पर भी अभी वनजता से मैट का व्यवहार नहीं मिला था।

जिस समय चम्पत के साथ वह सब बातें हो रही थीं, उस समय वनजता की अवस्था बड़ी दयनीय थी। प्रति दिन उसके साथ असह्यमान्यता करता जा रहा था। उसके नया स यद्वा-यमुना की अपरित जाण प्रभावित थी, प्रत्येक उपाय से उस विषय किन्तु जा रहा था। किन्तु वह भी अपने दृष्ट पर झटल थी। उसे बश में लाने में कोई उपाय उठा न सकता गया। जब लटी के आगे घाम, घाम और दबड़ सभी विफल हो गये, फिर नीति का अवलम्बन कर कार्य का सफल बनाने का प्रयत्न किया गया। चम्पत का आशा हुई कि वह जाकर वनजता का सही-रास्ते पर लावे। बेचारे ने सिर मुड़ाकर स्वीकार कर लिया।

चम्पत ने कई प्रमुख व्यक्तियों के साथ आराधना में प्रवेश किया।

वहाँ भी कुछ गुप्तचर अग्रकट रूप से पहल से ही नियत कर दिये गये थे।  
 चमत् ने आग बढ़कर मराई आषाढ में पुकारा—बनसठा, बेटी बनसठा।

बनसठा इस निरपेक्षित बोली का सुनते ही मागकर द्वार पर आ गई।  
 पिता के साथ कई अपरिचित व्यक्तियों को बेलाकर वह कुछ ठिठकी किन्तु  
 द्रुत ही 'पिताजी, आ पिताजी' कहती हुई उससे लिपट गई।

पिता ने बाईं कैलाकर बेटी का आलिंगन में बचक लिया। उसे  
 कलेबे का टुकड़ा कहकर प्यार किया पर द्रुत ही उसके हाथों हाथ में  
 एक कपूर बमक उठी और तत्काल बनसठा के सीने को चीर कर पार  
 कर गई। एक हात्ती सी चील के साथ सब कुछ सहज माथ से छपस  
 हो गया।

चमत् को तत्काल काबू में कर लिया गया। उसने भी किसी  
 प्रकार का प्रतिरोध न किया। एक प्रकार से अविरोध समर्पण कर दिया।

एक बिजली की गति वह झुत्तान के सामन पड़ा हुआ। दुली और  
 पराश्रित झुत्तान ने सीमरकर ऐसे लूँकार पिता की सीमित ही साक्ष सीपने  
 की आवा दी।

झुत्तान के आवेश का अक्षरणा पासन किया गया।

## पश्चात्ताप

एक दिन ऐसा होगा जब बमीन उठकर आसमान को चली जाकरी, और तारे टूटकर पैरों के नीचे कुचले जाकरी, इसी तरह की बातें बाबू इमिदफाज बकसर कहा करते थे। वे जब हुक्का लेकर आराम कुर्सी पर बैठ रहते, तो इसी तरह की गप शप में समय की बरबादी होती थी। तब पर मजा यह कि मैं जब कभी रात्र के कर मातम, तो दो-चार-दस मिमिट उनके पास बकर बैठता था।

इमिदफाज साठे सत्तरह बार हार्ड स्कूल की परीक्षा में शरीक हुए। लेकिन गऊ ने सदा बस्ता ही दिया। न मालूम यूनिवर्सिटी के रेकटर्-कीपर से लेकर परीक्षक तक क्या क्या आकर बैठने से ? बरना ऐसे काम और तलबारी महापुरुष के लिए मैट्रिक परीक्षा कार्य नीच नहीं थी।

उनके स्वभाव के साथ आलाचना मिलकर एक हो गई थी। लेकिन वह सफल रहे कि उनकी आलाचना का विषय आजकल के लौकिकों की तरह गुलामीदाम खराब नहीं होने थे, बल्कि होती थी जाव की वह प्यारा था पान का वह बोझा—जिसे खराबिनी लाकर अपनी बातेपेन की बजा से उन्हें पकड़ा लेती थी। वे पूछते थे—अपराध ? क्या पान मैं नहीं खरीदी की। मालूम पड़ता है असली महान का नहीं था।—शुके तो

पहचान हो गई होगी ! क्या शामद तेरी भाभी न अपने शतर का झोंक लगाया था !

सरोज हंस बेती थी, या मुस्कुरा बेती थी, यह ठीक-ठीक याद नहीं आता पर कुछ कर देती थी, जिससे मेरे हृदय में गुदगुदी मच जाती थी । सरोज सचमुच म्थरह बरस से ब्यावा न थी ।

सरोजिनी से फलतू बादविवाद राज ही हाता था । कुछ दिन में मुझे ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे सरोजिनी की बाप के साथ मेरा चिरन्तन सम्बन्ध है । उसे एक दिन न पाने से जैसे मुझे कुछ हो जाता है । बापू रीतिदयाल की दार्शनिकता में बारभिन का विकासवाद, स्वेन्सर की बेब रीमिंग्स और कास्ट का समाज-विज्ञान सब जैसे आकर पुनर्मिल गये थे । इसीलिए कभी-कभी मैं बेहद उत्तेजित होकर विरविद्यालय के अध्यापियों की बुद्धि का आपरोक्षण करने लगता था । इस पर कई बार मेरे मित्रों ने गर्मा-गर्म बहस भी हो चुकी थी । उनकी राय में बापू रीतिदयाल मालदार पिता की मित्रिणी संतान थे । उन्हें वे सब समझी और मनमौजी कहा करते थे । यह मुझे न मालूम क्यों छल न होता था ।

## [ दो ]

राजू के पास जाने का ऐसीग्राम आया । मैं चौककर अपने कमरे में किताबों के ढेर के पास सेट गया । जानता था कैफियत तलब होगी । अनु-जन में अराभी घम्टर नहीं पड़ा । छम-छम करके भाभी र्जनि पर चढ़ गईं । बहन, बुधा सभी के पैरों को आहत आर बातर्जात मेरे कानों में पड़ रही थी ।



पिताजी नीचे मोड़ी स शायद इसी सम्मग्य में कुछ चर्च कर रहे थे।  
सब धीरे-धीरे हिरासत में ले लिया गया। बाहर के बाग छी-छी, हु-हु  
हान लगी। जो मर हटके में बर्ही की बाध की तरह खिंची थी।

मादी किबाड़ ठलकर आई, और मर मिथित पड़े हुए शरीर  
में मोड़ी पुटकी लेकर कहा—बाठ बचना चाहते हैं, उठकर मुह करा  
धला। अब स्कूट मही जमा बड़ेगा, जाला जी। कलोज में जाकर बढ़ना।  
कुनवी है, बर्ही लूज मज रहते हैं।

मिने करकट बरसकर आँसों झलत हुए कहा—नहीं, मुझे मजे नहीं  
आ रहा। आओ, सोने दो।

बहन ने आकर कहा—मम्मा, अभी तक सोने के लिए ही मजबूर  
रहे हो। अब उठकर चलो तो, पिताजी पुकारते हैं। रामू के पाक होने का  
तार आ गया है, जाकर बच्चा टुहाराय कर नहीं आया।

मिने जिस सहनश स पड़ा था, उसके अनुसार तार मँगना पहले  
छिर की बकहूझी की। लेकिन इसका कोई टैंग डीक बहाना भी तो नहीं था।  
मजबूर हाथर में उठ बैठा। तीन बार शरीर का दाक-मोड़ कर जमझाई ली  
और आस-पास प्रकट करके पूछा—रामू का तार आ गया और किसी  
का नहीं।

बहन—रही तो पिता जी पूछ रहे हैं, जल्द कर दो तो सही।

मिने बहुत देर तक इधर उधर करने के बाद नीचे गला। उस समय  
जिना जी घर में मज। कहीं बाहर चले गये न। मोड़ी से ता एक बर्तन  
करके, मुह हाथ धोकर मैं बाहर निकल गया।

मैं नजर बचाकर जा रहा था। आज सब-कुछ किसी से बात करने को जी नहीं हाता था, पर बाबू दीनदयाल कर्ण मानने लग। अपने कमरे से ही पुकारा—किर बुपके-बुपके निकल जा रहा है।

मैं कैसे भूलकर क्या जा रहा था, ऐसा भाव दिला कर वह घर और जबरदस्ती हाथों पर हंसी लाकर उनको बैठक में वापिस बुला।

बाबू दीनदयाल लखनऊ के लमीने की माननी का मजा ले रहा था। एक कठ खींचकर दूसरी ओर धुर्र को छोटव हुए बोले—बाबू मिलर बेर से आये। सरोज। कम लखम हा। पाठ तो शुरू की क्या बात। पल ही लाकर दे। एक ही जगह से सही। लेकिन यह मानता हूँ आज की बात की बेहद आवश्यकता। गम्भीर। वह बात तुम्हें माननी पड़ेगी कि मेरी बाठी पर ध्यान देने से सरोज बड़ी समीच की हो गई है।

पल लेकर मैंने कहा—आज भाफ कीकिये। मैं बरा रात्र के मकल तक जा रहा हूँ।

बाबू दीनदयाल ने कहा—सरोज बरी, तू कहती थी न कि रात्र का तार आया है। वह पास हो गया है, क्यों ?

सरोज—हाँ बही तो जैसा कहने थे—यह कहकर सरोज ने दिखावापूर्ण हटि से मरी ओर देखा, कुछ पूछा नहीं। पूछने की जरूरत भी न थी। उसके मूक सकेत की निधि पढ़ने में मैं काफी इतिथार हो चुका था, लेकिन दुश्चा उत्तर मेरे पास क्या था।

मैंने बाबू दीनदयाल की ओर मुँह करके कहा—यही पता लगाने का जा रहा हूँ।

हीमदत्त—हाँ—हाँ, जबर। मुझे भी लौटकर जानना है।

[ रीति ]

राजू के घर पर पूरी मित्र-मण्डली बसा थी, यह जबर मुझे बाहर ही नौकर से दिख गई। उसने यह भी बतला दिया कि बकिबा के हाथ राजू स्वामी को झाड़कर मुहल्ले के छमी लड़के पास हा मने हैं—उसने क्या गम्भीर बन कर मुझसे पूछा—बाबू आपका मतलबी तो बचका रहा होगा।

मैंने कहा—हुज्ज पता नहीं।—और मैं अपनी से बन्दर बसा गया। सब लोग जैसे मेरी ही चर्चा कर रहे थे। मेरे पहुँचते ही लक्ष्मण को सन्नाह का गया। राजू ने कहा—आमने गोविन्द, मामलूम हुआ, इस काम भी पाव का साक्ष्य नहीं होकर चले।

मैं—आ पहले ही से मामलूम है उसके लिये मैं अपने परेशान नहीं होना चाहता। पाव न होने से भूला मर जाना पड़ेगा, जिसे यह दर हो वह पढ़-पढ़कर शरीर को जपान करे।

विजय ने ध्यान कर कहा—भूलो करने का न भी है। तो उस्ताद से बड़ जाने का दर बसा माका हावा है। मेरी भी बड़ी सलाह है गोविन्द बाबू कि शायिर्द को उस्ताद के करम पर ही करम बड़ाकर बसना चाहिये, और फिर ऐसे उस्ताद जिनके हाथ बंजार में बिरबकोरा की पूरी करकें सुरक्षित हैं।

मैं—उसके करने की आवश्यकता नहीं। मैं तो पहले से ही इसी मत का हूँ। यदि तुम्हारे जपन से ज्योत निकलत दिख पाव तो मेरे और

मुझसे बिचार में रूची भर अन्तर न रहे ।

बिजय—मैंने जंग तो किया नहीं । जिसने किया उससे तो आप कुछ कहने का साहस भी न कर सके । निर्देश के सिर पर हाथ मारने की प्रवृत्ति प्रशंसनीय नहीं होती ।

सब छोटा हँस पड़े, लेकिन मैंने उसी तरह साधारण भाव से कहा—  
अगर तुम्हारा वह भाव नहीं था, तो कोई बात ही नहीं । लेकिन और किसने वह कहा था, वह करा मुझे ?

बिजय—मैंने इस सब का ठेका तो ले नहीं सकता है । राजू की ओर मुँह करके कहा—मार्ग ! अब क्या नहीं कहते हो ? किस की बात का सातव नहें झूठ सके ?

बिजय के आकरवा श्रेय का रहस्य पलक मारते ही मेरी समझ में आ गया । मुझे उसकी मोटी बुद्धि पर हँसी छूटी लेकिन उस भाव को दबाकर जरा कनाबटी श्रेय दिखाते हुए मैंने कहा—बिजय, यदि एक बार हम भी पी पाते, तो फिर क्याम को बरा में रखना कठिन हो जाता ।

बिजय हँसकर की सी जपट लाकर सिलमिला गया । आवेश में बाला—मुझे पीनी हमी तो किसी सलाह या डिप्लमैट की जरूरत न पड़ेगी, लेकिन एक मध्य परिवार की वर्षा दम तरीक से करना सम्भवता नहीं है ।

मैं—उसका उत्तरवाचित्व मैं शक्की तरह समझता हूँ । इसका सिवा मुझे उनके बिजय में कोई भी बात कहने का अधिकार है ।

बिजय—अधिकार है । गार्डिन मैं नहीं समझता था कि परगाथा में तुम्हारे हिंस की सारी बुद्धि का किसी दूसरी जगह उपभोग किया है ।

परपाठाप ]

मैं ठीक-ठीक स्मोकर हो जाता । बस जब तक हूँ तब तक उसी तरह सब बराबर आना-जाना रहेगा । मिनो वर में सब जागों से कह दिया—देखा लग्यो । समय पर जैसा समय में आयेगा वैसा करेगा । इसी क्या बान्दी पड़ी है ?

उस दिन मैं बाबू दीनदयाल के द्वार पर पहुँचा तो बैठक बन्द थी । लटकदार कड़ा हा गया । नीकर आकर मुझे ऊपर ले गया । ऊपर पहुँचने पर बैठक बन्द होने का कारण समय में आ गया । बिजय बाबू छात्र छात्रों के हाथ की चाय पीने आये थे । वे बहुत खुश होकर कह रहे थे—आगे वे कोई सरग बिपय लेंगे ।

ठीक उसी समय मिनो कमरे में घेर गयी । बाबू दीनदयाल ने मुझे सबक करके कहा—ओहो ! गोविन्द पास होनी की प्रसन्नता में माहूम पड़ता है मिनोने पुणने को त्याग नहीं रह गया है ?

मि—पास जाने का गुमान भी न था फिर भी पास हमारा इगलिये लुगी तो कुछ लोगों से ज्यादा ही है । पर मिनोने तुमने में वह प्रापक हो वह बात नहीं है ।

दीनदयाल—बैर-बैर आले दा । तो आपनी प्यारी ठठाया । छात्र मुझे सपना की खुशहाली की तारीफ करनी ही पड़ेगी ।

मैं आप का पारंगी नहीं हूँ तो भी आपकी छात्रा का पालन करेगा । मैं उठकर चाय पीने लगा ।

बाबू दीनदयाल ने बिजय की ओर इशारा कर पूछा—क्यों क्या बगल नहीं आ रही है ? आप शाहर काफ़ी पसन्द करने हो । बेजिन्दे



परचाताप ]

दूसरे-तीसरे ही दिन बहुत जिनो की जल रही बात समाप्त हो गई । मित्र ने इसका मूल कारण मुझे ही समझा हो तो भ्रम नहीं किया, पर इसमें मेरा हाथ रसी भर नहीं था । बल्कि आरसे तक तो मुझे इसका पता भी नहीं चला था ।

[ पांच ]

मैं इसाहाबाद पहुँचे गया तो विषय आगरे पहुँचा । कुछ दिन बाद बाबू दीनदयाल सरोजिनी और अपनी बहन सावित्री को लेकर प्रयाग आ पहुँचे । कई दिनों तक मुझे फिर सरोजिनी के हाथ की मिठाई और चाय नहीं हुई । वे दिन बड़े मजे से बीते ।

उसके बाद वे लाला बनारस जाने की तैयारी करने लगे । बहुत से सम्बन्ध, लालनऊ हाकर फिर मैनपुरी सौद जाना था । मैं उन्हें लेजाकर गाड़ी में बड़ा आनंद । गाड़ी चलने को हुई तो सरोजिनी ने हा बँधे मुझे अपने हाथ से धिरे । बिड़की में सिर झामकर मरी और कितने ही आनंद गिरते गिरते वह बिदा हो गई ।

मैंने अपने मन को संतुष्ट करके कहा—रोटी क्यों हो पगली ! पून फिरकर जब तुम पहुँचोगी, तब तक मैं भी पहुँच जाऊँगा ।

सरोजिनी के बिपश्य बीड़े चलाना मुझा मैं थोड़ा-फाँसे से निराला था । बाबू दीनदयाल मुझे एक बड़ा उत्साहक का काम इस बात दे गये । उन्होंने कहा—मराज क भिजे सुपात्र का आज करके निम्नता ।—मैं आकर देग लूँगा और एक कुछ तप कर दानूँगा । श्यामाकाश की दृष्टा

है, यह सब कार्यें जल्दी ही हो जाय ।

बूढ़ पिता की राय में सराज लकड़ी नहीं दही थी । रूप-गुण ठाँवने जैसे कुछ पाय न, दैसा ही सरल और मधुर स्वभाव भी । उसके भविष्य-जीवन की ताब का बौद्ध किस माँसी को दिया जाय, यह साधना उनके लिए सहज नहीं था ।

मेरी ता पूर्विये ही मत । मैं तो सपन को स्नेह की दृष्टि से देखता ही था ।

मैंने छारे काम छाड़कर साहसिक उठा ली । एक एक कालेज, एक एक होस्टल छान बाला । हफ्ता ठफर अनन्त मित्रों से मिला, अनन्त लड़के देखे । मुझे केवल दो लड़के पसन्द आये, एक बड़े ईसर में था, दूसरा बी० ए० में । इनमें भी बड़े ईसर वाले लड़के का मैंने विरोध रूप से चुना । उसका परिवार उन दिनों प्रयाग में ही था । पता लगाया, मिला । सब बातें बेसी मैं जाहता था, बेसी ही मिल गई ।

उसी दिन तार बेकर मैंने दीनबाल बाबू को बुलाया । वे बाहर शायी बस्ती कर गये । उन्हें भी लड़का पसन्द आया—उस दिन मैं छुर भी अपनी व्यवहार-कुशलता पर मन ही मन गर्व करके खुर हो उठा ।

मेरे मन में सराजिनी के भविष्य की सुलभ कल्पना का मधुर आभास प्रकट हो गया, मेरी हृदय-धीमा के किसी तार में गुन रूप स हर्ष का कंपन प्रतीत होने लगा ।

यदि ही सराज के व्याह का निर्णय पत्र आ पहुँचा । हृदय में हर्ष की एक लहर सरपार हो गई । उसका सम्बन्ध मैंने ही तब किया था । सत्तक



पल पड़ा। प्यार की निमि रतनी जख्मी रखी गई है। दूसरे ही दिन एनस्प्रेस से चला दिया। मेरे मन में कितना उल्लास था, कितना हर्ष था बरान यही हो सकता। मैं साच रहा था कि कब आकर सराज से कहूँ कि देख! मैंने तेरे लिये कितना सुंदर सा घर तलाश किया है।—उसके एनज में मुझे एक बार झण्डी तरह से बसाकर चाय तो पिला दे।

घराज का पाशिमहस हो गया। अक्सर पाकर मैंने अपनी शिकायत उसे सुनाई। उसने हँसकर मुँह छिपा लिया। चाय न पिला कर भी उसकी हँसी में का हृत्तता की मल्लक भी उसने मेरे हृदय को अपरिमित संताप से भर दिया।

प्रसन्नता के उसी क्षण में मैं बाहर आया तो मेरे नाम की रजिस्ट्री लेकर पोस्टमैन रुका था। मैंने इस्तावर करके लिफाफा तो लिया, खोला और पढ़ने लगा। बिट्टी बिजय ने आगरे से भेजी थी। उसने लिखा था—‘तुम पर ही पर हाग, घराज का प्यार है न? बस इच्छितिये वहीं के पते से लिख रहा हूँ। भाई, बहुत कुछ ठपिठ अनुचित कर चुका हूँ। यदि पहल जानता कि तुम सराज को क्या समझते हो, तो वह सब न होता। पर एक बात कहूँगा, अगर तुम्हें यही करना था, सराज को तुम किसी दूसरे को ही सौंपना चाहते थे, तो मैं उठना बुरा न था, पर वह सब कैद कहूँ! मैंने उसके घर को नहीं देखा है, देख भी नहीं सकूँगा। जब तुमने भीर सरोज ने ही मुझे इस नाम नहीं समझा है, तो मैं भी नहीं समझना चाहता हूँ। पर तिल टूट गया है, वह समझना नहीं जा सकता—सिर, मेरी भूल का क्षमा तो कर ही देना, आशा है अक्षय कर हागे। और बाद कुछ हो

हम इतने बड़े दिल के कभी नहीं हो सकते कि इसके बाद भी मेरे नाम का काटा करो।

पत्र मेरे हाथ में रह गया। बीते दिनों की अनेक बदनाम मस्तिष्क में छापी हा मई। विजय की मादानी ने क्या का क्या कर डाला। कम्बल का पहले अपने भी का आभास दे देता था शायद मैं कुछ कर सकता और मुझे विश्वास है कि सच में विरोध न करनी।

## क्रान्ति

राम मरने बैठि के, सबका मुखा लेव ।

जैसी चाकी चाकरी, तैसा ताकी देव ॥

सीताराम, बाबा ! सीताराम—बोका ठपकार कर दे । कनाधाय स्वामी तुम बहुत कुछ बेगें—यही शब्द थे वा गोपाल और रामू के कानों में गूँब गये और एक अट्टहासी संन्यासी कमबल मृगझासा निद्रा आवर द्वार पर लड़ा हो गया ।

गोपाल ने अब से एक इकमी निकली और बाहर फर्श पर फँक दी । बैरगी ने घूँसकर उसे उठाया और बमुन्का का रौंदता हुआ चला गया ।

रामू ने गोपाल की ओर बंनकर कहा—भाई ! आदकल तुमने हाथों सेरात का कोई बिरोध कारण है क्या ?

गोपाल ने मुस्कराकर जवाब दिया—बिरोध न सही, तब भी सेरात करना तुम नहीं है ।

तुम न जाने स भी कुछ काम नहीं किये जाते । हर काम करने

में विचार की जरूरत पड़ती है। मनुष्य के पास जो स्वाभाविक ठपपुछि है : उसकी सृष्टि इसीलिए हुई है कि मेझों की तरह झोंक मूँहकर किसी परम्परा का अनुसरण नहीं करता चाहिए।—रामू ने कुछ बट होकर कहा।

गोपाल को हँसी आ गई। उसने झिझकियाकर उत्तर दिया—  
 बुद्धि इसनी छल्लो भी नहीं है कि फर्कसो का मीन बेते फक्त भी उसका उपभोग किया जाय। इस तरह बात बात में उसका अपमान करके कोई बुद्धिमान् कहला सकता है, इस पर मुझे कतई विश्वास नहीं है।

जो कुछ इसनी ठपपुछि और मन्त्र है कि यह मेरे आराधन की गहराई का नाप नहीं सकती, उसे बुद्धि कहना ही मारी बुद्धि है—रामू ने मी होकर कहा।

गोपाल—पर जिस आराधन में केवल गहराई ही गहराई हो, जिसके आकर का कहीं पता ही न हो, उसे नापने आकर क्या बुद्धि भी गेता नहीं जाने लगती ! कहिये कृपानिधान ! दुग्धार कपन में यदि सचमुच कोई तप है तो उसे छेवे-सावे शब्दों में कहिये। मैं सुनकर उससे कुछ लाभ उठाने की चेष्टा करूँ।

रामू—मैं बलात् किसी व्याख्यान की रचना कर उपदेश देना नहीं चाहता। बात सिर्फ इसनी ही है कि जिस मीन को समर्थ शायमी इसनी लापरवाही से दे बालवे हैं उसके विषय में सोचना तक नहीं चाहते, चाहे जैसा उसका दुरुपयोग हो, इससे उन्हें कोई बाधा नहीं रहता। याचक उनके ऊन्हीं पैसों से चाहे जहर लीहकर एक हजार प्राणियों को समाप्त

कर दे वे उसे पुण्य के पथ में जमा हुआ ही समझते हैं। वास्तव में अभिर्ज्ञान पाप पुण्य का उत्तरदायित्व उन पर रहता है, जो इस तरह मात्रा मात्र की पहचान किये बिना दाग दे जालते हैं। जो कन किसी विद्वान के शब्दों का मर्मज्ञ देखकर आशीर्वाद का रूप धारण करता, वही जरा-सी क्षापरमाही से, करस धार गाथा की बिलमों का पुष्पा बनकर उड़ जाता है, वह और बहुत सी गनी बातों में खस होकर बिच्छे कीटाणुओं का उत्पादक बनता है।

गोपाल ने बीच ही में रोककर कहा—मानता हूँ माई, अब किसी तरह क्षाम करो दास्तान को। बी ऊनने लग्य है। कोई ऐसी चर्चा करो जिससे दिख कुछ हो।

रामू ने हँसकर कहा—अच्छी बात है इसे जानें हो। छँ ता, अब यह बतलाओ कि इस तरह अहलक्षि से नैराठ का क्या बापस है। किस जुगो में यह सब हो रहा है। आज ही नहीं, कई दिनों से, दास्तों की दावतें चल रही हैं। छेर सपादे, सिनेमा मिण्डर, और न जाने क्या क्या। मुझसे उका नहीं, क्यूँ। ठीक-ठीक कहो, मामला क्या है।

गोपाल ने लठी हँसी हँसकर मित्रकत हुए कहा—बड़े बहमी हा, बड़े कुछ हा, और बड़े मिरी हो।

और उपाधिर्ज्ञान देनी हो दे जाती। यह टसल का समय है। मैं उन सब का स्वागत करता हूँ—रामू ने मुम्कराहट क्षिपाकर कहा, पर यह बाद रहला कि आज तुम्हारे क्षिपामे स कई बात क्षिपामी नहीं। आज मैं रली-रली पूछ लूँगा। हर एक बात तुम्हारे मुँह से कहलाकर मानूँगा।

मालो, ठीक-ठीक कहो ।

गोपाल ने हँसकर कहा—तुम झूठ हो । तुम्हारा दिता काला है ।  
इसीसे तुम दूसरों का झूठा समझते हो ।

रामू लज्जा हो गया । मुल्कराकर दोनों हाथ जोड़कर मागे से लगकर  
कहा—छमनादी जी महाराज । तो आप ही कहिए । मैं विरवास कर गा ।

गोपाल—बैसी कोई बात ही नहीं है । मैं जो कह चुका हूँ, कभी  
उससे पूछकू नहीं होने का । घर में चाँद का झंझा रह, उसका मैं जिम्मेदार  
नहीं, न उससे मुझे कोई मतलाव । मेरा निश्चय झटपट, अचल और  
दृढ़ है ।

## [ ४ ]

विवाह के नाम से आज कल के एक विशेष अवस्था और एक  
मन्त्री के सफ़रों के मङ्गल की प्रथा है, ठीक उसी माय से बिगड़कर  
गोपाल ने एक निश्चय करवाया था । बंगली हिरन को बचाने में बैसी  
कठिनाई का सामना करनी पड़ी है, उसके भी कहीं अचिड़ परेशानी का सामना  
उसके घर-बासों को करना पड़ा था । लेकिन कहीं वह नहीं जान पाया कि  
इस बदौली बचानी में ही वैराग्य का यह माय कहीं से आता ।

गोपाल यह बात का सामना, दुसारा और मिठी झड़वा था ।  
उसके मुँह से जो निकल जाता, वही उस घर का कावत था । किसी में  
इतनी बचता न थी जो उसका विरोध करे । उसकी जिद्द का कावत बने  
से वह विरोध का सामना कर देता था । उसकी जिद्द पर घर का किसी आदमी

मोंटि ]

हमरा बन्ध था । वह किसे मुझसे सुपचाप लड़े-लड़े सोचमें लग्य । ऐसे  
असमझुत में वह पड़तो जानब न पड़ा था, संकोची स्वभाव का बेचारा  
गोपाल उसे इस प्रकार कुछ ही मिनट बीते हींग कि हान्मुला और एक  
बारह-तेरह साल की लड़की बाहर मंजकर निरसकाय माथ  
से कोसी आइये, मीठर आइये । बापा में आपको भर्ने ही कह दिक् । मां  
की ठविवत तो सब अच्छी है ।

गोपाल कटपुतली की तरह उसके लागे लागे हो खिना । उसके  
मुँह से एक भी शब्द न निकल सका ।

लड़की ने घर के बरामदे में पहुँचते ही कहा—मां, सा रामू बापा  
आ पहुँचे हैं । मैंने कहा था म कि वे सुनते ही चल दिने हंगे ।

गोपाल मन ही मन संकुचित होम्य । उसने धीरे से कहा—  
रामू, रामू का लुट्टी न की । एक जकरी काम का पड़ा था । इसलिय  
मुझे मज दिया है । मेरा नाम गोपाल है । वे बरसों माताकाश आ सवेंग ।

लंम्य की बुवत्री लाय में लड़की पहचान न सकी थी । जब  
उसने गोपाल का अपरिचित कसठ-स्वर सुना तब एक बार बकित म्य  
से उसकी आर देखा, और लज्जकर एक छोटे माथ गई ।

बसन्त की मां में गोपाल को अपनी विस्तर के नाम ही कुछों पर  
बिठाकर आकर्षित शुक की । योकी बेर में मुझारा—हेमा चल तो बस  
करती है ।—पर हेमा का कहीं पता न था । वह किसी किशोर के पीछे  
झिपी हुई, अपनी मूर्खता पर लज्जा से गहरी आ रही थी ।





एक लहर है, वह बाँधों में भी उमलता कर सकती है ।—मैं बंकिम-बाबू की ऐसी चौकानी से भी डूँब करिय की उससे तुलना किया करता हूँ । बेबी में जो कमजोरी थी हेमा उससे बुरा है । मैंने दोनों को 'आत्मसमर्पण' और 'देवी चौकामी' में से चुना था । उनकी दुर्बलताओं का मैं तुम लोगों में नहीं पाइता था । लेकिन सिर, बाँध भी मैं छाया करता हूँ, यदि वह कभी पूरा हो सके ।—एक निमेषाक्ष लेकर रामू चुप हो गया ।

गणपाल चुपचाप बापराई की मति रामू की बातें सुनता रहा । एक बार वह इतना उत्तेजित हो सका कि फिर से कार्य प्रतिष्ठा कर डाले, पर कुछ मन्त्रमूर्त चुप रह गल । उन्होंने रामू से केवल इतना कहा—मेरे नीकर का छाव लेते जाओ । आज मुझे कुछ काम नहीं है, कर अपनी बेजना भज देना । पढ़कर देखो । मुझे तो अभी तक यह अक्षयिनी का स्वप्न प्रतीत होती है । फिर भी वेन्ने तुमने स्वयं बड़बाप की है ।

छाव रहकर भी छापी की योजना का पता गणपाल को न था । बाल्य में रामू की विमलसुख चमत्ता का पता उसके घर के सामने का भी नहीं था । उसकी बुद्धि का दयार्थ परिवर्तन बचपन ही प्राथमिकों को विशेष रूप से था । उनमें एक धृष्टी के दूसरे सिरे पर बैठा था, और वह भा वसन्तकुमार । रामू में भाविकता और विमलसुखता का अद्भुत उत्पन्न करने वाला नहीं था । रामू की उग्रम गति-विधि का रस्ती-रस्ती हाथ पात सड़ुर पार उसकी बापरी में जोड़ होता था । धूमरी भी हेमा । उसके जीवन पर रामू और वसन्तकुमार दोनों की शिक्षा का प्रभाव था । रामू का तथा से ही उमका शिक्षक बनकर रहा था ।

सोचना पढ़कर गेपाल ने आज पहले पहल अनुमति दिया कि जिसकी आर आजात रूप से वह लिख पाया करता था वही वास्तव में सच्चा आक्षेप है। उसने नेताओं के मापदण्ड मुने से पत्रों की विवेचनाएँ पढ़ी थीं, कॉन्सिल के विचारों पर विचार किया था पर ऐसी बुद्धि-पूर्व ऐसी काम करने लायक योजना कभी उसकी दृष्टि में न पड़ी थी। एक छोटी सी योजना में समस्त मुद्दों के प्रति थे। चौतरफा अति का आयोजन बड़े सुन्दर और सरल ढंग से किया गया था। उसमें सभी तरह के स्वयंसेवकों की व्यवस्था थी। समाज का कौन पुराना दीला है। राष्ट्र की गूँसला कहाँ पर स्थित है, व्यक्तियों के अधिकार की दृष्टि कहाँ कहाँ होती है, इसकी विवेचना थी, तथा एक दम चारों ओर से अति करके सब प्रकार की विरोधवादीयों का अस्तित्व नष्ट करने के लिए दो दशों के संगठन की आवश्यकता पर जोर दिया गया था। एक वा मुक्त-दल और दूसरा युवती-दल। दोनों के अलग-अलग थे, दोनों के अलग-अलग मार्ग। अति, राष्ट्र और समाज की हर एक समस्या इस करने का बल दिया गया था।

विषय की गम्भीरता के कारण गेपाल पूर्णतया उसे समझ तो न सका, पर उसके वह प्रभावित बहुत अधिक हुआ। वह चार दिन उसकी आलोचना में ही लगा रहा।

[ आठ ]

चार साल बाद। बसन्तपुर पर आ रहा था। मित्रों, शत्रुओं स्नेह-व्यभिचारे सब में हर्ष की शहर उमड़ रही थी। मानव भूमि पर कै

रखते ही पुलिस ने उसका स्वागत किया और वह हिरासत में ले लिया गया। उसी दिन समस्त देश में एक छिरे से दूसरे छिरे तक गिरफ्तारियों और दस्ताशियों की घूम मच गई। प्रखर प्रखर गंगरो और कसों में हर जगह पड़कन की दुर्गति का पता शासकों को मिलने लगा। सम्मान्यवाद के विरोधियों को काबू काबू कर पकड़ लिया गया। बुबक वल का नेता रामू भी गिरफ्तार हो गया। समाचार पत्रों में एक खनखनी फैल गई।

देश में जब यह कावक हो रहा था, तब गोपाल के घर में ब्याह की खेजनाएँ हा रही थीं। उसके माता-पिता को सूचना मिल चुकी थी हेमा का मरि आ रहा है। बही उसका सम्बन्ध करेगा, पर गोपाल इन दिनों एक नई ही विद्या की तरफ ष्य रहा था। बसन्तकुमार की गिरफ्तारी से उसे कुछ सन्तोष ही हुआ पर उसके घर में तो शोक-सा छा गया।

पड़कन कस अग्रस्त में लुना आ रहा था। देश के काने-काने में गुप्तचर विभाग के कुशल नर्मपारी उसके मईक-सूच का पता लगा रहे थे। सम्म और सिद्धि बुबक अज्ञ की जाटियों में बन्द थे। गोपाल रामू की खेजना का बड़े म्मायोग से अप्पन कर रहा था। उसे पैना मर्तीन हने लगा था कि रामू के कार्य का सारा मार उसी के कम्बो पर आ पड़ा है।

उसने एक बार फिर अपने घर में आजीवन अविवाहित रहने की बात कहकर उबस-पुसल मचा दी।

पड़कन के मामल ने मीपण रूप धारण किया। हजारों की संख्या में गंगाहों की लुपी पेश की गई। सारे देश में अग्रस्थाप की एक बिलगरी पड़ गई, पर गोपाल गुपचाप अपने कार्य में लगा रहा। तीन महीने में

उसने पूरी छरह से उसका अभ्यसन कर लिया। कार्य आरम्भ करने से पूर्व उसने एक बार रामू से परामर्श करने के लिए जल में मुकालाव की।

गयास रामू, बसन्तकुमार तथा पद्मन्त कंस के अन्य अभिमुक्ता से मिलकर उस समय हेमा भी वहीं आई हुई थी। गोपाल कार्य आरम्भ करने के लिए परामर्श करने आया था, पर हेमा आई थी अपने कार्य की सफलता की सूचना देना। उसने उसी दिन से कार्य आरम्भ कर दिया था, जिस दिन देश में गिरफ्तारियाँ हुई थी। वह स्रो के अन्दर, समाज और राष्ट्र की कामवासी दैवियों में जागृति और कृति के बीज बोती थी। इन चोखे ही बिन्दों में उसने स्त्रियों का एक बड़ा दल तैयार कर लिया था। गाँव-गाँव और घर-घर उसका संदेश पहुँच चुका था।

गोपाल और हेमा दोनों को अपने समीप पाकर रामू का हृदय पुलकित हुआ। उसकी आँखों में हँस और विस्मय के आँसू ठमक आये। उसने कंठ-स्वर का सावधानी से संमालकर कहा—वास्तव में अब इन दोनों के जीवन की धारा एक होने लगी है। मेरी आशा आज एक प्रकार से पूरी हो गई।

गोपाल और हेमा दोनों ने गुपचाप सिर मुका किया।

पल्लते समय बसन्तकुमार ने कहा—बहम और माइनों के सहयोग से जो प्रयत्न होता है, उसी में कुछ सामर्थ्य होती है। माइ शेषाल ! मैं तुम्हें अपनी यह बहन दे रहा हूँ।

रामू ने गर्व से पुलकित होकर कहा—बहन हेमा ! मैं तुम्हें माई दे रहा हूँ। मेरा मित्रास है, अनाथ देश और अछछाय राष्ट्र इन दोनों

श्रद्धा ]

से सनाप हो जायगा ।

इस प्रकार अत्यन्त आशीर्वाद लेकर हेमा और गोपाल लौट आये । तब से दोनों एक दूसरे को सहायता और परामर्श देकर देश के कोने-कोने में पुस्तक और पुस्तकियों का दल संगठित कर रहे हैं । यद्यपि अमी गोपाल और हेमा को कई नहीं जानता पर वह निश्चित है कि शीघ्र ही निकट भविष्य में, श्रद्धा की वह छाँची चलेगी, जब सभी कुछ ठसठ पसठ हो जायगा और सब लोग उन्हें जान पायेंगे । कील कह सकता है कि तब उनका सम्मान देवताओं के तुल्य न होगा ।

## प्रतिज्ञा

पहला दृश्य

[मीमसिंह और अमरसिंह]

मीमसिंह—माई अमर ! जाकर देखो तो कौन बाहर मेरा अय्यबहार कर रहा है !

अमरसिंह—जो आवा ।

मीमसिंह—देखो, कोई बालक निरपराध न हो, कोई आश्रित अरक्षित न रहने पावे । अभी जाकर सब प्रबन्ध अच्छी तरह कर देना ।

अमरसिंह—जो आवा, पर महाराज के द्वार पर तो कोई पुकार नहीं रहा है ।

मीमसिंह—तो मेरे कानों में वह ध्वनि कहाँ से आ रही है ! क्या उन्हें भी कुछ कम सुनने की आवश्यकता हो गयी !

अमरसिंह—महाराज आवाज तो आ रही है, पर आपके के लिए नहीं, मेवाड़ के सुभराज के लिए । बाहर की प्रजा सुभराज के दर्रनाथ पधारी है ।

मीमसिंह—मेवाड़ के सुभराज के दर्रनाथ ! मेवाड़ का सुभराज कोई



## प्रतिज्ञा

पहला दृश्य

[मीमसिंह और अमरसिंह]

मीमसिंह—माई अमर ! जाकर देखा तो कौन बाहर मेरा जयजयकार कर रहा है !

अमरसिंह—जो आवाज ।

मीमसिंह—देखा, कोई वाक्यक निराश न हो, कोई आभित अव्यथ न रहने पावे । अमी जाकर सब प्रबन्ध बाण्डी तरह कर देना ।

अमरसिंह—जो आवाज, पर महाराज के द्वार पर तो काह पुकार मही रहा है ।

मीमसिंह—तो मेरे कामों में यह ज्वलि कहीं से आ रही है ! क्या तुम्हें भी कुछ कम सुनने की आवश्यकता पड़ी !

अमरसिंह—महाराज आवाज तो आ रही है, पर आपके के लिए नहीं, मेवाड़ के सुवराज के लिए । बाहर की प्रजा सुवराज के दरिनाथ पवरी है ।

मीमसिंह—मेवाड़ के सुवराज के दरिनाथ ! मेवाड़ का सुवराज काहे



जाति ]

से सनाम हो जायगा ।

इस प्रकार अग्र्याभित आशीर्वाद लेकर हेमा और गोपाल होठ आये । तब से दोनों एक दूसरे को सहायता और परामर्श देकर देश के कोने कोने में मुक्क और युवतिश्री का बख संगठित कर रहे हैं । यद्यपि हमी गोपाल और हेमा को कोई नहीं जानता पर यह निश्चित है कि शीघ्र ही निकट भविष्य में, जाति को यह आघी चलेगी, जब सभी कुछ ठसठ-पसठ हो जायगा और सब लोग उन्हें जान पावेंगे । कौन कह सकता है कि तब उनका सम्मान देवताओं के तुल्य न होगा ?

## प्रतिज्ञा

पहला दृश्य

[भीमसिंह और अमरसिंह]

भीमसिंह—माई अमर ! जाकर देखा तो कौन बाहर मेरा अवयवकार कर रहा है ?

अमरसिंह—जो आशा ।

भीमसिंह—देखो, कोई व्यक्ति निरपराध न हो, कोई आश्रित अरक्षित न रहने पावे । अभी जाकर सब प्रत्यक्ष सब्की तरह कर देना ।

अमरसिंह—जो आशा, पर महाराज के द्वार पर तो कोई पुकार नहीं रहा है ।

भीमसिंह—तो मेरे कामों में वह व्यक्ति कहीं से आ रही है ! क्या तुम्हें भी कुछ कम सुनने की आवश्यकता हो गयी ?

अमरसिंह—महाराज आवाज तो आ रही है, पर आपके के लिए नहीं, मेवाड़ के सुवराज के लिए । बाहर की प्रजा सुवराज के दरौनारों पकरी है ।

भीमसिंह—मेवाड़ के सुवराज के दरौनारों ! मेवाड़ का सुवराज कौन

दूसरा है ?

अमरसिंह—श्रीमान् । मैं तो आपके चरनों की रज हूँ । मला, मैं कम ऐसी धृष्टता कर सकता हूँ, पर इसना निवेदन करूँगा कि श्रीमान् के द्वार पर काँद नहीं है । आप ही मेवाड़ के मुकुटमणि उसके गौरव-पिङ्ग, और एक मात्र माची शासक हैं, किन्तु—

श्रीमसिंह—किन्तु क्या ? अमर, तुम नि होच होकर कह क्या नहीं बालक ! मेरे यह कान मोम के बने हुए नहीं हैं । मेरी यह भुजाएँ लुई-लुई की टहनियाँ नहीं हैं । मेरा हृदय सब पदार्थों से निर्मित नहीं है । वे बड़े से बड़े आपाठ का सह सकते हैं । वे किसी प्रकार विचलित होनेवाले नहीं हैं ।

अमरसिंह—श्रीमान्, आप मेवाड़ के पूज्य महाराजा के पवित्र मंत्र के उत्तराधिकारी हैं, किन्तु महाराजा ने आपका यह अधिकार बन्धसिंह को दे दिया है । जम्मूद्वार पर कुचल के बाहुमूल में वह अमर दूध बाँधी जाती है, वह महाराजा ने आपके न बाँधकर बन्धसिंह के बाँधी थी । उनका यह मेव-भाव ही आप मेवाड़ के उत्तराधिकारी के सम्मुख में भ्रम उत्पन्न कर रहा है । वही नहीं बन्धसिंह मैं भी अपने आपको मेवाड़ का कुचल समझ लिया है ।

श्रीमसिंह—तो श्रीमसिंह उसकी उस समझ को कुचल काशेग्य । महाराजा ने मेरे साथ अम्मान किया है, मेवाड़ की प्रजा द्वारा अनुमोदित निजम का पदाग्रभ्य किया है और इससे भी अधिक कर्म-शास्त्र की पवित्र मर्यादा का उत्सृजक किया है, उसका बदला मैं अपनी

इस सङ्घ से युद्ध लूण । महाराष्ट्रा को तनिक देर में पता लगा जायगा कि उसके देने से कोई राज्य नहीं बा सक्ता, और न वे किसी का अधिकार ही मार सकते हैं । उन्हीं शासन का अधिकार है, किन्तु अनियम शासन का नहीं । जयसिंह के सुख-स्वप्न को मैं एक ही रात में काटकर कर दूंगा । जिस मुबराक शब्द को सुनकर सभी उसका हृदय आनन्द से उलझ पड़ता है, तनिक सी देर में उसे ही सुनकर विह्वल होने लगेगा ।

**अमरसिंह**—मुपराज, आपको वीरता की प्रशंसा शत्रु भी करते हैं । आप भीरोमसिंह हैं, वर इस तरह प्रकाश्य रूप से विरोध करना उचित नहीं । आपको यह प्यार रखना चाहिये कि जिस कब्र का उपक्रम आपके कर्म मुहूर्त में किया गया था, वह आज हर प्रकार से सुसङ्गठित कर लिया गया है । न महाराष्ट्रा, न जयसिंह कभी इस बात को भूलें कि एक दिन आने वाला है, जब आपका विरोध कुत्ते हाथों करना पड़ेगा ।

**भीमसिंह**—यह सब कुछ कामकर भी मैं अनजान ही रहना चाहता हूँ । मुझे अपने बाहु बल का भरोसा है । मुझे बर्मे पर भरोसा है । मुझे मेवाड़ के राजकुल की मर्यादा-रक्षा का अभिमान है । रेलना, बाघ का क्या हो जाता है ।

**अमरसिंह**—भीमस, मुझे भी विश्वास है कि आप सब तरह से कर्म्य हैं । बर्मे आपके पास है । मेवाड़ की प्रजा आपको चाहती है किन्तु उक्त भी आपके अभाष इरमों को सुसङ्गठित करने के लिए

निरंतर प्रयत्न हो रहा है। वह व्यसोज को आप मुन रर है, वह इसीलिए है कि आप अपने का अधिकार से अपने आप ही खुद समझने लगे। आपकी अद्वय शक्ति दब जान, तथा मज के हृदय में भी आपके अनुष्ठानिकारी की बात बन जाय। किसी तरह का कोई विरोध न रहे।

मीमसिंह—बस अमर। बस करो। येरी तलवार भूम से निकल भागना चाहती है। मेरे मेम जले जा रहे हैं। अमर करके फुँका जा रहा है। मैं अभी इस अग्नि-बुलबुल में जलतिह को बलवाना नहीं चाहता। उसे धीरे-धीरे जलाने में ही आनन्द है।

( पद परिवर्तन )

दुसरा दृश्य

( मीमसिंह और महाराजा का भूख )

मीमसिंह—समझ में नहीं आता, आज वह कैसी गई बात हुई! ऐसा महाराजा का मुक संकीम काम आ पड़ा।

मूल्य—अपराधा। इसका उत्तर तो मैं नहीं दे सकता। मैं केवल महाराजा का सम्बोधन मात्र जानता हूँ।

मीमसिंह—मालूम पड़ता है प्रिय पुत्र जलतिह को मुकपत्र आपित करके महाराजा भी मे मुझे उसका दास बनाना सोचा है। मैं ऐसे अपमान को कदापि नहीं सह सकता। मैं अपने प्राणों को नाम के साथ, सुनी से, त्याग सकता है परन्तु अपनी स्वाधीनता

को अपमान के हाथों नहीं बच सकता ।

मृत्यु— महाराज !

भीम— जब तक मेरी कलाई में छलवार पकड़ने की शक्ति है, जब तक मेरे अस्त्र-करण में बल है, जब तक स्वतन्त्रता देवी के प्रति मुझमें भ्रष्ट भावना विद्यमान है और जब तक मैं संसार में अपनी शक्ति अमान की क्षमता रखता हूँ, तब तक दासता का बन्धन स्वीकार नहीं करता । मनुष्यों की बात ही क्या भीमसिंह अपनी मान रक्षा के लिए अस्त्राय संभ्रम करने में पीछे नहीं है ।

मृत्यु— सब सहित है सरकार, किन्तु—

भीमसिंह— इसलिये मैं राधा जी के पास कदापि न जाऊंगा । जानिये, कह देना कि भीमसिंह आपके सामने जाने में असमर्थ है । उसे अपने अपमान का सबसे अधिक प्यार है ।

मृत्यु— ओ माता महाराज ।

[ प्रस्थान ]

भीमसिंह—वह मैं क्या आऊँ ता इसमें हानि भी कुछ है । इसमें भय या छोपना ता काह कारण नहीं है । इस समय बलकर यह देल लेन का भी शक्ती अबसर है कि महाराजा जी कुछ कहते हैं । आज मैं अवश्य दा-रो बालें कर लूंगा ।

( पट परिवर्तन )

तीसरा दृश्य

( महाराजा रामसिंह और भीमसिंह )

भीम—हैं । वह मैं क्या देल रहा हूँ । आज महाराजा जी के बहरे घर बैसी

चिन्ता हो रही है । मातृम बकता है, मुक्त देसकर वह एक मवा भाव-माला विहाय जा रहा है, पर भीम जो इसमें स्नेह सल्लस है । उसके ऊपर ऐसा आदू कभी काम नहीं कर सकता ।

महाराणा—प्रिय बाबू भीम—

भीम— ( चकित भाव से ) कहिये पिताजी ।

महाराणा—बैदा । मैंने मोह बहा तेरे साथ बहुत बड़ा अम्बार किया है । उस सब करके आज मेरी आत्मा बहुत दुखी है ।

भीमसिंह—( आँसु भर कर ) पिता जी—

महाराणा—दुम्हारे स्थापनमादित अन्धकार पर जो मैंने हस्तक्षेप किया है उसके लिए तुम्हें विनाश होव है । मैं अपनी भूल आज समझ रहा हूँ । क्या, तुम्हें उसके लिए महान बधायाव है । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल ही मैं दुम्हाय वह अन्धकार तुम्हें सौंप दूँगा ।—किन्तु एक बात बड़ी कठिन उपस्थित हो गयी है । मेरी भूल का ही कारण मन्दिर परिसिद्धि उत्पन्न हो गयी है । अन्धकार का जिस बल पर कोई अन्धकार नहीं है, वह उसे अपनी समझ देता है । अब यदि एकएक उसे उससे पकित कर दिया जाय तो अन्धकार ही वह भीषण दण्डन सजा कर देगा । यही बात मेरे हृदय में शूल की तरह जटकती है । कि इस मन्दिर कर्म में अग्नि हमारो-भाको के लक्ष की नदी वह बाधनी । इसलिये बैदा भीम । मेरी समझ में सब से अधिक और सबसे सुन्दर बात यही है कि तुम मेरी सब तकवार लेकर जाओ और अपसिद्ध का कर्म

तयाम कर दो । एक के मरने से लाखों का लाल बन्ध ब्यापना ।  
 जानो बेदा । इसमें सोच-विचार न करो । मैं तुम्हें कुली से आशा  
 देता हूँ ।—बिरसास करो, इसमें कोई दाव नहीं है । वह तो  
 तुम्हारा शत्रु-सम्मत अधिकार है । हाँ, यह तत्काल और इसी  
 क्षण जले जानो ।

नीलसिंह—पिता जी । आप यह क्या कहते हैं ? अवसिंह तो मेरा भाई है ।

महाराजा—वह सब ठीक है, पर आपने अधिकार के भाग तुम्हें किसी तरह  
 का संश्लेष नहीं करना चाहिये ।

नीलसिंह—नहीं पिता जी । मुझे ऐसे राज्य की चाह नहीं है । मैं भाई  
 अवसिंह के प्रायों के मूल्य का राज्य कभी स्वीकार नहीं कर  
 सकता । हम दोनों तो सदा से ही एक प्राय्य हो रहे हैं ।  
 मैं आपने और अवसिंह में आज भी कोई अन्तर नहीं समझता ।  
 वह मले ही मेरे प्रति कुमावना रखता है ।—पिता जी ! मर  
 तो बिरसास है कि इन क्षुधमग्न संसार में पवित्र और अमर  
 करि कुछ है ता केवल भाव प्रेम । उसी से आज अवसिंह बुरा हो  
 रहा है । अज्ञानवश उसे कुछ विचार नहीं पकता । वह यह  
 नहीं जानता कि लकाई से कभी किसी का भसा नहीं हुआ है ।  
 पवित्र भाव-प्रेम से आज उसका हृदय रिक्त हो गया है ।—  
 मैं तो कहता हूँ कि यदि प्रेम हो अवसिंह चाह तो मैं अपना  
 सिर तक उसे दे सकता हूँ । वह राज्य, जो बोलों से सुकपार्य  
 से बनाया बिगाड़ा जा सकता है, तुम्हारा विषय नहीं है । आपने



मुझे राक्षस दिपा, मैंने उसे सिर झोंकों पर स्वीकार किया पर  
मैं फिर उसे अपनी आर से राक्षस अपने अमुक्त बन्धुसिंह को  
प्रदान करता हूँ। परमात्मा करे, वह अपने पूर्व-पुरुषों की ही  
श्रेष्ठता से उसका शासन करने में समर्थ हो। पिताजी। मैं  
आपके करण धुकर यह बातें कहता हूँ इसमें कुछ भी  
अन्यथा न होगा। मैं समझता हूँ वहाँ रहने से कदाचित् कभी  
मेरे मन में राक्षस-स्रोम की फिर इच्छा उत्पन्न हो, इसलिए मैं  
प्रतिज्ञा करता हूँ कि आशीर्वाद मेंवाङ्ग राज्य में कल प्रवेश न  
करेगा।—पिता जी। आप आशीर्वाद दीजिये कि आपका  
भूमि अपने वचन पालन में समर्थ हो। और अब मेरा  
सारा के लिए प्रणाम स्वीकार कीजिये।—

(पट परिवर्तन)

[ मस्बान ]

बीबा हरन

[ भीमसिंह और पनेड़ी ]

भीमसिंह—आज ही नहीं मैं जब-जब इस पहाड़ी पर आता हूँ तो कल का  
कल सपना पकता है।

पनेड़ी—महापति! यह डुबारी-पहाड़ी आकर ही मेवाङ्ग राज्य का वह  
सूक्ष्म है, वहाँ मगधम अशुमासी की फिरसे अपनी पूर्ण  
उपस्था से पकटी है। माधुम-मकता है इसे अग्निमय बमाले का

कोई प्राकृतिक प्रयोग बहुत काल से किया जा रहा है, और और इसी कारण यहाँ सदैव जल की कमी रहती है।

मीनसिंह—कुछ भी हो, आज का यह मयङ्कर ठप्ताप सवा से दुर्जय है। ऐसा कुछ तो वहाँ पहले कमी भी नहीं हुआ था। कहीं हम लोग माले तो नहीं भूल गये हैं। अब तो, प्लस के कतरण मेरा गला पूरी तरह सूखा जा रहा है। मुझे विश्वास हो गया है कि पहाड़ी से सुरक्षित निकल जाना अब बिल्कुल असम्भव है।

फेरी— महाराज ! जल सुरिक्षित हो सकता है, पर असम्भव नहीं। मैं माझो के मोल भी आपके लिए जल लाने का प्रयत्न करूँगा।

मीनसिंह—तुम्हारा साहस और तुम्हारी मक्ति सराहनीय है। मैं तुम्हारी इस मति के लिये हृदय से कृतज्ञ हूँ पर मैं देखता हूँ कि तुम्हारे जल लाने तक तीन बार मेरे प्राण निकल जायेंगे। इसलिए अब कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं प्रयत्न करता हूँ कि थितनी ही दूर निकलकर मरू ठठमा ही अच्छा।

फेरी— नहीं महाराज। मुझे कुछ भी कुछ नहीं होगा। मैं जानता हूँ, कहीं से थोड़ी ही दूर पर जल मिल जायेगा। आप इस मिसा की छौह में थोड़ी देर विधाम करें, मैं अभी जाकर ले आता हूँ। इससे बढ़कर मेरे लिए और क्या सोचाम्भ होगा कि मुझसे निरर्थक प्राणी भी आप की बाड़ी की सेवा का अवसर पा सके।

[ प्रस्थान ]

मीनसिंह—और जलना या परमात्मा के राज्य में मरा पौष्य इतना सार

होन, इतना खुद और इतना मगस है कि एक कड़ोय पल के लिए भी मैं परामित हो सकता हूँ। मुझमें इतनी शक्ति नहीं है, मैं ऐसा पुच्छाव होने हो गया हूँ कि अपने बाहु-बल से अपने करके अपनी प्यास भी नहीं बुझ सकता। वे पहाड़ की मगस गिलारों किसलिए उठ-उठकर मेरा उपहास कर रही हैं। वह उड़ती हुई रेत किस तरह पीछे से उड़कर मुझे तिनके की तरह डेलना चाहती है। क्या सचमुच मैं इतना मारुप हो गया हूँ कि मेवाड़ की खुम्का का प्रत्येक कण आज मुझे बाहर निकल जाने का आदेश दे रहा है।—विस्तृत ठीक है, इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है। अब मेवाड़ पर मेरा अधिकार ही क्या। मैं किसलिए इस पवित्र भूमि को अपने पैरों के नीचे कुपल रहा हूँ। बसुंधे। गुहारी वस्त्र शीलता को क्या है। एक अनधिकारी के पराक्रम को भी हम उछी प्रकार सह लेती हो, जिस प्रकार माता बच्चे की मार को। पर मैं ऐसा नहीं हूँ मुझे प्यार है मैं वहाँ अब एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। मेवाड़ राज में बल पीने का मेरा समस्त अधिकार घूरे के हाथ में बसा गया है। मैं तो यहाँ उधका स्वर्ण भी नहीं कर सकता।

[ बनबेनी का प्रवेश ]

बनबेनी— ठहरो, इस तरह विपणित होने की कोई आपसकता नहीं है।  
रामकुमार जब गुहारें मन में किसी तरह का कुबिचार नहीं है

तो जल पीकर प्राणों की रक्षा कर लेने में तुम्हारे गौरव की किसी प्रकार हानि न होगी ।

भीमसिंह—नहीं देवि । जमा करना । भीमसिंह की प्रतिज्ञा किसी अपराध के साथ काफ़ी नहीं हो सकती । वे प्राण निकल सबसे हैं, किन्तु महाह की भूमि की किसी वस्तु को मैं ग्रहण नहीं कर सकता ।

बनदेवी—राजकुमार ! यह तुम्हारा मोक्षापन है । यह पवित्र और अनुकरणीय है किन्तु सत्य नहीं । एक घूँट जल पीकर तम अपने प्राणों की रक्षा महज में कर सकने का तथा जीवन रहने पर और भी ऐसी कई प्रतिज्ञाओं का निर्वाह कर सकने हो । इसके अनिश्चित हम नियुक्त मीनाकाश के नीचे इस स्वच्छ वायुमण्डल में आनन्दान्वित, इन तम शिवाग्र से परिवेष्टित और हम विपिनविहारी शिवा-लवणों में सक्षिप्त एवं मुग्धित जल पर किसी व्यक्ति विराप का अधिकार नहीं है । न मैं कोई किसी का दे सकता है, न स्वयं वाप्य सकता है । यह सद्धि तत्वों का प्रकाश अनादि काल से मुक्त और ध्वंस रहित है । इसलिए मरा कहना माना और अपने आपकाचित हट का दाह वा !

भीमसिंह—देवि । आपकी उक्ति मुझे मान्य है किन्तु मैं क्या करूँ । मैंने उस वंश में जन्म लिया है, जिसके पूर्व पुरुष महाराज दशरथ, और इन्द्रियदेव । मुझे अपनी दात के लिए सैनिक भी सहाय नहीं है । मैंने ऐसा काय महत्त्व का कार्य भी नहीं किया है, केवल उस पूज्य पुरुषों के चरण पिता की धाद करते मैं यह

एव कहने का साहस कर सका हूँ। उनके गौरवास्पद नाम को मैं आपनी पुर्बलता से कलङ्कित नहीं किया चाहता।

जनदेवी— राजकुमार ! मैं तुम्हारी दृढ़ता से परम प्रसन्न हूँ। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम आत्मिक ज्ञान की इस अनुपम प्रतिष्ठा का सच्ची तरह वाञ्छन कर सको। कथ ! तुम्हारा नाम मेराज के ही नहीं बल्कि संसार के सर्वस्वप्राणी भेद पुत्रों की बेटी में आत्म्य कास तक पूजा की सामग्री रहेगा।

[ प्रस्थान ]

मीनसिंह—आज मुझे लगता ही क्या देना चाहिये।

[ पत्नी का कमरा लेकर प्रवेश ]

पत्नी— महराज ! वह बहुत ही स्वच्छ धरती का शीतल कप है।

मीनसिंह—किन्तु मेराज की भूमि का, जिसके पीने का मुझे अधिकार ही नहीं है।

[ कमरा का पात्र लेकर उत्तर देते हैं ]

पत्नी— ( पात्रों की बेड़ा के साथ ) जाते, नहीं नहीं। वह क्या कर दिया ! इस जल का एक एक बूँद जीवन का एक एक बूँद है।

मीनसिंह—(पत्नी की बात पर ध्यान न देकर) आज तक मैं जिस मृत्ति में आत्म्य के साथ रहा हूँ, उसे शतशः प्रशंसित हूँ। हे मेराज की रत्नमय-मेखनी ! तू इस उन्नत मीम को इस जीवन में फिर

[ प्रतिज्ञा ]

तेरे दर्शन का सीमास्य न हूँगा । किन्तु वह बाहर रहकर भी सदा  
तेरा, केवल तेरा ही रहेगा ।

[ पद्यक्षेप ]

## निराशा

शूरी में वह एक मांसी था। उसके घर में स्त्री रेवा कन्या मनकी और लकड़े छुटका को छोड़कर कुछ भी न था। वह बखि विलकुल बरिद था।

मिनेली के संगम पर उसकी एक बोगी थी—बहुत पुरानी न जाने कब की। वरुन की पहली किरण से भी पहले वह उसका पतवार बाहर उठा लेता और अन्तिम किरण के बाद क्वात्पान पहुँचाकर कमली याता हुआ घर पहुँचता। वह उसके परिवार की समान दिन की आशाओं का मंगल सूत्र होता था। यदि वह न पहुँचता तो मनकी और छुटका की संपित की हुई सकलियं बेसी ही पड़ी रह जाती; रेवा का सोया हुआ शाक न बनारं हुई मयसियं किसी काम न आती और इससे भी ज्यादा उस सबकी आशामरी आशामरं बिम्बा और शोक से मुरझ जाती, पर ऐसा कभी हुआ न था। वह सदा वरुन और चन्द्रमा की तरह ठीक समय पर आता था।

एक दिन सदा की मांखि उपाकासीन तारों की लौह में उसने

आँखें देखा डोंगी स्थान पर न थी। रात ही रात गद्दी बद्ध कर बिनायों को छूने लगी थी। डोंगी डूबी या बह गई, इसका पता लगाता असम्भव था। बस, वह प्रवाह की ओर बढ़ गया।

## [ दो ]

उस शाम का क्यू न लौटा। रेखा ननकी ओर छुटका का लेकर संगम पर गई और लौट आई। वह गाथा हुआ कहीं सुनाई न पका। ठारे कमरे और छतियाँ हूँ गये, दूर निष्कला और अस्त हो गये, पर किसी में आनन्दन की सुन्दराहट न थी। छुटका का आया कुसुम सुरम्य गया वह ऊपर से काँपने लगा। ननकी की ठप्प-आवाज़ बड़ी वह उसमें छुपाने लगी। रेखा के विशाल हृदय में वह सम्पूर्ण कदम सीसा सपा गई, वह उस-से मच न हुई। उसने आग की आँख से छुटका की परिवर्तन की ओर पैसा की वसिष्ठ बूटों से ननकी का संतुष्ट किया।

दूसरा दिन भी बद्ध कर लल गये। शाम हुई—निरीक्ष्य आया, पर क्यू न लौटा। बच्चों की दशा भी न सुखी। रेखा का चिन्तित, पर उम्मुक हृदय भी बैठ जाता। रात अपनी निस्तम्बता का लेकर आई और छूने उठाते को छुँककर बसी गई। इसी रात रेखा दाना बच्चों का गेह में लेकर चुनकारने लगी।

## [ तीन ]

क्यू पूरे तीन दिनों तक बच्चों में डोंगी की तलाश करता रहा।



मीलों व्याकर बक गया, पर वह कहीं हिलताई न थी। आगे प्रवाह की अनंत चल-राशि की ओर पीछे निरंतर प्रवेश। बोयी गद ओर उसके साथ जीवन का आचार चलता गया।

सूखी बहुत दूर हो गई, पर उसका बिज उसकी शुष्क हडि के सामने नाच रहा था। उसने जीवन मर जाती जलाई थी। कभी उस कविता के लिए कल्पना नहीं करती बड़ी थी। फिर भी स्वभाव-जात मानसिक व्यापार ऐसा प्रबल हो उठा कि उसने रोना की मीन चुकार चुन ली। बच्चों के अस्तित्व-मेम से प्रेरित हाडर वह पर की ओर काट रहा।

कैसे कैसे वह आगे चलता था, एक अपरिचित निराशा और वेदना का अवहलन भार उसके हृदय को दबा रहा था। निरुद्ध निरुद्ध में जीवनव्ययम के उपायों की कमी नहीं है, पर पद के लिए बोयी ही समार थी। उसके सिवा भी कोई उपाय हो सकता है, वह उस अमावस्य के अमर्य की तरह संशयस्पद था। निराशा के उसी अन्धकार में लात्ती हाथ, ककता हृदय सिद्ध पद ने मजबूती के द्वार के भीतर देर सकते ही चुना, विविधों की तरह महीन आवाज में बाला बच्चे रोना से राती मंत्र रहे थे और वह चुमकार कर कह रही थी—बापू हमारे लिए मिठाई लादेंगे।

संभव हो चुकी थी, पर बच्चों ने कहा—मैं अभी तो तुम समकता है। उनके आगे में बहुत देर है, अम्मा।

क्या ? हाथ धरव कहा है ? वे आ ही गे होंगे—कह कर रोना ने बच्चों के हृदय में आशा का संभार करता था।

अब मे रोना, उसके बात फूटी कौकी भी न थी। वह अ प्रकार से

मिलीन हो गया। मुँह से एक गम आह निकल पड़ी और आँसों से आँसू के दो बूँद। सन्तुषास हवा में मिला गई और आमु-किन्तु भूमि पर चू पड़े। वह 'कल-कल' सपहास करती—हठहाती—मदी की ओर एकदक देखता रहा। वह पत्थर की मूर्ति बनकर खड़ा रहा। चित्तिक के किनारे मदी की ठण्ठम वायु में एक डोंगी सी बही जा रही थी। संस्था के मुट्ठपुटे में वह उसे अपनी ओर बुलाती सी लग रही थी। बेजाना वह परन्तु उसे देख ही सकता था। मदी में कुरकर पकड़ लाने की सामर्थ्य इस समय उसमें न थी।

## जवाबी कार्ड

शुरू मावन का दिर्घा भी। खला बार का एक-एक सीढ़ी उतरकर बर्गीय में गई। भूला सपन सुचारित कह्य की डाल में पड़ा था। रेशम की गिरणी रस्मी पर जकात पटली रस्मी मुनर समर के स्त्रोको से आव ही भूत रही थी। उसने झाँक झूठे का पकड़ा पर झूठी नहीं, छोड़ कर चली गई।

कितने ही साधन उसके जीवन में आ चुक थे। अरुह बचपन की अपलता के दिन, निविहार रोमांच की अशांति सरलता के दिन—वे पत्रिका, व अमाश प्रभाव और उनकी वह स्मृति। जीवन की मादक गर्भित्व, उस मरी सलवार निवसन न जीवन के मधुर कीतुक अर्थात् के अचरे कमे में विषा दिने थे। परिशय की मर्धा ने कुमारी-मुलम पवित्र अपलता को सीमा के अन्दर सींच सिखा था। लेकिन झूठे की बार पकड़ते ही पक्षि पवन की एक हल्की लहर ने एकबारगी समस्त स्मृतियों को ध्वस्त करके उसके सामने ला दिया।

पिछले साधनों में वह अपनी जिस प्यारी सली के गले में गई

बालकर झूठा करती थी, वह लीला उसके पास गयी। जीवन का वसन्त उग्रद्विष एक जगह ही लेशमर होकर आया था, और उसने प्राचीन परिचित दरों का एकदम स्वप्न की सम्पत्ति बना दिया। लीला उसके विरजीवन की सहचरी थी, पर आज वह दूर, बहुत दूर जा बैठी है। उस दोनों के बीच कोई सौ मील का अन्तर बाधक हो गया है।

विवाह उन दोनों के जीवन में विच्छेद बनकर आया। मेहदी खोंदकर रचाना, रंग विरंग नील का पहनना उसने लीला के बिना कभी किया ही न था। आरत ही एसी पड़ गई थी। बचपन के दिनों की उस विर-सहचरी की मंजु मधुर शब्द क्या कभी भूलन का नीम थी।

सरला उसे न भूली थी, और लीला भी उन तुनहरी स्मृतियों का हृदय के दलबल में सायदानी से समाव हुए थी। सब पक्षों से विच्छेद की राक हटाकर विरह की दिनगारियों की अलग ठसी ने पैदा की थी नहीं या सरला का क्या कुत्ते ने काया था कि वह अपने मातृहिन मातृके के घने मगन में वनझुन करने आती। स्वामी के हृष्टमुख चेहरे पर उदासी छोड़कर आन का उसे जरा भी याद न था।

अपने पत्रों में लीला ने बार बार लिखा था—'तुम आना, बकर आना। मैं जानती हूँ मैं ऐसा अनुरोध करके किसी के ऊपर क्या अस्पृश्य कर रही हूँ उनसे मेरी आर से कहना, तुम उनकी ही—पूर्वज उनकी ही आर उनकी से सदा अनुरोध है। आशा है, मैं ऐसे अनुरोध न हूँ। मैंने अपने विरजीवन के सर्वस्व पर पूर्णधिकार इतनी उदारता से दे दिया है।

‘इस साल के से महीने में से बीते हैं, उनकी मीठी-मीठी बातें कानों के लिये सुन आना । बहुत कुछ कहना है, बहुत कुछ बताना है और बहुत कुछ सुनना । यह जीवन की तरल धारा न जाने किस क्षण किस तरफ बहने लगे, फिर कब अचानक मिले—इसलिये मेरी प्यारी छह । मेरी प्यारी कहना । मेरा अनुरोध मागकर आकर आना । ॥ बार-बार बर सिखा दिया है । मैं शीघ्र ही पदुच बाऊनी । वहीं मिलना । यह मत समझना कि मैं तुम्हारे ही ऊपर आत्मचार कर रही हूँ, मैं स्वयं अपनी ऊपर कठोर आत्मचार और निष्ठुर नियन्त्रण करके जाना चाहती हूँ—पर इस बार आपा अवश्य चाहती हूँ । वह भी लगे बैठे हैं, कुछ ही । कहते हैं विद्याता यदि ठगते चलाह लेते तो उद्दाम हम दोनों में से एक की सुख ही बचवा तो होती नही तो कम से कम बरिचव और धनिरता का तो नृपति न हमें दिया होता । लेकिन मैंने उन्हें मना किया है, समझ दिया है । तुम्हारे ऊपर किसी के अधिकार की बात का मैं अभी कह चुकी हूँ । वहीं तुम्हारी तरफ से कह कर उन्हें ठीक किया है । वे समझ गये हैं । अब मामले की चरचा नहीं है । उन्हें विश्वास हो गया है कि तुम उनकी जीव पर अधिकार नहीं चाहती हो, उनका घर दूर हो गया है । वे तुम्हारी ईमानदारी में विश्वास करते हैं । पर, अभी एक बकाया है—मैं नहीं मानती । उन्हें ममाना बाकी है । यह काम मैंने अपने घर बाँटो पर छोड़ दिया है । वे मान जायेंगी—विश्वास है ।’

इस तरह तुलाचर भी लीला और न आये, वा न आ कभी । उसके द्वारा आकर लौट आये । रात नहीं गयी । सल्ला के सल

कामल अन्तःकरण में मर्मस्पर्शा झटक पड़ी। वह बर्गिजे से शौट मार।  
अप्रसिद्ध पत्रके अन्त से मुलाकर वह अपने कमरे में आ बैठी और  
उसी समय सीमा के लिये एक पत्र लिखा।

कार्रवाई लेना मुझे दुःख था। अन्तःकरण की उद्भ्रान्त बेना क  
कामल वह कार्रवाई का भी पृथक् न कर सकी। जवाबी ही भय दिया। सीमा  
दोनों काट बिच तरह परस्पर मिछे हुये हैं उसी तरह वे उसका प्यारी  
सखी को भी लाकर मिछा देंगे। व्याकुल हृदय में प्रसन्नता की एक झलकी  
छी ऐसा धाँढ़ी दर के लिये लिख गई।

[ आ ]

मानवनि छोटे माह कुञ्ज के ठप्पातों का सरला चुपचाप सह लेती  
थी। वह भी अपनी बीबी के सामन अपनी शिकायतों का इस्तर खोल देता  
था, अपने एक एक हठ और अनुरोध की रक्षा कर लेता था। जब किस  
पक्षी के लड़के के पास भीन का लिखाना चुपचाप आ गया, कम डाल  
के किस पक्ष के लिए उसका मन मचल गया, वह सब सरला बीबी को  
बताना पड़ता था। अगर उसके दूर करम का ठपान भी करना पड़ता।  
हमारे छोटे परमांस के आगमन में सरला कामचलु थी। माह की सभी  
हस्ताक्षरों की पूर्ति उस करनी पड़ती थी।

माँ की मृत्यु के बाद से सरला का इसका अभ्यास भी अच्छी तरह  
हो गया था। माह के उपद्रवों में ही उसे एक तरह की तृप्ति होती थी।  
बगैर उपद्रव और हठ के वह कुञ्ज की कार्रवाई बात सुनना नहीं चाहती थी।

जबकी काँटे ]

इसो से समुदाय में सब मुख और मनार्जम के सामान हाथ हुए भी ठसका भी एक तरह की ठसाली में गलान रहता था। बराबर अपने छोटे मिही मारें के लिए ठसका चाह बनी रहती थी। कुँबू जब दीदी पर हठने अत्यन्त करता था बहा ठसके काम भी जाता था। वह अपनी दीदी की तमाम क्रमापों बापू जी से पूरी करा लेता था। अपने लिये बाजार से वह सिल्लीना जाता था ता दिदिवा के लिये भी मीठी काड़ी इट-पूरक लहरिवा जाता था। दीदी के केरों के लिए रिकप ले आने की पक्ष वह अपनी मिठारें से भी खरबा रखता था। नहीं नहीं वह सरला के लिए वनीक से पूत चुन जाता था। मेहदी काढ़ने में ता कपकर वह अपनी बहन की सहायता करता था।

सरला की तमाम कामकी शक का वाकिफ भी कुँबू ही था। वह ठीक वक्त पर चिट्ठीतला की तलाश में इर्षलिये रहता था कि दीदी की चिट्ठी कही बाबूजी की चिट्ठियों में मिलकर पड़ी न रह जाय। कुँबू विशेष अवस्था के लक्षण का सरला का वह प्रकल्प कुछ न लगेगा। वह जल्दी से चिट्ठी लेबाकर बहन के पास पहुँचाता था और उनके ठप्पर भी कुछ ही सेटरबन्क के इवाते करता था।

आज भी वह लिखकर सरला ने कुँबू का दिवा और दुलारकर कहा—मेरे राजा महाराज ! इसे कस्ती से बम्मे में बाल ता आ।

कुँबू ने काँटे से लिखा, कहा हाँ, ता दीदी ! एक बात है। कला करता हुआ एक मद्र आज मेरे लिये भंगा देना। दुबामू के बापू मे ठसे लाकर दिव है।

बह कहकर उसने कार्ड पर दृष्टि डाली। देखा, वे दोनों छुटे हुए हैं। सबसे पहले उसने कभी जवाबी-कार्ड नहीं देखा था। वह प्रबल विवादास्पद रक्तनेत्राला बालक कार्ड अपनी पीठ पीछे छिपाकर जगा पीपी की मही नूल पर खिलखिलाने।

सरला ने पूछा—क्या बात है ?

उसने कहा—क्यों बताऊँ ? सरला चुप रही जब उसने इसकर कहा—दीदी तुम्हीं कसे, कार्ड बात रह तो नहीं गई ?

क्या बात रह गई ?—कहकर सरला उसके मुँह की तरफ वाकने लगी।

कुञ्ज—मैं न बताऊँगा। तुम्हीं बताओ। कार्ड या तुम्हीं ने लिखा है।

सरला का भी अलमलना हो रहा था। भाई की इसी रो कुञ्ज-कुञ्ज कर होकर उसने जरा बाँटकर कहा—लाओ देखें तो।

कुञ्ज इस तिरछी नजर की तीव्रता को न सह सका। उसने कार्ड सरला के हाथ में दे दिया। सरला ने इधर उधर ठकठकर देखा। पता पड़ा, और कहा—बच्चा, दीदी को झूठ ही संग करत हो, जाना इस हाक में झोक आया।

पत्र लौटाते समय कुञ्ज को विश्वास हो गया था कि सरला मूल समझ ब्यापारी, पर जब उसी सरह फिर कार्ड उसे दे दिया गया, तब तो उसे बहन की सापरवाही पर बेहद इसी आई उसने कहा—आगे जब भी तुम्हें मालूम न हुआ। वह देखो एक कार्ड बगैर लिया ही है ?



सरला के होठों में हंसी फूट पड़ी। उसने एक बार मार के पूछे गले पर एक इल्का सा तमाचा लगाकर कहा—दुर पाला, वह बबारी काई है। वह इसी तरह जाता है। जा, मइरा छोड़कर खोद ठांवा।

हुजू ने बरछा मोंकर और जरा चकित होकर पूछा—कैसा बबारी ! जो ही जानता क्या।

सरला—हां, कमें खोदी।

हुजू—क्यों ?

सरला—पहले दीककर जाल बांधो। पीछे बताऊंगी। हुजू चारों ओर में लौकर मग गया। उसे लौटरबस में खोद बांध, और बबारी काई की छापी उपबेगिता चीनी से मुन लेने पर भी उसे विश्वास हो गया हो वह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि मामूल पड़ता है बड़ी ठमुकता से वह परिसाम की प्रतीक्षा करने लगा।

### [ तीन ]

सरला ने तां मां का मुस कुछ देना भी या पर सीला की मां ता उसे प्रवृत्तिपह में ही छोड़कर अवनतवय को चली गई थी। उसी समय से उसकी पानी ने उसे अपनी सत्ता समझकर कहा कि या ! उसने पानी के पार की मां के पार के साथ चलना कर उन्हें मां से निज समझने का मन नहीं किया। लेकिन जब से वह समुदाय आई, और उसने अपनी स्नेहरीला साथ का पार पाक, तब से उसे अपने मत जीवन की अपूर्वता का अपनी तरह ज्ञान हो गया।

प्रेम के इस लम्हमनिहु ब में आकर वह ऐसी रम गई कि उसे पर की याद ही न आती थी। अपने पर को वह किसी नाते कभी याद कर लेती थी, तो वह सरला का माता या। उसी को देखकर वह उलने अपने दुख-सुख की बोझी बहुत सीमता अनेक बार कम की थी, वही सरला कभी-कभी उसे बीते दिनों की याद दिला देती थी। इसके अतिरिक्त इन बोझे ही दिनों में वह एक नये ही संसार में पहुँच गई थी, वहाँ की अनेक विशेषताओं को लेकर किसी के हृदय में उडेल देने के लिये उसका भी आनुर हो उठा था। इसी से यादा आये पर उसकी सास ने नहीं मेरा ॥ उसका भी कुछ कुछ उबास हो गया, पर वही ही चार दिन में वह फिर स्वप्न हो गई।

एकाएक सरला का पत्र मिला। सीता ने उसकी एक एक पंक्ति ध्यान से पढ़ी। उसका कामल अन्तःकरण क्षुभी और गर्व से छलक उठा। वह आँसुओं के आवेग को रोक न सकी।

छानने आकर पूछा—वह किसी ने कुछ कहा है ?

सीता ने पर जर्म की अपनी इच्छा जता दी। आका मिल गई। सीता के स्वामी को ही उसे मायके तक पहुँचाने का मार दिया गया।

जिन कावों का प्रयत्न करते समय सरला ने मर्त्य-वेदना अनुभव की थी उन्हीं सीता में इससे इसने प्रयत्न कर दिया, और ठर्मग के साथ लिखा—  
 तुम्हारे जानू ने सबको मोहित कर दिया है। मन्त्रमुग्ध तुम्हारी इच्छा का अनुसरण करने को विवश है। शेष मिलने पर।

कुञ्ज में जब से वह कार्टे लाया था तब से बाहर पोस्टमैन की प्रतीक्षा करता था । पढ़ा लिखा न था, उसमें भी पढ़ने लिखने की न थी—पर था बड़ा समझदार । उसमें सीलने की प्रवृत्ति इन्क़ा थी, और पढ़ने की अपूर्ण चाह ।

जब अपने लाल में प्रवेश था । बस के घुम्ने को जाने सिंहीनों के पास किस तरह लाना चाहिये इसी में उस समय उसकी समस्त बुद्धि उलझ रही थी । वह एक-एक पल कुनकर रस रहा था । अचानक चौककर उसने मुँह फेरा, देखा, सामने लड़ा है । पर पोस्टमैन ने उसकी तरफ़ किन्तुल ध्यान न देकर द्वारके मध्य एक कार्टे पेंक दिख और चला गया ।

कुञ्ज पोस्टमैन की तपेछा पर मन ही मन हुन्नी था । हुआ, पर उस ओर अधिक ध्यान न देकर उसने कार्टे उठाया और सीढ़ी के पास ले मगा ।

घरलो बीबी—कहता हुआ वह ग्याही कमरे में पहुँचा तो वह ओर भी चकित हो गया । उसने देखा—सीता भी तो आ पहुँची है । सरला और सीता गले मिल रही हैं ।

उसे इस तरह चकित लड़ा देखकर सीता ने उसकी बाँह पकड़कर अपनी मोड़ में खींच लिया और कहा—आओ मरणा कुञ्ज, अपनी बीबी को भुल गये क्या ?

नहीं तो—कहकर कुञ्ज वही तरह बीबी के माथ से लड़ा

रहा। तब सरला ने लीला से कहा—जो काहे तुम्हें इतनी ख़ुशी हो आया,  
वह अब तक नहीं—

कुशू ने बीच में राक़्खर कहा—आ तो गया है दीदी, वह ला।  
देला, यही है न ?

सरला खीर लीला दोनों काहे शेकर देखने लगी।

बचपन की इस घटना ने कुशू के माते हृदय में एक निरवाउ पैदा  
कर दिया, वह उसे बहुत दिनों तक न भुला सका।

करवें बीस गई हैं, जमाना बदल गया है। लीला का सुनहला  
धमार अब उमड़ गया है। उसका जीवन नूतना मूला हो गया है कि एक  
भी बात ऐसी नहीं रह गई, जिसके लिये वह अपनी सभी के माता में  
लिनाह मराने का उपक्रम करे। वह अपना अब विश्वास हो गई है। वह उस  
उपवन की तरह पड़ी रहती है जिसके सामान फूल जून लिये गये हैं। स्वामी  
की बहाराही मुलाओं का आगमन तो गया ही, साथ ही उसकी लैहमन साथ  
का सहारा भी बना गया।

सरला भी अब वह भावुक नवयुवती सरला नहीं है। उसके  
छोटे-छोटे कपड़े कपड़ों ने ठमड़ी सारी भावुकता को दूर कर दिया है। हर  
समय वह उम्मी के पीछे परेशान रहती है। उसे पुरखत कहें। लीला ने  
तुमंग का समाचार सुना, बाकी देर मुह छिपाकर रो लिया—पर फिर  
अपनी सुन में लग गई।

इतने बड़े-बड़े परिवर्तन हो गए परन्तु कुशू के मन की जवाबी

बवासी काहे ]

काहे के प्रति जो मानना कम गई थी वह नहीं बदली है। वह स्वयं बड़कर कुछ का कुछ उम्बर आने लगा है पर न आने वहाँ अपने मन में वह इस अन्त-विश्वास नहीं दूर कर पाया।

अब तक कोई बाहर पैसा मित्र का सम्बन्धी नहीं था जिसे वह स्वयं कुछ निम्नता। इस आप ही आप एक मुकाम उपस्थित हो पड़ा। उसका परम मित्र राखे अपने माता-पिता के साथ एक लम्बी कक्षा को खाना हुआ। कलते समय कुन् ने कहा—रोस्ट, जल्दी जाना। नहीं तो मेरा भी कैसा बनेगा।

राख ने हँसकर कहा—कल तो वहीं करूँगा। कुछ देर भी हुई तो बराबर सिलता रहूँगा।

दोनों मित्र द्वारा हुए। राखे एक जगह से दूसरी जगह जाता हुआ अनेक ठीकों और मस्तों में गया। हर स्थान से वह बराबर अपने मित्र सखा को अपने अस्मद का वृक्षान्त लिख लिख भेजता रहा। उसने अचोप्य से लिख भेजा—तीसरे दिन प्रयाग पहुँचूँगा। श्री कामतामसाव के यहाँ बहादुरगंज में टहरा गया—बूझा वह वहीं पहुँचकर सिल गया।

एक-दो-तीन चार दस दिन हो गये। फिर काँई जब कुन् को नहीं मिला। बार बार वह राखे की उदासीनता पर लीक उठता था। कई बार हराबा भी किया कि एक फलकार लिख भेजे पर जाक देलते देलते लम्बा समय निरुद्ध रहा। वह मन ही मन यह सोच कर और भी अधीर हो उठा कि कहीं कोई बीमार तो नहीं पड़ गया। क्योंकि राखे का स्वास्थ्य उदा से ही

बाशा माशा रहा है ।

अनामी-काँडे मेकने का उमे बह उचित अवसर मिल गया । जी विनित्त था, आनन्दता भी थी, वह अपने मन को न रोक् सका । बटपट काँडे लिप्त कर अपने हाथ से हाकपर में झोंक बांध । इतना करके अपनी संस्कार बन्धु भद्रा के कारण उसे ऐसा विरक्त सा हो गया कि यम आनन्द तक मित्र के आने में रेर नहीं है ।

कई दिन बाद पोस्टमैन को अपनी भार आते देखकर वह उछल पड़ा । इस बार उपचा से नहीं बड़ी साधवणी से पोस्टमैन ने लाकर पत्र उसके हाथ में दे दिया । कु मू अस्तुता से पढ़ने लगा, पर सहसा उसके मुँह से आह निकल गई । पत्र किसी अपरिचित के हाथ का लिखा था कि 'राय की डोंगी यमुना में उलट गई । वह डूब गया । उसके माँ-बाप किसी तरह निकाल लिये गये, पर वे मरे से बदतर हैं—शोक से पागल हो रहे हैं । ईश्वर की शक्ति में किसी का हाथ नहीं ।'

कुँबू पत्र हाथ में लिए आत्माकुशी पर गिर पड़ा । जान पड़ा मानों उसके हृदय का त्यन्दन और रक्त का प्रवाह एक सम बह गया हो ।

## सैनिक

रथमेरी जगह ही युद्ध आरम्भ हो गया। तलवारें लज्जामय बसने लगीं। क्या मुश्किल से दूसरी पट गई। लज्जामय मेरी मुश्किल का कटे हुए मन्त्रक ठीक काट'बन्ध की भांति मिलने लगे। रथ-यात्रा की मजबूतता भीत के दृश्य उलझने लगे। हाथों में जगह आ गया। तलवार की झनी तेज हो गई। 'मार मार की ललकार न मैदान गूँज गया। मुर्ते का देर लग गया। संभ्रम रथला से लाहू की नदी बह निकली।

एक मजबूत कुत्तार की रस-कुत्तारता पर लोग अचानक थे। उसने कितने ही हीरों का लाली कर दिया, कितने ही सवार मिरा दिए और कितने ही पैदल सिपाहियों को बलावय मंत्र दिया। देखनेवालों की हडि काँप नहीं चरनी थी। सभी उसकी ओर ताक रहे थे। लगभग युद्ध करते-करते वह कुछ-कुछ थक जाता था। उसकी तलवार कुछ-कुछ टूट हो गई थी। फिर भी उसने पेंडे को देख लगाई, तो आपसे से जगह छोड़ा के पाठ का पढ़ा। थोड़ा ही तलवार अपने प्रतिद्वन्द्वी की गर्दन पर पड़ी ही थी कि उसने संभल जाने की ललकार थी। सैनिक भागों का कारण अनेक में

मुनक रहा था। जब तक यह संग्रामे तब तक सलकार के बगाम में ठसकी सलावार युवक के गले पर था पहुँची। सेना में हाहाकार मच गया। सैनिक की तलवार लक्ष्य पर पहुँच चुकी थी, जब उसने उसके नीरवचित मोले और मनाहर रूप का देखा उसने अपना हाथ नहीं रोकने की बहद काशिरा की, लेकिन तब भी युवक का बदनर कटकर एक हलका-सा भाव हो ही गया। उसके प्राण बच गए, लेकिन हाथ के पकड़े से वह पृथ्वी पर आ रहा। सैनिक ने कूदकर झोंकी उसकी दाता कलाई हाथ में पकड़ी, उसने झटककर पीछे हटते हुए कहा—दूर। रमणी का अक-स्पर्श करने की छूट किसी का नहीं है। इमिन्धर से उसे परास्त करने का प्रयत्न कर। सैनिक उसके बल से अचरित-सा बड़ी भीचकका हाकर रह गन्ध। हाथ बढ़ा का बढ़ा रहा। वह शीघ्र बोझ पर पक्षान विमली की तरह ठक गई।

## [ दो ]

अधिरा होने से मुह बन्द हा गया। सेनाएं अपने अपने शिबिर में विभाम करने चली गई, लेकिन सैनिक वहीं, मुनसान रणभूमि में लोनों के ऊपर स्थित रहा था। उसका शरीर पावों से बर्बर और खून से लयपय था, पर इसकी उसे चिन्ता न थी, वह था केवल उसी नीराङ्गना के लिए म्याङ्गुल था। आशिर सोचता सोचता वह शत्रु-सना की ओर चल दिया।

रात आ पड़ी थी। सेना विमर की यकी-माँकी आपस बड़ी थी। अन्धा अन्धर हाथ लगा। सैनिक एक के बाद दूसरे तम्बू का हेरता हुआ सेना के मध्य भाग में बिचरने लगा। उसकी आँखें बड़ी डेर से



## सैनिक ]

भियत्री कोठ में थी, वह उसकी सीन्हा के पास से बहुत गया था। उसने अपनी आँखों को बार-बार मलकर इस बात का निश्चय कर लिया कि वह इच्छित व्यक्ति से कोई अन्य नहीं। देर तक लड़े-लड़े बहुत नेत्रों से वह उस झूठे सौन्दर्य को निरसता रहा।

## [ तीन ]

एक गुप्तचर ने, जो सैनिक के पीछे लगा था, चेतावनी का द्यपन दी। उसने बहुत जाड़े परिसर से देखा कि सैनिक का बंदी बना लिया।

मुबती कासी ता अपने पिता का आठ-वस विवाहियों के साथ सैनिक को बाँध ले जाते देना। बंदी को कसबा में बांध दिया गया। इस गकबकी से जहाँ हुए लोग फिर जाकर खो रहे। मुबती भी इतर उतर बूमकर बाकी देर बाद जाकर पक रही थीर कुछ घोचते-साचते खो गई।

तीन बजे स ही लोग जायने लग। विवाहियों के समने की बाह्य होने लगी। बार बजे सेवा समझ ले गई। पाँच बजे दाना और की बाहिनियं मुहकल में आबने समने उपस्थित हो गई। कुछ आरम्भ हुआ और खूब हुआ लेकिन बीरो की आँखें किसी प्रवीण यद्दा की खोज में व्यस्त थी।

बाय बीराहना का मोर्चा आली या यद्यपि उसकी आर्जन्य सभी सेवा निरंतर लड़ रही थी। सभी का न जाने क्यों उसकी अनुपस्थिति आकर रही थी। लेकिन लड़ाई बराबर जारी रही।

## [ चार ]

मुबती सिर-दर्द का बहाना करके लड़ने न गई थी। वह आज सचमुच कुछ अन्यमनस्क और अस्वस्थ दिखलाई पड़ती थी। वह बेचैन हो रही थी। उसका मर्दाना वीर-वेश आज झिंझकित मीकठा और चौकुमारों से ओढ़ प्राप्त दिखाई देता था। रक्षाकृष्ण की चौकड़ियाँ शायद उसे याद न थीं, प्रसून रमणी-सुकुल हाव माग ही विशेष रूप से परिलक्षित होते थे। थोड़ी देर बाद उसने कुछ-कुछ बदल दिया। अपनी अचसी वेश-भूषा धारण की। कपड़ों का रेंटकर बांधा आभूषण सभाए सिन्दूर की बिम्बी लगाई नवीन वस्त्रों से शरीर का अलङ्कृत किया। लाग तो क्या, वह स्वयं ही अपने इस अनुपम साकस्य का देखकर अकित रह गई।

अब—अब वह बल थी। मित्रि क बन्दीपह क द्वार पर पहुँची। पहरेदार न असाधारण शिक्षता से अभिवादन किया और वह जानकर कि वह बन्दीपह में प्रवेश करने का विचार रखती है, तुरन्त फटक कोल दिया। उसने भी किना कुछ कह भीतर घुसकर अपने पीछे द्वार बन्द कर देने का सङ्केत कर दिया। फटक बन्द हो गया। मुबती ने अपने परिचित बंदी की काठरी में पहुँचकर आरती लगाई। अन्यकारमये कोठरी में अचानक प्रकाश देखकर बड़ी उठ बैठा और आगे बढ़ते ही दानों की आलें मिल गई। मुबती का कसेबरे प्रत्येकमय हो गया और हाथ कांपने लगे। लम्बा क मार से वह इतनी दब गई—धमी विनम्रवदना हो गई कि धारा प्रसन्न-संवाद विष्णुन हो गया।

“यही इस घरना स जय प्रभावित न हुआ। कुछ धूल के सिवा उसके भी हवा हवाग ठक गए। जब उम निर्वास हो गया कि वह उसका इति विचार नहीं है ता वह बोला—“यदि अनुचित न हो या क्या आप वह बतलाने का कह करगी, कि किस भावनाली का उपहार लेकर आप भूल स कहा जा गई है, और आप है कौन।”

आप के निवा और कौन समिचारी है ? मला आप ऐसा क्यों कहते हैं मैं ता भूना नहीं।” फिर उसने कुछ ठहरकर लज्जते हुए कह दी ता विच, “और मैं नहीं हूँ।”

“वही कौन।”

“ता क्या आपका परिचय की आवश्यकता नहीं है ? यदि हां, ता मैं नहीं हूँ जिसे कल आपमें जीवन-दान दिया था।”

“अच्छा, यदि वह उसी का प्रयुक्त है ता मैं कहूँ कि सचमुच भूल है। मरा जीवन नितान्त सुखमय है, उससे किसी तरह की अप्रति करना ही मन है। साथ ही मैं एक अत्यन्त साधारण वैज्ञानिक हूँ। पुत्र में उपार्जन की गई प्रत्येक वस्तु का अधिकार सेनापति को है, और मैं तो शत्रु के नहीं हूँ।”

“वह बचना नहीं है। वह ता केवल अन्तर्भावनाओं का समर्थन है आप स्वीकार करें या दुःखार्थे या आपका प्रत्येक वही लेकर आते हैं। मुझे धारके उम्भररूप होने का मन न था। मुझे आकर्षित करनेवाला आपके वीरचित गुणों में सहृदयता का लेश ही है, और अब सेनापति

का एक मात्र कन्या के प्रणय-पात्र होकर भी आपने जो बन्दी न समझिए ।”

उसने बंदी को सम्मानपूर्वक कर दिया ।

बंदी पूनबृद्ध मान से बल्ला— मुझे स्वीकार है, परन्तु उसके लिए वह उपयुक्त अवसर नहीं है । समय आने पर सभी कुछ हो सकेगा । पर ध्यान रहे, मैं आपके बीराद्वाना-वेश को ही अधिक प्राय देता हूँ, और क्या ही सम्झा हो, यदि अब से आपके दर्शन उसी वेश में हुआ करें ।

मुक्ता ने स्वीकारात्मक हुक्म के साथ एक मुन्हाली निकालकर ऐनिक को ही और गुप्तमायी से निकल जाने का संकेत, कर प्रत्याग करके फटक से बाहर हो गई ।

[ पांच ]

“ठहरो !” सरदार ने कहा ।

“नहीं, सेनापति की कन्या एक सरदार की आत्मा वासन करने के लिए बाध नहीं है ।” मुक्ताी सगर्व उत्तर देसकर अपने तम्बू में चली गई ।

“उहूँ ! एक अपात्र के प्रेम पर फूली हुई है बेलूगा ।” कहकर तमतमाए हुए चेहरे से सरदार चीन्हा सेनापति के निधिर में घुस गया ।

सेनापति ने उसका आन्तर उत्कार से स्वागत किया । वे बोले, “सर्वनाश हो गया था, पर दण्डारी क्षुब्ध बीरता से समय फिर गया, मान रहे गई । अब मैं आता है कि अपनी सबसे सम्पत्ति बल्लू

वैदिक ]

देकर आज तुम्हारा स्कार कर ।”

सरदार मे कृतवता से मन्त्रक मुका लिया ।

सेनापति मे फिर कहना आरम्भ किया, “तुम्हें मालूम है कि मैं अपने पद का जीवन से भी अधिक प्यार करता हूँ। अतएव इस सफाई से ही मैं तुम्हें सेनापतित्व प्रदान करता हूँ, और प्रार्थी हूँ कि ईदकर तुम्हें विरक्त तक इस पद पर रक्ख ।”

“मैं जिस पद के लिए सर्वथा अयोग्य हूँ उसका मार लेने का कभी साहस नहीं कर सकता। स यदि आप बेना ही चाहते हैं, तो अपनी दुहिता का हाथ देकर सदा के लिए मुझ अपना श्रेष्ठदास बना लीजिए ।”

सेनापति शम्भायात वह सकता था, पर इन बात-बाणी को न सह सका। वह इस ब्रह्म-महार से व्याकुल हो गया। उसने सन्नेत्र कहा—  
“है, वह क्या ! मेरा अपमान करते हो। बाद रक्खा, मैंने यही कहा था कि अपनी सबसे प्रिय वस्तु दे रहा हूँ। लड़की पर मेरा कोई अधिकार नहीं। वह स्वयं कर्तव्यकर्तव्य समझती है। उसका अस्तित्व किसी के अधीन नहीं है, वह स्वतन्त्र उच्च रक्षणी है ।”

“वह तो केवल बहाना है। पिछा का ही पुत्री पर अधिकार न होगा तो और किसका होगा ? इसके अतिरिक्त वह आपकी परम आज्ञा-कारिणी है। प्रस्ताव करने भर की देर होगी ।”

“आज्ञाकारिणी है, शार मेर कहने का नहीं दाखेगी। लेकिन

मैं कभी उसकी स्वरूप से चेतना का दबाकर कोई काम करने की अनुमति नहीं दे सकता। क्योंकि मैं जानता हूँ मैं ऐसा कोई अधिकार नहीं रखता।”

“आप नहीं कर सकते।”

“करना तो पूरा, मैं सब कहना हूँ, आप कोई दूखत होता तो यह तलवार उसका सिर पक्ष से अलग कर देती। मैं आपका चेता हूँ कि इसी क्षण यहाँ से निकल जाया, और जब तक बिचारों में परिवर्तन न हो, मुझे सुरत न दिखाना।”

“बहुत अच्छा।” कहकर सरदार पंढरा हुआ एक ओर चला गया।

## [ छ ]

मेमबन्दी के प्रकाश में सुबही मे आँसु कुलत ही सरदार के बाएँ हाथ में अपना एक हाथ और दाहिने में चमकती हुई कटार देखी। उसने उठना चाहा, पर सरदार ने रूका लिया और कहा—अब बतसा तो बह गये कष्ट गये। अब भी समय है। केवल ‘हो’ और ‘न’ पर ठेक बोलन और मरब अवलम्बित है। बोल क्या कहती है। मेरा प्रस्ताव स्वीकार है न।

‘रि मूल ! स्थिति को से प्रेम करना जानती ही नहीं। तुम्हें-सा काफ़र कमानर में भी उनके हृन्क-सिंहासन पर बैठने काय्य नहीं हो सकता। एक नहीं हजार बार मारने पर भी यह आशा दाँद दे कि मेरे इन शब्दों में कभी किसी प्रकार का हल्का हाथ।”

असह्य सरदार पर स कुशल धर्म की भाँति अस्मान से  
तिलमिला उठा और कटार चलाना ही चाहना था कि उनापनि ने प्रवेश  
पर उसका हाथ पकड़ लिया। मिषाही उस बात से गए।

[ यात ]

पहले दिन हाथ आई हुई विजय-भी के ला जाने से आश्रय रही  
क पक्ष के बर बड़े उत्साह से लड़ रहे न। ऐनिक और कुवती का मार्ग  
आज आनने-सामने था लेकिन दोनों इस तरह वार कर रहे न। बर-बरे  
सकार न ऐसा भीषण रूप धारण किया कि एक की नहीं बह चली।  
दोनों सनाए ऐसी गुँथ गई कि अपने पराजय का ज्ञान न रहा। इसी समय  
कुवती के हाथ से चलता हुआ माला ऐनिक के हृदय को पार कर  
आर बह समर भूमि में उन्मुखित हुए की भाँति गिर पड़ा। कुवती ने  
तलवार हँककर कुवती पकी। लोभ कीवृत्ति से देख रहे न कि उसने एक  
से भीमा हुआ ऐनिक का मस्तक अपनी गोद में रख लिया और हमला  
से पीछे हट करने लगी।

लाक प्रयत्न करने पर भी उसे बल न हुआ। कुवती आर्त-स्वर  
में चीखने लगी—मर बीरकृतापेश के प्रभी! क्या अब मेरी ओर न  
देखोगे! क्या मुक्त कलङ्किनी बगाले के लिए ही जीवन-दान दिया था!  
हा, अब मैं क्या करूँ! यह इत्यारा शूल --

भाँते का उसके शरीर से लीचकर अपने माथ पर पटक लिया।  
बड़े ऐनिक चीख पड़ा, और उसका मुँह से निकल गया—बड़ा शीतल

[ ध्वनि ]

है, अत्यन्त सुनकर है ! शान्त है, मधुर है ! अमृत है, स्वर्ग है—हा, हा, हा !  
प्रियतम मुग्धाग बरुन !

वह आगे कुछ बोल न सका । उसके प्राण पलक उड़ गए  
और मुस्ती का कदम-विलाप तंशाम की तुल्य ध्वनि में लो गया ।





## सुमाफिर

बड़े दिन की छुट्टियाँ और घर जाने की ठिकरिब मौक़र देख लोग़ों के लिए छक्कर छाप छाप शुरू होखी है। मैं भी अपने झी-कपड़े के साथ स्टेशन पहुँचा। ठग़ाँ चौंसरे रोज़ की क्यामक़श से कपड़ों के लिए मज्जम हूँ का टिकट लिया बर्ना मरी छावत में मनहूसियत कम है। मैं क्या ऐने ही डिम्बे में जगह तलाशता हूँ बड़ा अनोखी-अनोखी निविदा पहचानाती हो।

गाड़ी आकर लड़ी हुई। मैंने लिफ्टकी खोलाही। भीमती कपड़े को लेकर एक चीठ पर जा बैठी। कुली ने कूकेस, बिस्तर और फलों की टोफ़री आकर रक थी। उसे पैसे देकर मैं भी भीतर जा बैठा। आकेखा होवा सो इकर ऊपर बूमकर देसता पर उस इच्छा पर यासन करना पड़ा।

दियासलाई कीबकर मैंने सिगरेट जला ली। डिम्बा बिलकुल जाली था। सिर्फ़ एक महाशय लाल हमली का बर्दिया कमल ओढ़े इस तरह सो रहे थे जैसे उसका विशासन करते हो।

गाड़ी छोटी देकर चलने ही वाली थी कि ने चौककर ठठ रूके

पूछा—मनाब, कीमता स्टेशन है ?

मैंने कहा—बनारस स्टेशन ।

गाड़ी खीनी देकर चल पड़ी । वे भी पकड़ी से असमाब नीचे  
पेंककर हट ही तो पड़े । मैंने कहा—वह क्या आप ता चल दिसे ?

प्लेटफार्मे पर लड़े हो खोंगडाई लेते-लेते उन्होंने कहा—जी हाँ,  
मनाब । मैंने भी जल्दी हुई सिगरेट पेंककर चलती गाड़ी से छिर निकालकर  
कह—तस्लीमात, पर वह उनके काना तक शायद नहीं पहुँच सका ।  
गाड़ी स्टेशन से बाहर हो गई ।

[ दो ]

हम तीन प्राणी बैठे थे । बल्बा कमी मेरे पास कमी अपनी माँ के  
पास जाकर कहा—उफर ले चलो । उसकी शरारत से बितनी ही हम  
शेरों को परेशानी होती थी, उसना ही जी मी बहलता था । कमी, मैं  
हँसता, कमी मेरी जी ।

वह समाशा परम्पु बहुत घाँसी बैर रहा । बल्बा एक कर अपनी  
माँ की राह में सो रहा । काली गाड़ी में हम दानों जी-पुरुष एक दूसरे  
का मुँह दाकते हुए बैठे रहे ।

किसी छोटे स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही एक तेईस चौबीस साल  
का मुकक हिम्मे में बड़ आवा । मैंने उसके फटे मील कपड़े और रोनी  
सुरत देखकर मन ही मन कहा—वह हिम्मा तुम्हारे काबिल नहीं मास्तूम  
हाना, फर्में बजाव के किसी चर्च पर जाकर लेटने ता अक्लु हाना ।

## सुमाकिर

बड़े दिन की छुटियाँ और घर जाने की तैयारियाँ मीकर पेराना लोगों के लिए अक्सर राग साय शुरू होती हैं। मैं भी अपने सौ बच्चा के साथ स्टेशन पहुँचा। उन्हें तीसरे दर्जे की कमरे में ले जाने के लिए मज्जम करने का टिकट लिया। बर्तन मरी आदर में मनहसियत कम है। मैं सदा ऐसे ही डिब्बे में बगल लगाया हूँ जहाँ अनोखी-अनाखी विविधता रहती हो।

गाड़ी आकर काड़ी हुई। मैंने लिफ्ट की आवाज दी। भीमती बच्चे को लेकर एक छोट पर जा बैठी। कुली ने सूटकेस बिस्तर और फलों की बोझरी अन्दर रक्त की। उस पैसे देकर मैं भी भीतर जा बैठा। अकेला होता तो इकर ठकर बूमकर देसता पर उस हल्ला पर शासन करना पड़ा।

विशेषताएँ सीधेकर मैंने सिगरेट जला ली। डिब्बा बिल्कुल खाली था। सिर्फ एक महाशय लाया हमली का बर्तिया कमरा छोड़े इस तरह सो रहे थे जैसे उसका विरापन करते हो।

गाड़ी सीटी देकर चलने ली। मैंने भी बर्तिया उठ डीके

पूछा—बनाब, कीमता स्त्रेशन है ?

मिने कहा—बनारस है ।

गाड़ी खींची देकर चला पड़ी । वे भी खूबरी से बसबाब नीचे टेंककर हट ही सो पड़े । मिने कहा—यह क्या आप तो चला दिज्ने ?

बोटपरम पर लड़ हो बँगवाई लेते-लेते ऊहाने कहा—जी हां, बान्दाब ! मिने भी खूबी हुई सिगरेट टेंककर चलनी गाड़ी से सिर निकालकर कह—तस्लीमात, पर यह उनके कासा तक शापद नहीं पहुँच उठा । गाड़ी स्त्रेशन से बाहर हो गई ।

[ खो ]

हम तीन माशी बैठे थे । बन्ना कमी मेरे पास कमी अपनी मां के पास जाकर कहता—ठकर ले जसो । उसकी शरारत से बितनी ही हम तागो को परेछानी हावी थी, उतना ही जी भी बहलता था । कमी, मैं हँसता, कमी मेरी जी ।

यह तमाशा परन्तु बहुत पाकी देर रहा । बन्ना बक कर अपनी मां की गोद में सो रहा । बाली गाड़ी में हम दोनों स्त्री-पुरुष एक दूसरे का मुँह ताकते हुए बैठे रहे ।

किसी छुट्टे स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही एक तेईस-चौबीस साल का मुश्क डिब्बे में चढ़ आया । मिने उसके चट्टे मैले कपड़े और रोनी धूल देखकर मन ही मन कहा—यह डिब्बा तुम्हारे काबिल नहीं मालूम हाना, फर्टे बन्ना के किमी वर्ष पर आकर लौटने का अच्छा होता ।

गाड़ी बल पड़ी पर वह बैठा नहीं, बल्कि खिड़की में मुँह बाहर  
 निकल देने परे पैरानों की आर लाकता रहा। मैंने इसने का कारण समझा।  
 एक तो यह कि मजबूत बर्तों में वह किसी कारणवश बहुत तो धाया पर  
 अब मन ही-मन कर रहा है। दूसरे, शायद नई स्त्री का खोजकर से बाहर  
 खोजी पर आना पड़ रहा है। इसी से फिर निदानकर अपने दूरगम का के  
 बार की बार एकटक देख रहा है, परन्तु अब गाड़ी कई मंज निम्न  
 आई और वह आकर आकर बैठा नहीं तो मुझसे न रहा एक। मैं  
 की से बुराकरकर पूछा—बैठिये न, सीटों के प्रति इतना आचरिपर  
 क्यों करते हैं।

उसने बड़े गौर से मुझे और देखकर कहा—यह गाड़ी कहाँ  
 जा रही है साहब।

मुझे हँसी आई, पर मेरी स्त्री ने दोनों के सामने झगली करके उसे  
 प्रस्तुत नहीं होने दिया। न जाने उस उदास युवक की किस बात ने उसे  
 इस तरह प्रभावित कर दिया था। मैंने हँसी बहाकर पूछा—आपको  
 कहाँ जाना है।

मैंने देखा—उस युवक की आँखों में आँसू लहराने लगे। वह  
 एक लम्बी साँस लीवकर एक तरफ बैठ गया।

मुझे पड़ी दया आई। मैंने पूछा—क्यों भाई रोते क्यों हैं।

उसने कुछ मर रहकर कहा—बनाब मैं अभी कुछ रुपये पहले  
 जमा था। अब फिर लौटा जा रहा हूँ।

मैंने पूछा क्या ?

“मेरी स्त्री मर गई” उसने कहा, “मैं उसे परसों गुरु राक्षसी घर छोड़ आया था। कस सुना, वह बीमार है, मैं दूरत छोड़ा आया। ठीक आधी रात को घर पहुँचा, पर वह सुता था। घर के कान्ते-कान्ते में आँखें मर चुका था, मेरी स्त्री न थी। मेरे पहुँचने से पहले ही उसका अन्तिम संस्कार हो चुका था। मैं उसका शव को भी न देख पाया। उससे अन्त समय का बातें भी न कर पाया। हममें से किसी का भी माशूम न था कि परसों की विदा हम दाना की अन्तिम विदा थी।”

उसका गला रुक गया, परा टहकर उसने कहा—मृत्यु भी पुन पुनकर मुराबूत और खुरमुता फूलों का ही ताकती है। ठम सा जाने के लिए बिछने इतनी कसदी की, वही मेरी आँख से इतनी उदासीन क्यों है ?

खेद आ गया। वह मुझे नमस्कार करके उतर गया। मैं जाने समय उससे पूछा—आप वहाँ नौकर हैं क्या ?

उसने कहा—हाँ, बिछके लिये नौकरी की था वह रही नहीं इसलिये अब उसे छोड़ने जा रहा हूँ।

गम्भीर बात पड़ी, मैं मुँह फेरकर देखा मेरी स्त्री अश्वत्थ में मुँह दिया कर रो रही थी। मैंने भी उसे मना नहीं किया।

## इलाज

मुमूत्रा की बचा कराने का रामसिंह का शौक भी था और फिक भी। खी भी नहीं, सबके मर चुके थे। उनके प्राणों का प्राण इकट्ठी लड़की मुमूत्रा उसके आ धरे घर की एक मात्र शीपशिका थी। वह भी दुबली-पतली, खीस और कुप। बूढ़े पिता का शव अवसाम्भ भी चिन्ता की बदली से डका था। कस, इसीसे उन्हें बचा कराने का ज्वलन-सा हो गया। कोई कुछ कहा देता उस न शक्ति भर उठा न रखा। दिन लोगों का घरा यथाक चिन्ता था उनकी एक-एक बात का कर्मशास के उपदेशों की तरह पावन किन्तु। इन्फेस, वैद्य से लेकर सभी खालों के घर का शस्ता ज्ञान वाला, पर कोई बचा कारगर न हुई।

एक गरीब बूढ़े तीन साल से मुमूत्रा के शरीर में बीड़ा सा जल गया है। वह कराकर छलती जाती है। उसके पीछे मुस पर चिन्ता का कुससा कपड़ा रहता है। रामसिंह कुपचाप बैठकर कभी-कभी खेचते-विचता के विषय में क्या कोई ऐसी बचा है या बेंटी का काण्डा कर सक।

मुमूत्रा पिता के मल का मर्मा समझकर इसने और प्रसन्न रहने की चेष्टा करती लेकिन, कभी-कभी कहता चाहती-पिता भी बचा जानने में चिन्ता

तत्पर हैं, यदि कहीं उसी तरह बीमारी का कारण अनुसन्धान करने लगते ।—बस, उसके घुसे होठों पर हल्की-सीकी हंसी की रेखा घाबर द्यत हो जाती । बीजा का एक अमिनब माच, चिन्ता और शोक के मार से दब जाता, उसकी बड़ी-बड़ी आंखें जल की बूंदों से छल-छलता जाती । कोई स्मृति उसके स्मिर नेत्रों के सामने अपना चित्रपट रखकर बसती जाती ।

[ दो ]

“बेटी पहाड़ चलेंगे ।”

“क्यों, पिता जी किसलिए ?”

कारण पिता से पहले पुत्री जानती थी । राम-शकुन्तल की तरह जो पुत्र मरते मर गये तब रामसिंह ने कहीं इस तरह बौद्ध रूप करने की जरूरत नहीं समझी । वे ही अब बटी को लेकर पहाड़ आये ।—इस विचार ने पिता-पुत्री दोनों को ध्वस्त कर दिया । उन्होंने कुछ भी उत्तर न देकर मुमूक्षा का जीपकर पास बिठा लिया । बटी भी पिता की गोद में अपना मुँह छिपाकर पक रही ।

पहाड़ गये । पुरी की यात्रा कर आये । ऐसे-ऐसे स्थान और दृश्य देख कि बुढ़ापे में भी रामसिंह का हृदय अमिर्बचनीय आत्मन् स भर गया । हिमाच्छादित पर्वतशृङ्खला, झुलगाया भग्ने शीतल जलस्रोत, रीप्प-सर्पिला भरिताए, सफ़ा शान्त बम्प्यवेश सागर की हिरण्यमयी नील जलराशि उन सब में एक नया ही जीवन, एक आभास ॥ उल्लास मा,



लेकिन मुमता में उन्हें मर हुए खरमाना ये देखा । किसी तरह का आनन्द, किसी तरह का हँसोल्हाह उसके मस्तिष्क मुख को प्रफुल्लित न कर सका ।

[ तीस ]

पहाड़ पर रामसिंह का एक बहुत पुराने मित्र मिल गये थे । उनके नाम था ठाकुर विजयसिंह । पचास साल पहले रामसिंह के साथ वे गाँव की पाठशाला में प्रविष्ट हुए थे । वे उस समय अच्छी खरत्ता में थे वे पर बाह को सरकारी बीकरी में उगहोम बड़ा खरख देता किया । उन्होंने के साथ-साथ रहने स रामसिंह का किसी तरह का बच नहीं हुआ । ठाकुर विजयसिंह अपने साथ ही उन्हें डाक-दस्ता में टहराते थे । उन्होंने अपने परम मुहूर्तप मित्र को पुरी से लौटकर एक पत्र लिख देने के रखे स वे कलम-खरत लेकर बैठ ।

मुमता आकर पिता के पास बैठ गई । वह खुशखर देलने लगी कि हवने प्यार स किसे नख लिखा जाता है ।

रामसिंह ने लिखा—मित्रवर, मेरी को कोई काम नहीं हुआ । मेरी खुदही हड्डिको में ता एक तरह का बीकनरख प्रतीत होन लगा है पर वह ता बीसी आकांक्षाहीन पड़ने थी, बीसी ही खर है । व कोई हक़ है, व कोई उत्साह । माथ और मयतामय खरार उसके लिए निस्कार-ख है । वह बाहरी है ता पिता को, वर्णित है ता पिता के लिने, ईश्वरी है ता पिता के खिमे और रो पड़ती है ता भी उसी के लिने । नहीं ता उसे न बीने का उत्साह है न मरने ॥ भव । मुझे ऐसा समझ पड़ता है कि जन्माखर

का कोई संस्कार मेरे हृदय शरीर के पीछे पक रहा है । यदि मुझे यह विश्वास हो जाय कि मेरे बाद सुमद्रा झप्पी हो जायगी तो, मुझे मरने में जो मुन्न मिले वह मेरे जीवन के समान सुन्नो से भेद्यतर हो । हाय ! हर मनुष्य की शान्तशक्ति तो कहाँ पहुँचने से बहुत पहले हो ५५ हा बायी है ।

आज तुम्हें पत्र लिखने का एक विशेष कारण मी है । एक बार तुमने कहा था, सुमद्रा का किसी सुपात्र के हाथ सौंप दो । संभव है कीमार्ग दूर होने से ही ठसकी व्याधि फट जाय । मैंने मी कई बार यह बात कई तरह से साची थी, पर सुमद्रा के ठसकील तथा जीवनभूत भाव और ठसकी मरणाभ्युक्त आकृति ने मुझे बसा करने से राक दिष्ट । अब मुम वही एक उपात्र करना रह गया है । कहो कैसे क्या करूँ ? क्या तुम महां आकर मुझे ठचित पधमई नहीं दे सकते ?

हसके बाद ज्योही रामसिंह ने मुह ठजस्य, ल्योही सुमद्रा पिना के पास से ठठकर मीतर चली गई । लुग मर सुमद्रा की आर देखकर ल्होंने पत्र पूर किया । लोहरबस्त में लुइया रिवा । कठकर जप्पता के लय लोका करने लगे । लोका वाक्य कयु विजयसिंह आ गये हैं । उनके प्रस्ताव को सुनते ही सुमद्रा का लात्तव और का और हा चला है । बड़ी बीडभूत के बाद बहा मुबर सा एक मुयंय पर ललाया किया है । सुमद्रा बड़ी प्रसन्न है । वह अच्छे अच्छे बहामूपण पहनकर घर को लोमात्ममान कर रही है । बारात आरं बम्बदान हा गया । आ बम्बता बड़ी कहता राया भावक की ली जड़ी मिसी है लेकिन बिबा के बत ठनसे कसे रहा बाकगा । कय कय के आभग की लुलुलता बतकर सुमद्रा

पति के बर्हा चली ही जावगी ? पर इसीलिए तो इसना आशोकन किया था । मुमता प्रसन्न है, वह इसी में तो मेरी मुरी है । बाहर देखी हुई रूप के अपना स्वान परिवर्तन कर दिख पर वे अपनी विचारधारा में आकस्मिक निमग्न हो रहे थे ।

## [ चार ]

मुमता पिता के पास से सीधी अपने छाने के कमरे में चली गई । बर्हा पहुँचकर वह बेग से रो पड़ी । रोते रोते उसकी आँखें फुल गई । उसका सारा अञ्जल आँसुओं से तर हो गया ।

रात को रामसिंह जब भोजन करने बैठे तो मुमता व थी । वह कही गई बात ? कहीं भी हो, किसी दया में रहे, पिता जब भोजन करने बैठते थे तो मुमता वहाँ उपस्थित रहती । वह अपने हाथों ही उनके खिन्ने वाली सजाती थी । रामसिंह का दिल बकक उठा । पूछने पर मालूम हुआ कि उसकी तमिबत अच्छी नहीं है । सिर में दर्द होने लगता है । रामसिंह ने सामने की वाली दूर लिखवा दी । हाथ जोकर उठ जाके हुए, और बेटी की दया आनने के खिन्ने बीड़े गये ।

मुमता ने बाहर आकर कहा—कुछ नहीं अच्छी है, पर वह अपना मुँह पिता के सामने ब कर सकी । रामसिंह ने उसके आर्द्रकण्ठ से इसना ही अच्छी तरह जान लिया कि वह अपना वह प्रकट करना नहीं चाहती । रामसिंह ने उस दिन कुछ भोजन नहीं किया । रात भर चापकर सवेरा कर दिख ।

## [ पाँच ]

बिजयसिंह का उत्तर आया । उन्होंने लिखा—पर मैं उससे है  
 मैं नहीं कर रहा हूँ । आप भी मुमता को लेकर आइये तो बड़ा अच्छा हो ।  
 वहाँ सब बरतें आसानी से तय हो जायेंगी । मेरा अनुरोध है आप जरूर  
 आइये । वहाँ मेरे एक कुल्लू बंधू सिधू हैं । उनके हाथ में बड़ा है ।  
 उनकी चिकित्सा में कमाल है । उन्हें एक बार मुमता को दिखाने का  
 मेरा बड़ा इरादा है । मैं सदा से ही आयुर्वेदिक चिकित्सा का भक्त हूँ ।  
 उनके मरुत गुणों ने सेवा करने को मुझे बाध्य कर दिया है ।

इतना पर्याप्त था । बिजयसिंह ने ता पहाड़ी बीहड़ रास्ते से होकर  
 अपने घर कुल्लू का, यदि इसी तरह का आरवाहन देकर स्वर्ग से पुकार  
 आती तो भी वे साथ विचार करते इस पर कोई विचार नहीं कर सकता ।  
 वे मुमता को साथ लेकर चल पड़े ।

आदिबन का आरम्भ हुए बेड़ हफ्ता हुआ था । गंगा का विस्तार  
 अभी तक कम था । दिनभर बैलगाड़ी घर रास्ता तय करके सीधे पहर  
 वे एक निर्बल घाट पर उतर पड़े वहाँ न हट की छाया थी, न किसी मकान  
 का आश्रय । मुमता दिन भर गाड़ी के झूले में पड़े पड़े व्याकुल हो  
 उठी थी ।

रामसिंह बेड़ी के खूने हुए हाठ देकर और भी चिन्तित हो  
 उठे । राधा पाड़ी देर में चप्पल हा पावनी । ओष पड़ने लगेगी, कहीं  
 उन्हें कुछ हो जाय । गाड़ीवान का रोकर स्वयं भाग लेने के लिए मज्जाहो  
 को पुकारने लगे ।

एक बड़ी सी नाव किनारे आकर लग गई । वे गजपट मुभद्रा का लेकर उसमें जा बैठे । उन्हें एक-एक बख बटकर हो रहा था । मगर मल्लाह मजे से तमाचू भर भर कर पी रहे थे । उन्हें जैसे नाव छेकने की कतई चिंता न थी ।

रामसिंह ने बेचैन होकर पूछा—क्यों यी धन देर क्यों कर रहे हो ?

एक मल्लाह ने लूट खोर से चिन्तन में क्या मारकर आधा धुआँ पेट में पचाने के बाद कहा—चिन्ता किस बात की बाबूजी, समीरस्ता ठठका झीर उछ पाए । एक हो मिनट झीर देल लें कोई झीर सूना मल्लाह मुसफिर आ जाव । बड़ी आखिरी लम्हा है ।

रामसिंह ने फिर कहा—हमें दूर जाना है । इस बात का खयाल रक्कना । हमें कच्ची उठार दोगे तो हमें इनाम दिया जायगा ।

मल्लाह—बहुत झन्झट, सरकार ।

इसी समय बोटों दूर पर धूल उड़ती दिखती थी । मल्लाह ने पुकारकर कहा—बस ! मैया । नाव तेजवर है ।

जरा देर में एक गाड़ी आकर लगी हो गई । उसमें से बड़े टाट-बाट से सजी हुई दो-तीन स्त्रियाँ उतर पड़ीं । एक बार्ड-वेर्ड करत का मुद्रोन बुनक मी बड़ी रेती में कुछ सका हो गया । उनके साथ दो-तीन मीकर भी थे । आकर नाव में गलीचि बिछा दिये । तब सामान मल्लाहों की मदद से जरा देर में नाव पर चढ़ गया । वे स्त्रियाँ जार बुनक आकर बिस्तर पर बैठ गये ।

मल्लाहों ने जार से चिल्ला कर कहा—‘जयभगवती की और नाव  
साफ दी ।

[ क ]

नाव लहरों पर झेलती हुई आगे बढ़ रही थी, धुमैले बागल के  
टुकड़े से छूटकर सूबे की हवाकी फिरबों सहरो के साथ नृत्य करती हुई सी  
समस्त पकती थी । नदी की प्रबल धारा में कलकल छलछल की आवाज  
हो रही थी । बंकों का लपलप शब्द सब लोगों का ध्यान अपनी ओर  
खींच रहा था पर सुमित्रा का किसी ओर ध्यान न था, वह एक  
ठक ठस रेशमी बदनवासी युवक की ओर देख रही थी ।

जरा मीर से देखने से जान पड़ता कि वह युवक भी बार बार  
मन्नर बचाकर सुमित्रा को देख लेता था । दोनों एक दूसरे को पहचानने  
की कोशिश कर रहे थे । सुमित्रा की आँखें छलछल आ रही थी । युवक  
भी अपने माँ के भाव को बचपनी से दबा रहा था ।

रामसिंह ने आश्चर्यक सुमित्रा के चिर पर हाथ रखकर कहा—‘तु  
बेटी ! रानी बनो है ? क्या भी कुछ लड़ाई है ?

सुमित्रा के मुँह से एकाएक निकल गया—विता गी । इन्हें तुमने  
पहचाना !

इसके आगे वह बोल न सकी । लगभग, संकाय और दुःख के  
कारण आँखों में आपमा मुँह छिपा लिया ।

रामसिंह आश्चर्यविमूढ़ हावर सुमित्रा की ओर साक्षी रह । उसकी

बाप का टोक-टोक आशय उनकी समझ में न आया। उन्होंने नाथ में बैठे लोगों को गौर से देखा पर कुछ स्थिर न कर सके। उस मुचक और उस स्थिरों को पहचानने का प्रयास किया पर निरर्थक हुआ। सुभा ने भी उनसे और कुछ न कहा।

सुभा अस्त हो रहा था। नाथ चारा में कड़े बैठके दंग से बहकर बीच में कहीं रेली के टोले से छटक गई। मज्जाह कुछ बड़े और रत्न लेकर दूर आ सके हुए। उन्होंने हकर उकर हयने की बहुत कोशिश की पर नाथ किसी तरह निकलती मकर न आई। उन लोगों के प्रकाश से ऐसा मालूम होने लगा कि शायद वह न भी निकल सके।

रामसिंह बेहद दुःखी रहे थे, पर सुभा को कुछ भी चिन्ता न थी। वह एक प्रकार से निश्चिन्त होकर बैठी थी। अब भी वह बार-बार उस मुचक की तरफ देख लेती थी।

रामसिंह ने कई बार पूछा—कहो तो हम सब लोग भी उठकर चोर लगाने। बेर हुई आ रही है।

एक कम उम्र मज्जाह को अब तक कई बार सुभा और उसके पिता को लौहपूर्व दृष्टि से देख चुका था। उनके पास आकर धीरे से बोला—अब आज वह मान नहीं न जा सकती। अगर आप चाहते हैं तो धीरे से किसी बहाने उठकर खुपचाप उस बङ्गार में लेकर चले जाइए। इस तरफ पत्नी कुन्ती से क्यादा नहीं है। समझ गए।

मज्जाह आँसों से इशारा करके हट गया। रामसिंह पकर उठे। सुभा का कलौबा ककक करने लगा। अब क्या करना चाहिए। वह

बको देर तक उनकी समझ में न आया ।

गुरम्त ही रामसिंह ने संमत्तकर कहा—बेटी ठठ, सो हम लोग  
गतर चलें ।

सुमद्रा का सिर घूम रहा था । वह अचेत होकर गिर पड़ी ।  
उसे मूर्च्छा आ गई । देर तक पानी के छींटे मुह पर डालने के बाद उसने  
आंखें खोलीं । पिता ने उसे आरवाहन देकर कहा—पगली हुई है क्या ।  
कल मेरे साथ, तुम्हें किस बात का डर है !

सुमद्रा ने कोई उत्तर न दिया । एक हसकी-सी आह सींचकर  
सुप रही ।

[ बात ]

रामसिंह ने कहा—बेटी देर न कर ।

सुमद्रा ने एक प्रकार की निमिषस्तता दिलाते हुए कहा—भा सन  
की बराबरी अपनी । अगर मागना ही है तो इन सबको भी साथ ले  
ना न सिवा जी ।

रामसिंह—तब तो अपना ठठार भी असम्भव हो जायगा ।

सुमद्रा—पर पिता जी उन्हें बता देना तो हमारा कर्तव्य है ।  
सुपचार अकेले अपनी रक्षा का उपाय करके औरों को आपसि के दुःख में  
छोड़ जाना उचित नहीं है । आपने शायद अभी पहचाना नहीं,  
वे कौन हैं ।

रामसिंह ने बेटी की ओर आश्चर्यचिंत होकर देखा, फिर पूछा—



इलाय ]

कौन हैं ? कहती क्यों नहीं ?

मरेन्द्र और भीन—आप इतनी व्यस्त भूत पाते हैं—कहकर मुझसे मे  
अपना मुँह छिपा लिया ।

रामसिंह चौंक पड़े—मरेन्द्र ! उषेन्द्र का माई ! इतने कम  
बाद तुने कैसे पहचान लिया ?

वे ठठकर मरेन्द्र के पास पहुँचे । मरेन्द्र ने लड़े होकर उनका  
स्वागत किया ।

वह कुछ कहना चाहता था पर रामसिंह ने टोककर कहा—हम  
सोम बाप पर मुग्धित नहीं हैं । यदि सीमा ही कोई उपाय न हुआ तो  
न्याय असम्भव है ।

कुछ देर वे बातें करते रहे ।

उसके बाद मरेन्द्र ने अपने बौद्ध से कहा—मस्तुआहो से आकर  
कह दो ! बाब और अधिक मेहनत न करें । आज हम लाना नहीं रहे बापोंसे  
वे सोम का मुस्ताकर भोजन पानी कर लें ।

किर चलते-चलते उसके कान में भी कुछ कह दिया ।

मस्तुआह लौट आकर निश्चिन्त हुए । अस्तावस्त पर का लौ  
भी लाली थी वह क्षिप चुकी थी । अन्धकार फैल रहा था । नदी के मन्दार  
शब्द से सीमा डर रहे थे । एकाएक हरहर करके हवा का झोंका आता  
और उसी के साथ ही किसी ने माथ का रस्ता काट दिया । वस भर में  
वह मीनख बेग से आधारे में एक ओर को बह गई । तीन मस्तुआहो के लान

पर अनेक आवाजें आईं — रोंको, पकड़ो पर ये वहीं नदी के हाहाकार में विलीन हो गई ।

[ आठ ]

जहां से पहले ये ठीकी किनारे फिर सब लोग मुद्वित पहुँच गए । रात भर सब आगते रहे । अब तक सब का घर बना था । करीब-करीब सभी भबभीष्ट और इच्छित थे । केवल मुमद्रा हर्ष से खिली जाती थी ।

नरेन्द्र से पूछने पर जब रामसिंह को पता चला कि वह भी मित्रसिंह के यहां उत्सव में आ रहा है, तो वे और भी प्रसन्न हुये । दूसरे दिन सब जना साथ साथ दूसरी गांव पर सवार होकर पार हो गये ।

इस आकस्मिक आपदा ने सब लोगों को एक दूसरे से बाँधने का बन्ध कर दिया था । नरेन्द्र के घर की छिप में रामसिंह से बातचीत करने लगे थे । पर मुमद्रा और नरेन्द्र में कुछ भी आलाप न हुआ । वे एक दूसरे के लिये बाहर की मूर्ति की तरह मौन थे ।

रामसिंह ने पहुँचते ही मित्रसिंह का सारा हाल बतलाकर पूछा—  
नरेन्द्र मुमद्रा के लिए कैसा कर रहेगा ?

मित्रसिंह ने कहा—बका ही अच्छा ।

बाद में जब पता चला कि मुमद्रा और नरेन्द्र ठा पड़ने ही बचपन में कभी ब्याह की प्रारम्भिक रथों पूरी कर चुके हैं, तो रामसिंह और

हलाल ]

विजयसिंह दामों के आसपास का ठिकाना न रहा ।

सुमरा के रोग का तो किसी का ध्यान भी न आया । वह भी बिना किसी दवा याक के अपने का बर्बाद अनुभव कर रही थी ।

## आश्रयदान

छोटे के किये लार्ने हुई जबभी खोकर एक दस-बारह साल की लकड़ी रोटी हुई बारही थी । गली में मुकते ही भीड़ को चीरकर एक लकड़े ने उसके सामने आकर पूछा—क्या है ? क्यों रोती है ?

हजारों लोगों में उस दुस्स्थि की चीन जबर रस्तों है ? लकड़ी ने लकड़े की तरफ देखा और फिर से रो दिया ।

बास नहीं पूछता ! क्यों रोती है, मरी ? — लकड़े ने मिलाकर कहा ।

लकड़ी ने मैली छोड़नी से बड़ी-बड़ी आँखें पोंछ बाली । एक-दो चीन बार बार जोर से सिसककर कहा—जबभी, मेरी जबभी कहीं को गई । हाय ! अब मैं क्या करूँगी ?

लकड़े ने कहा—आँखें मूँचकर रोते रोते प्यारी आँखों से मिला बाकी ? क्या लौट—बता, फिर कहाँ कहाँ गई थी ?

लकड़ी आग आगे और लकड़ा पीछे पीछे एक जगह से दूसरी जगह का जबभी लाजने लगे ।

लोमले लोमले दानों तक गये । कहीं पता न लगा । लकड़ी ने

लड़के ने चेहरे पर एक दृष्टि डालकर भाभी यह बात कहनी चाही—आप बता, तेरी शकल भी गुम हुए या नहीं ?

लड़के ने लड़की का आग्रह खींचकर कहा—अच्छा ठहर । यही बकौ रह मैं अभी आया । लड़का भाग गया । लड़की खड़ी खड़ी उभ देखती रही । जरा देर में उठने लौट कर कहा—मे पन्द्रह पैस हैं राजा, इतने से किसी तरह काम चला स ।

लड़की ने पैसे तो लिये । एक बार फिर लड़क का आँर देखा और हँसकर चल दी ।

लड़के ने पुकार कर पूछा—क्यों सी ! चेरा नाम ?

यह मैं किसी को नहीं बताती वहकर लड़की पास की दुकान पर छोटा सरीयने लगी ।

लड़का कुछ कुछ कागज गुप्ता सा एक आँर चला गया ।

[ पा ]

कुछ दिन बाद वही लड़का अपने घर में ग्रामाफोन बजा रहा था । और लड़की चुपचाप बैठी जब ध्यान से गीत सुन रही थी । लड़के ने रेकार्ड पर से झुर्रे टटाकर कहा—कीशिया ! आसनी नहीं दू ?

कीशिया कैसे छात से जागकर वाली—ओफ ! देर हो गई है ! क्या बजा है ?

लड़के ने बक्री की तरफ घूमकर कहा—यस ।

कीशिया—गजब हो गया । कभी बहुत भी लौट आई हो ।—

मोह । बाहर तो अँबेरा झा गया है ।

लड़के की मौसी, माया, पाठ ही दरबाजे में बैठी थी, बोली—  
कौशिक्या ! तू परायी लौकर है । बह-बेचट का ध्यान रक्खा कर ।

लड़की कपका आँसों में देखर रोने लगी ।

माया—रोती क्यों है ? उठ, बल ब्या । मैं शाकटैन दिखावे देती  
हूँ । मकान कहीं दूर तो है नहीं ।

कौशिक्या ने राते-राते कहा—बस बस गये हैं तो व जकर ही लौट  
आई होगी ।

लड़के ने पूछा—कहाँ गई थी वे ?

कौशिक्या—मुझे मकान की रसवाली को झोमकर सिनेमा  
गई थी ।

लड़का—तब तू यहाँ क्यों जली आई ?

इसका उत्तर कौशिक्या न दे पायी । बह फिर रोने लगी । माया  
शाकटैन से आई, बोली—जा, मैं दिखाती हूँ ।

कौशिक्या रोती हुई जाती—अगर कहीं वे आगई होंगी तो ?

माया—तो क्या करें ?

कौशिक्या—मेरी बोरी-बोरी ठका देंगी । आम्मा से पकी कहकर  
वे मुझे अपने साथ लाई हैं । बिन्दी चाहत भी आश्रम पर नहीं है ।  
फिरण भी ठनके साथ गई है ।—हाय ! अब मैं क्या करूँ ?

माया—नहीं वे ऐसा न करेंगी ?

कौशिक्या बड़े-बड़े आँसु गिराती हुई लौट रही ।

माया ने फिर पूछा—हरती क्यों है ? क्या कभी उन्होंने तुझे माया है ?

कौशिक्या ने अपनी पीठ का कपड़ा हटा दिया । पीठ पर उपरे हुए कोनों के निश देखाकर माया ने विह्वल होकर कहा—ऐसी राखसी के साथ फूल सी कोमल लड़की मेरा दी है । जी चाहता है तेरी अम्मा को इसके लिए मृत काश ।

फिर कहा—सर बेटी । अब तू बेर न कर अम्मी बली का, वे झाई न होगी ।

लड़की उसी तरह रोती-हुई जाने के लिए लगी । माया ने लड़के से कहा—मेरा । मेरायम, जो यह लीप लेकर तुम बरा सिन्धुभा को पुकार तो दो, वह इसे पटुंवा देगा ।

मेरा—मैं ही न जाकर पटुंवा आऊ ?

मेरा और कौशिक्या दोनों चुपचाप गली से होकर चले ।

कौशिक्या ने कहा—मैं पिछले दरवाजे से गई थी । सहर दरवाजा बन्द था । अगर वह खुला हो तो समझला न आगई ।

मेरा ने जाकर देखा, सहर दरवाजा खुला था । भीतर रोशनी हो रही थी । वह दौड़कर कौशिक्या के आगे शरीर से माया निकल गये । उसने विनीत कबज स्वर में कहा—अब बोलो, मैं क्या करूँ ?

मेरा ने पूछा—क्या करोगी ?

कौशिक्या—वर मैं पैर न धूँगी ।

मेरा—फिर पाओगी कहाँ ?

मेवा ने समझ या बिन्दी साहब का घर छोड़कर कौशिक्या के लिये अगर कोई जगह है तो मेवा की मौसी का घर, और वह का कहाँ सकती है । कौशिक्या ने उसकी संभावना के विस्तृत विषय कहा—  
 भी चाहेगा वहाँ नहीं जाऊँगी । ठीर की क्या कमी है ।—न होगा कहीं सकल पर पकड़ी रहूँगी ।

मेवा का मुँह उठर गया । उसने कहा—सकल पर ?

कौशिक्या—तुम अब लौट आओ भाई ।

मेवा—बहुत नहीं आयागी तो वहाँ भरे साथ लौट आओ मौसी के पास ।

कौशिक्या—वहाँ भी न जा सकूँगी ।

मेवा—वहाँ बसना होगा । मैं पकड़कर ले चलूँगा ।

उस मुनसान आँखों वाली मेवा कौशिक्या का हाथ पकड़कर उसे अपने घर लौटा ले गया । कौशिक्या हमका न कर सकी । सुपनाप बहकते हृदय के साथ आँसुओं में आँसु भरे हुए मेवा के पैरों का अनुसरण करती हुई उसके घर लौट गई ।

## [ तीन ]

बसते गुजर गई हैं । मेवा कौशिक्या को भूल गया होगा, पर कौशिक्या शायद अभी उसे नहीं भूलती है । लड़कियाँ अक्सर वही समझ लेती हैं कि लड़कपन की छाँदी-भोटी बातों को बिसे के बाद किये हुए हैं



वेमे ही ठाने गानों भी दिये होंगे । यही ठाका भोलापन है, यही ठाकी मरलगा है । मरों को हमनी पुगल कदा रहती है कि वे सब पातों का भी स्वें मुरझित रहने ।

येवा बी ए. , एम ए हो गया । बिप्री के साथ ठाकी महत्ता कोझाए भी तो बनी हैं । सब वह उठ छरहरे बदन की बुकली-पतली रीन-मरली कोमिल्या की लव में अपनी समुच्च धर्मिया कैसे लय कर सक्तता पर कोमिल्या के लिये बही हरा-भरा संसार है । वह रात को बही स्ना देलती है, दिन का बहा बातें साजती है । किम दिन मंघ ने क्या कहा था और ठाका उसने क्या उत्तर दिया था,—वह सोचकर कभी वह प्रसन्न होती है कभी रोती है और कभी गुपचाप विचारमग्न हो जाती है ।

मिसने निरामिता को एक बार आश्चर्य दिया था बही फिर भी समझ पड़ने पर उसे आश्चर्य होगा हय पर उसे पूरी विश्वास है । इसलिये तुमिया मां के रोने पर वह उसे बड़े गर्व से समझने लगती—मैं तुम क्यों बिन्ता करती हो । सब ठीक ही होगा, सब ठाकी मां ठाके गले में हाथ बासकर कहती, बेटी । मैं बड़ी समझती हूँ । मैंने तुम्हें कम्प देकर मां के साम को बलकित ही किया है । मैं तुम्हें कभी भी किसी तरह का झुन न पहुँचा सकी । मैं भी जानती हूँ कि मेरे रहते तुम्हें कुछ तुल न मिलेगा । मेरे कले भाग्य के साथ सब एक तेरा सम्बन्ध है सब एक तुम्हें खुशी ही रहना पड़ेगा ।

कोमिल्या मां को रोककर कहती—म मां, येना न कहो । तुम्हें

तां कभी किसी तरह का दुख नहीं है । तुम स्वयं ही भी दुखाती हो !

इसी प्रकार मां बेटी अनवरत गले मिलकर आत्मा बहाया करती थीं ।

कौशिल्या की अवस्था सातह साल की हो चुकी थी, पर बीमारी के कारण उसकी मां की इतनी चामक्य न रह गई थी कि वह किसी तरह लड़कियों के हाथ पीले कर सके । वह न कारपाई से उठती थी, न मरती ही थी, ऐसा मात्स्य पड़ता था जैसे उसके प्राण भी किसी तरह के असमंजस में पड़े हैं ।

मां बेटी दोनों की जीवन-नाका अक्षर में भूत रही थी ।

## [ चार ]

मेवा कानून की परीक्षा लेकर घर आया । घर पर पहले ही से आनन्द उसका मनाने जा रहा थे । दरवाजों में बन्दनहारों मूलाची थीं । सभी कमरे सजाये गये थे । सब बगल गुत्ताबगस छिड़का था चुका था । घर मंहमानों से भर गया । मेवा का हृदय आनन्द से नाच उठा । अब क्या डेर है, चौधर ही दिन तो उसका ब्याह होगा ।

उसने भीतर बाहर योसी के चरस लुप । फिर आकर बाहर के एक एक लागों से मिला । योर्क डेर में लेंड बजने लगा । पान ॥ ओठ रचाए मध माछी के दिव्य शास्त्रवर राखे करने पर मन ही मन मुस्करा दिया । सारे मगर में भूम थी । मौसी में रूप ॥ पानी की तरह बहाया था ।

सड़की जिनहि देखी थी वे कहते थे ओड़ी भी एक ही मिली है ।  
 बानों ही सिद्धि है । बानों ही सम्पन्न और प्रतिष्ठित बरों के हैं । सुन्दरता  
 में भी बर और बधू दोनों का मेल है ।

सड़की आर कोई नहीं बही छिपी साहब की किरण है ।

[ पांच ]

आज केवल एक दिन की देर है । बरात जो ठेठरी में सब की  
 चटुर्त लगे रही है । बही साया जा रहा है कि बरात का प्रत्यक्ष किस  
 तरह निकाला जाय । कौन-कौन सा बैर कहाँ पर रहे । वृद्धों की कार  
 किस प्रकार समझें जाय । किस सड़क से होकर किस प्रकार बरात निकलें ।  
 कैसी-कैसी आतिशबाजी कहाँ कहाँ छूटे, किस तरह की दृष्टि समझें जाय ।

लोग बाहर भीतर दौड़ रहे थे । मेवा भी पुपचाप एक-एक पल  
 गिन रहा था । उस समय एक एक मिनट कटता उस बुरवार पक रहा  
 था । जिस किरण की प्रशंसा सुनते सुनते वह परेशान हो गया था । बही  
 किरण बन्द पानों के बाद उसकी हा बाधनी । उस बही के लिये वह बड़ी  
 व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था ।

उस समय किसी ने लाकर एक पत्र उसके हाथ में रक्त दिया ।  
 मेवा ने उसे लाकर पढ़ा, फिर लापरवाही से एक ओर झेंक दिया, पर  
 थोड़ी देर में फिर उठाकर पढ़ा । कुछ देर बैठा बैठा सोचता रहा । न जाने  
 कौन कौन सी बातें उसके दिमाग में लूट गई । वह कुछ कुछ उदास हो

गन्ध । फिर तीसरी बार पत्र पढ़कर अपनी बेम में रक्त स्थिती । बाहर निकल गया ।

बरात का समय हो चला पर घर का कहीं पता न था । सब लोग अचरब में आ गये । लोग जाने लगी । तलाश कर सक गये तो सब को रोंका होमे लगी । मौसी, माया, तो वह सुनकर एक अंधेरे कमरे में आकर चे पड़ी । घर कहाँ गया वह किसी को समझ में न आता था । सभी कहते थे—वह क्या से असमझ भी तो नहीं था फिर गया कहाँ ?

वहाँ आनन्द और उत्सव हो रहा था वहाँ सारा घर में बार विवाह का गया । सब लोग खुश और चिन्ता से व्यकुल हो उठे ।

उसी समय मलिनबस्त्रा कोमलांगी कौशिक्या का हाथ पकड़े मेवा द्वार पर आकर गाड़ी से उतर पड़ा । मौसी भी आले पोंछकर अपने प्यारे पुत्र को दाढ़ी से लगा लेने के लिये बोली ।

मेवा ने द्वार पर आते ही कहा—मौसी को कुलाघा आकर अपनी बहू की परछन करें ।

माया की बहू देखकर मूर्छा आ गई । वे चक्राम से धृष्णी पर गिर पड़ी । कौशिक्या ने उतरकर अपनी से उमका सिर अपनी गोद में रक्त स्थिती । सब लोग चकित भाव से सबे ताक रहे थे ।

## आश्रयहीना

लक्ष्मी की हँसी में एक टीठपना था। वह लड़का-लड़की उसके पास आ जाता। उस पहले शर्मा के मारे भेषना ही पड़ता। लेकिन वह संकोच का संकट वह व्यक्ति ठहरने न देती। बिठना ही वह भाग्यकर पिण्ड छुड़ाना चाहता, उठना ही वह उसे और लिम्बूती। इससे आधी देर में उसके गद्दा आने से कोई भी बच्चा उसे प्यार करने लगता था। लक्ष्मी का बच्चों के लिये का स्वामाधिक प्रेम था। वह उसकी हँसी में झुलकता था। इस वास्तव्य का कारण शायद यही था कि उसके कोई सम्मान न थी। वह और उसके स्वामी ब्रजविहारी अनेक उमर बड़े से बर में रहते थे। जब वे काम पर चले जाते तो लक्ष्मी का अधिक समय विहार-मुनार में जाता था। इस एहत्ती के अंशाल में भी वह बच्चों के घाम लेपने को सदा लालापित रहती।

दिन भर के एकान्तवास के बाद शाम को लक्ष्मी की चाल दृष्टि दरवाजे की ओर जाती थी। किसी के पैरों की आहट में उसके कान लूट लठक दे।—बाहर पलंग निहाय, घूमने की आँख को टीक दिया, दीपक की बत्ती का ठकसाना पर एक काल और एक आल बराबर अपने काम में लगे थे। वह एकाएक उठकर चुपचाप मुकुराती हुई जाती हो गई।

पद-चरित्र पास आते ही किशक खोल दिने और हँसकर बेटी की चरित्र-वृत्त लख की, पर आभय स्वामी ने बचले में गले में बाँधे बालक ठसे प्यार नहीं किया—एक बार भी मुँह-रूप में कसकर वह नहीं कहा कि, 'अब कभी बेर न होगी ।'

उन्होंने उसके हृदय की भाषा न समझकर साधारण भाव से गहरी स्वीकार कर ली, कह दिया—क्या किया जाण, मौजूरी में बेर उबेर क्या !

लक्ष्मी का बिकासामुक्त हृदय-कमल भीहीन और निष्प्रभ हो गया । वह चुपचाप जाकर अपने काम में लग गई । ब्रजविहारी जाकर कमरे में लेट रहे ।

लक्ष्मी के फिर पुरकाने पर ठठ बैठ । निरव कृत्य और संपन्न-बदन के उपरान्त मानन किया । किशक काम में प्रत्यक्ष रूप से किसी तरह का व्यतिक्रम नहीं दिखाई पड़ा । लेकिन उनकी चिरसंगिनी का अप्सरी तरह शाठ हो गया कि आभय शुरू से आभिर तक लगाने कामों में एक प्रकार की दायमदून और अभ्यक्त्या रही है । इसमें संशय नहीं कि उदासी का कोई बड़ा कारण है । लक्ष्मी जितना ही इस बात को साधने लगती उतनी ही उसके हृदय में एक प्रकार की आशंका आकर घनीभूत होने लगी । उसने कर-बार पूछना चाहा पर वह खोचकर रुक रही—यदि बतलाने योग्य होती तो वे खुद ही क्यों दिखाए रखते ।

भोजन के उपरान्त उस दिन ब्रजविहारी निकलकर टहलने भी नहीं गये । जाकर बारपाई पर लट रहे । दाढ़ी बेर में बब फैल रखती

दूर रक्षिता लक्ष्मी भी अपनी उंगलियों में हो बीजे बसाकर पटुची । नीच को कुमाने के लिये छोटे हुए स्वामी के हाँह में जबरदस्ती पान बेकर, उनके पैर बाधने लगी ।

कुछ देर बाद अपने बुल का भार अपनी स्त्री के कंधों पर भी बालने के लिये ब्रजविहारी बाले—दुर्गें यह तो माझूम हो है कि कुटुम्ब के माते मेरे एक चाचा और उनकी गाल आठ साल की लड़की के सिवा कोई नहीं है ।

लक्ष्मी—हां तो क्या हुआ !

ब्रज०—पौंडस रामेश्याम अकस्मी ने तार भेजा है । लिखा है, चाचा की तबियत बहुत बुरा है, मेरा जाना जरूरी है, पर—

लक्ष्मी—हां जरूरी तो है ही । मैं समझती हूँ कि सबेरे की गाड़ी से चले जाओ ।

ब्रज०—कल सपरे ?

लक्ष्मी—जाना तो इसी गाड़ी से जा । पर आज नहीं जा सके तो सबेरे किसी सरह बफ्ता ठीक नहीं ।

[ दो ]

बीस दिव ब्रजविहारी सोट आये । लक्ष्मी में बड़ी उल्लुखता से पूछा—चाचा की तबियत अब अच्छी है न ?

ब्रजविहारी—हां अब ये रोग से फिर-मुक्त हो गये । किन्तु तो बही कहा था कि वहां बीजे जाकर अपना बपख बरपाव करना है । वृद्धे

आत्मियों की दशादाक करके उन्हें मृत्यु से बचाना उनकी अस्थिम शक्ति को नष्ट करना है। मैं कमी न जाता पर उपेक्षाम से लिखा था। मैं पहुँचने पर निन्दा करते, कहते—“बड़ा स्वार्थी आदमी है। बाबा के पास फन होता तो बीका जाता।” जम्मर के शिष्य एक बात कहने को हो जाती। इसीलिये इतना समय और इतना रूप्य बरबाद कर आया हूँ।

लक्ष्मी—बाबा के शिष्य शर्ष किये गये रूप्ये का बरबाद करना क्यों कहते हैं ? ईश्वर इस तरह लक्ष्मी का तन मन फन से गुस्सनों की सेवा का अवसर दे। फन कोई अपने साथ ला ले नहीं जाता।—मैं तो कहती हूँ उन्हें कुछ और भेज दीजिये।

मन्त्र०—अब कहाँ ता उन्हें स्वर्ग में भेज दूँ ?

लक्ष्मी—हाँ, वह क्या कहते हो ?

मन्त्र०—ठीक ही तो कहता हूँ। उन्हें परलोक विचारे धाम वीसरा दिन है।

लक्ष्मी—तो तुम इतनी जल्दी क्यों खीट आये ?

मन्त्र०—क्या वहीं पड़ा रहता ?

लक्ष्मी की आँखों में आँसू साहरा आये। उसने आद्मच्छट से पूछा—उनका संस्कार ?

मन्त्र०—सब कदखा से करा दिया। यदि मैं उसमें लग जाता तो इतनी जल्दी वापस किस तरह आ सकता ?

कदखा बीन थी, वह लक्ष्मी से अभिहित नहीं था। वह मन ही मन दुस्मी हाकर सोचने लगी—उस व्यापारीय अशोध बालिका ने अकेले किस



## आभयहीना ]

तब सब किया हागा ?

ब्रजविहारी ने बतलाया कि ये कसबा का भी प्रवेश अपने मित्र के घर कर आने हैं । उन्हीं के परिवार में वह भी बनी रहेगी ।

लक्ष्मी—अब तक निस्पन्द, निद्रावत, बच्चासी किन्तु शान्त हाकर सारी माँहें सुन रही थी, अश्रित्त वात से उसका सारा पैरें छूट गया । उसने कपित कंठ से कहा—आर आर का हा कसबा को वहाँ छोड़ आना किसी तरह उचित ॥ मुझा ।

ब्रज०—क्यों ?

लक्ष्मी—दुर्लभ कि अभी वह एक बग आनाथ नहीं हो गई । माँ के घर के द्वार उस मुलिया के लिये मैं किसी तरह बन्द न होने दूँगी ।—आओ, जाकर तुम कल ही कसबा का ले आओ ।

ब्रजविहारी का स्वामय आते ऐसा रहा हो, पर लक्ष्मी वहाँ अड़ जाती, वहाँ उठते बड़ेगम्भीर हो जाता पकता । उसका शासन उनके ऊपर कभी कभी बहुत कड़ा हो जाता था, पर स्त्री, की बिद रखना उनके स्वभाव में एक गुण जरूर था । वे लक्ष्मी के आमुओं को अपने कमाल से पीछे कर कमरे में जाकर आराम करने लगे ।

[ तीन ]

प्रेमलता ने रात को उपेक्षाम से पूछा—क्या कसबा को सचमुच मेरा ही होगा ?

राजेराम—और उपाय ही क्या है ? कसबा ब्रजविहारी की

बहन है, वे ठगे हो जाना चाहते हैं, तो हम फिर तरह-मना कर सकते हैं ।

मेमबता—मैं भी जानती हूँ उनकी बहन है पर क्या माई ने ही उसे यहाँ नहीं रक्का था ? तुम कहते थे वह अब यहीं रहेगी । अगर वह सब न कहते तो ठमिष को बचाव क्यों दे बेनी ? बताओ, बपुआ को कौन खिलायेगा ? ठमिष अब डिप्टी साहब का घर छोड़कर क्यों जाने लगी ? उसके मित्राब तो दो ही दिन में घायमान में चढ़ गये हैं ।—बाआ बाकर साफ-साफ उनसे कह दो वह नहीं हमा । कक्या किसी तरह अब नहीं जा सकेगी । अगर तुम्हें मित्र के सामने लाग आती हो तो मैं बाकर कह दूँ, कि पहले क्यों नहीं सोच लिया था ?—सोचा हमा सोचाकर उसी से सारा काम लिया करेंगे । घर में मौकरानी की फिक्र कम हो जायेगी ।

रावेरयाम की की धूम्रेशी पर मन ही मन क्षुपित हाकर बर्बश स्वर में बोलो—चुप रहो । अपनी दलीलें मेरे सामने पेश न करो । मैं बेसा क्षुपित समझूँगा कसूँगा ।

मेमबता ने कपड़े को आँचल के भीतर एक बार दबा कर, हाथ मचाते हुए पृष्टा—मैं भी तो सुनूँ तुम्हारा वह ठणित क्या है ? बन्ने को रक्कसे का इस्तमाल कर लिया है ? नहीं हा मैं साफ कह देती हूँ । दफ्तर के बरत पर रोटी की आशा न करना ।

रावेरयाम ने सीमकर उत्तर दिया—सब समझ लिया है । कक्या कल आकसी कल आकसी वह अब यहाँ किसी तरह नहीं रह सकती ।—

इसके बाद वे करबड़ बदलकर गैर रहे । प्रेमसत्ता पर-मर्दिता खरिदी  
 ही प्रेम के कारण स्वामी के दण्डूपन को भिन्नकारने लगी ।

[ चार ]

कक्या शाम से ही माई के साथ जाने का आनन्द से उलझ रही  
 थी । उसके अशेष अन्तःकरण में न जाने किसने वह बात कह दी थी,  
 कि यामी के पास उसके अनौपचारिक और बुद्धिमान जीवन के लिये बड़ा सुन्दर  
 आश्रम है । वहाँ पहुँच जाने के बाद उसके सारे शरीर दूर हो जावेंगे ।  
 पर वह किसे मात्तूम या कि वहाँ पहुँचना ही एक दुष्कर बात है । उस  
 अनामिनी कालिका की दुष्ट ही हथ्थाओं को करबड़-करबड़कर बाँधने के लिये  
 न जाने कितनी झूठ्ठानों का संघर्ष हो रहा था ।

सबैरा होते ही जब त्रजबिहारी ने राबेरवाम को पुकार कर कहा—  
 बरत हो गया है । कक्या को बन्दी मेन्ने । कक्या उस समय आँखों में  
 आँसू भरकर चुपचाप नीचे के अंधेरे करबड़ में मन मसोस रही थी ।  
 यतीव ने पड़ोसित बुद्धिया की सहायता से कम ही अपने कपड़ों की एक  
 छेदी की लट्टी बाँध ली थी, उसी गठरी पर मुँह रखकर वह  
 सिसकने लगी ।

मेअता हूँ—कहकर राबेरवाम ने प्रेमसत्ता से पूछा—कहाँ है,  
 लकड़ी को तय्यार नहीं किया ।

प्रेमसत्ता—मैं क्या जानूँ ? तुम सब लोग उसके ब्यादा बनो  
 हो । चरा बाँधकर पूछा ही कहती क्या है, वह उन अपने माई के साथ

जाना भी चाहती है ।

राधेश्याम—क्यों नहीं जायगी । उसे जाना पड़ेगा । तुम्हारी वह सब हरकतें मुझे पसन्द नहीं हैं । जाओ, जाकर जल्दी उसे मेज दो ।

प्रेमलता मारे श्रेष्ठ के रोने लगी, बोली—मेरी हरकतें हैं, तो तुम्हीं जाकर क्यों न ही मेज देते । मैं इस झमेले में नहीं पड़ती ।

उत्तर ब्रजबिहारी जल्दी कर रहे थे । राधेश्याम खी पर मझाकर बाहर निकल आये, और कहा—कुछ पठा नहीं कसबा क्या कर रही है । मालूम पड़ता है, बच्चों में हिलमिल जाने से घर लोके में को ठसका भी नहीं हो रहा । फिर पुकारा—कसबा । कसबा । बेटी, जल तो इधर ।

कसबा सबल आँसों को मुकाये हुए बीमे पैर रखती हुई आकर लकी हो गई । गाड़ी का बल हो गया था । ब्रजबिहारी कसबा के गालों पर हाँस की चर्रें देसकर बोले—रोती क्यों है पगली । जल तो जलने के लिये उठावली हो रही थी । अच्छा जा रो मठ, मैं तुम्हें जबरदस्ती न ले लाऊँगा ।

ब्रजबिहारी तंगी पर बैठकर जल दिये । कसबा का संकोप, विष्णु का बँक होकर, उसके शरीर में कुरी तरह चुभ गया, पर अचानक हो खड़ा था ।

[ पाँच ]

ब्रजबिहारी अचानक शीट आये तब लक्ष्मी का हृदय स्थानि और घोर से हो टुकड़े हो गया । उसने मन ही मन अङ्गनठ क्षत्री के

उत्पन्न स्वभाव की मही कल्पना करके उसे अपने मन के बाहर डेला रखने का प्रयत्न किया । जोड़े दिनों में कदवा दूध का पर्याप्तमापी कोरा का एक शब्द मान रह गई ।

कुछ महीनों के बाद ही लक्ष्मी के पुत्री पैदा हुई । उस समय ईंटी करते हुए ब्रजविहारी ने कहा—छो राज कदवा तुम्हारे घर ही में था गई ।—अपनी लकड़ी का नाम तुम यही रखना ।

लक्ष्मी ने सड़ों के सामने ठंगली लड़ी करके पुन करते हुए कहा—मही, वह नाम न लो ।—ईश्वर न करे—

आगे के शब्दों को उसने अपनी जीम से काटकर रोक दिया । इस नवजात कन्या को पाकर ता कदवा की सचमुच कोई चकरात नहीं रह गई थी । लेकिन निराशा को वह कम मय्य था । वह कन्या संध्य के ताप की तरह अपना प्रकाश दिखाकर शीघ्र ही अस्त हो गई । लक्ष्मी के प्राणों का वह आचार भी उससे भूषक कर लिया गया । इस नये दुस्त से तो उसका भी किसी तरह सम्झाने न सम्भवा था ।

पत्नी का भी बहलाने के लिये ब्रजविहारी काम का बहाना करके भुषणप कदवा को खिचाने लगे गये । सोचा था इस तरह एकाएक कदवा को वे जाने से लक्ष्मी का भी हटका हो जायगा । वे जाहे जैसे लोमी हों, अपनी लक्ष्मी के सिधे लक्ष्मी का कटाई पनात नहीं करते थे । की उन्हें प्राणों के मोल थी । उन्हींसे उनका सोने का संसार बसा था ।

ब्रजविहारी राफेरथाप के यहां पहुँचे, पर अब वहां कदवा कहाँ

य । मालूम हुआ वह तो छः मात दिन हुए न जाने कहाँ गायब हो गयी ।  
 तब से बहुत काशिश की गई पर कोई पता नहीं चला । ब्रजविहारी  
 मन ही मन बहुत दुःखी हुए, पर पता नहीं वह कुछ ठमका कक्या के दुर्भाग्य  
 के लिये या अथवा अपनी सखी के भी बहलाव का साधन न कुछ माने  
 के लिये । जिस मित्र ने कृपा करके उनके कहने से एक अनाथ बालिका  
 को आभय दिया था उससे किसी तरह का जवाब तलाव करत उनसे न बना ।  
 बहन ला गई, पर माई का दुःख न रुका । अनाथ लड़की का माई  
 बतकर उसके लिये कुछ करना ब्रजविहारी जैसे व्यक्ति के लिए भयंकर अपमान  
 था । ये पुनः पुनः सोच पड़े ।

## [ क ]

लक्ष्मी ने बहका के लिये ला पारना बना ली थी । उसमें अगल  
 एकाएक वह आ जाती तो शायद लक्ष्मी क्रुम्वत ही ठमे हृदय से न लग  
 पाती । पहली बार उसने खाने से इन्कार कर दिया था, वह अभी वह  
 मूमी न थी । इरीलिये अब ब्रजविहारी ने कक्या की दुःख कहानी सुनाई,  
 तो लक्ष्मी को प्रतीत हुआ, कि वही होना चाहिये था । किन्तु  
 वह कटोर माँस मीर न रह सका । उसके स्थान पर शीम ही कक्या की  
 अवस्था का दयनीय चित्र मिल कर रह गया और जैसे जैसे समय बीतने लगा  
 बहका के संकल्प में जान के लिये चिन्ता बढ़ती गई । अक्सर दिन में  
 बैठकर, रात में लेटकर, वह हम अमासी बालिका के अपरिचित भाग्य की  
 बात गोंगडर मन ही मन शोक में उभर वसित हो खटती थी ।

इन अनेक विमताओं से घिरे रहने के कारण लक्ष्मी की बरा दिन-दिन बिगड़ने लगी । उसके लम्बे हुए शरीर की पसलें छाया से डरकर ब्रजविहारी भी अपनी बुद्धि पर सीमती कीर अक्सर सोचा करते—मैं ही तो कल्या को बड़ा छोड़ आया था । उस समय यदि लक्ष्मी की बात मानी होती तो आज वह कहाँ जाती ? उन्हें विश्वास हो गया था, कि लक्ष्मी की बरा बहुत कुछ कल्या के कल्या कारण हो रही है । — इतने दिन बाद वे कल्या का मूल्य समझ पाये व ।

उत्तरायण को चिट्ठी लिखी । पुलिस में इच्छा करावी । अजयपुर में छुपवाया पर कहीं कल्या का बता न सका । इधर लक्ष्मी के स्वास्थ्य के लिये ब्रजविहारी को उसे पहाड़ ले जाना पड़ा । वहाँ कई महीने बिताये पर कोई विशेष लाभ दिखाई न दिया । फिर वापस लौट आना पड़ा ।

लौटते ही उन्हें एक चिट्ठी मिली । चिट्ठी कल्या की ओर से किसी ने लिखकर भेजी थी । कल्या पर छोड़कर कुछ न मानी थी । प्रेमलता ने ही अपने माया के बहा देहात में उसे भेज दिया था । उस समय ब्रिज करते हुए किसान था, जल्दी वाले आओ नहीं तो वे लोग उसकी बलि दे देंगे । प्रेमलता के मामा के एक लड़का है—वह पागल है । विवाह रीतिरूप द्वारा उसके पागलपन का मूल उठारने के लिये कल्या को लाया गया है । कल्या का जीवन लक्ष्य करके उसे उबार आया । अमांगी कल्या कहती है आज उसके भाई हो, यदि वह न भी हो तो मनुष्यता के नाते कल्या के उधार का कोई उपाय करना आवश्यक है । समय बहुत थोड़ा है, आपसे आठ दिन के अन्दर ही आगाना चाहिये । इसके बाद कल्या

न मिल सकेगी । एक आभायी आशोक बहिन का भविष्य आपके हाथ में है ; वह अभी विवाह का धर्म भी तो नहीं जानती । जिस पागल के दर से उसे मूर्खता आ जाती है, वही उसका पति होने का रहा है । उसकी दशा देखने से ही उसकी कल्याण का अन्दाजा हो सकेगा ।

एक पढ़कर ब्रजविहारी हठाश हो गये । आठ दिन का समय दिया गया था, पर चिट्ठी को शाने पूरे तीन महीने हो चुके थे । अब क्या किया जा सकता था । राजराम की चेन्नेबाबी पर दात चिट्ठियाँ कर वे न जाने क्या-क्या बक गये । उसी कोष के बुर्जिबार आदेश में उन्होंने राजराम को मुकदमा चलाने की समझी देते हुए एक कड़ा पत्र लिखा और आश की की ठगित व्यवस्था करके कल्या की काज में देहात को बतल दिये । अभी तक लक्ष्मी का उन्होंने कुछ भी नहीं बताया था ।

[ छठ ]

ब्रजविहारी देहात पहुँचे । बहुत कोमिरी की पर इससे क्या पता न लग्य कि कल्या ब्याह से पहले ही से लापता है । परन्तु उन्हें इस पर रस्य भर विचार न हुआ । निराश होकर लौट आये । राजराम घर पर परत ही से मीसूर थे, आने ही उन्होंने अपनी निर्वोपना के अनेक प्रमाण भी दिये, पर कल्या के विषय में बही बात कही ।

एक दिन अकस्मात् संध्या समय गले पर की सो-तीन लकड़ियों के साथ कल्या आ पहुँची । जिस तरह अनेक कष्टों को सहती हुई वह उन्हें बाग में मिल गई थी, वह बातलाकर वे लौटने लगीं ता ब्रजविहारी ने उन्हें



अनेक भयबाह दिने ।

कहना गन्धमुख इन डेढ़ हो गाला में कहना की पापी हो गई थी । शरीर की एक-एक हड्डी निकल आती थी ।—ब्रह्मिहारी चमत् नेत्रों से पार के साथ ठोसे भीतर हो आये ।

लक्ष्मी ने मुना कहना आती पर अब उसे देखने का पता भी बाध होच न था ।

उसने आमी से यह भी नहीं पूछा कि उसे किन्ने बुलाया ? वह क्या करने आती है ? पर उस क्षणो ही स्नेहवर्षिता वास्तिका को परमात्मा ने काफी बुद्धि दे रखी थी । उसने न गमक कर भी जैसे लक्ष्मी के मन का भाव, ठणका रुटना आन्धी तरह समझ लिया । किसी पुरातन संस्कार ने जागृत होकर उसे लक्ष्मी के मन में उसे निमृत्त प्रेम के सरल रूप के दर्शन करा दिये ।

बरसों साथ रहकर भी ब्रह्मिहारी जिस लक्ष्मी के केवल बाध सौंदर्य पर मुग्ध हो सके थे, उसी के अन्तर्गर्भों को एक ही दृष्टि में अभोध कहना ने मन्त्री मूर्ति परल लिया ।

ब्रह्मिहारी पत्नी की सेवा-सुश्रूषा में बने रहने के कारण बच गये थे । वे अरामकुर्ची पर छुड़क कर सो गये । कहना बराबर पारपाई के पास बैठी रही ।

रात्रि के शेष भाग में जब लक्ष्मी ने आलस झोलकर देखा तो हृत्प्रांगी कहना उसकी पारपाई के पास निश्चय होकर बैठी थी । अब लक्ष्मी से किसी तरह न रहा गया । हाथ बढ़ाकर उसे अपनी गोद में लीच

सिद्ध । दोनों के हृदयों का विरसम्भित सखिल इस मीनमिलन में बहकर एक हो गया ।

उषा की उन्मत्त-प्रकाश रेखा में विरसम्भित स्नेह का वह संपूर्ण दृश्य देखकर प्रसन्नचित्त में अलसित पलकों को इच्छित्य बन्द कर दिया कि उन्हें और कुछ देखने की इच्छा नहीं रह गई थी । अलक कानों में पड़ना के मृदु कण्ठ की आवाज पड़ी—‘माथी ।

लक्ष्मी इस स्वर से जहा गई । उस क्षण कि कम-अ-मान्तर से वह इस स्नेह सिद्ध संधान की प्रतीक्षा कर ली थी ।

## भविष्यवाणी

अठारहवीं सदी के संपन्नकाल में फ्रांस के मार्सिल मगर में एक लकड़ी रहती थी। ऐसी मुहर बड़े गुलाब का फूल, ऐसी कोमल बड़े मृदाल की शाखा। उसका नाम—हा उसका नाम था जेसेफाइन।

वह एक अकसर भी लकड़ी थी। उसने शाना और कप्रीहा काढ़ना महीरा काम खोले थे। उसका कपट माने ही के सिने दत्ता था। उसकी सैगलिक उसके हुये देरमी बाग सुकस्यन के सिने ही बनी थी। और बासों से उस उवना ही काम था जितना था स्व से।

वह फर्गह छल की थी, जब एक दिन एक बूढ़ी स्त्री ने झाकर उसे देखा। बूढ़ी भविष्यकथन में पारंगत थी। उसने बतलाया—तेरा ब्याह दो बार होगा।

लकड़ी का सुँह लकड़ा से लाल हा म्मा, पर उसकी छाँसें कीदूरल से नाथ ठठी। आगे सुनने के लिए वह व्याद होकर बैठी।

बुढ़ी ने बताया—पहली बार इसी मगर के एक भव्य पुरुष से तेरा बियाह होगा पर वह तेरे साथ महो रह खेमा। वह तुझे छोड़कर चला आवगा, और अमानुषिक तरीके से उसकी मृत्यु होगी।

जोसेफाइन का बहुरा व्यापार से काप ठगा । स्त्री-मुलम समवेदना का माप उसके चार व्यवसायों से काफ मजकमे लगा, पर बुढ़ी इस ओर ध्यान न देकर कहती थी—उसके बाद तेरा बूझा व्याह होगा । यह संबंध एक रक्तमहो और गरिम मुक्त के साथ होगा । वह यूरोपीय लोगों के ही वंश का होगा । उसका कल लूज कलोग । वह अपनी अमर कीर्ति से संसार को भर देगा । सब तू एक बहुत बड़ी स्त्री हो जायगी । तेरा वंश साम्राज्यी से भी अधिक हांग । इस तरह संसार को अपने महान् अन्तुदय से नमस्कृत और स्तुतिभक्त करने के उपरान्त तेरे जीवन का बहुत अल्पम प्रारम्भ होगा और उसी अवस्था में तू इस लोक से प्रत्यान करेगी ।

बाड़ी दर के निव जानेफाइन निरुपल प्रतिमा की तरह बठी रह गई । वह कुछ भी सिवा न कर सकी कि उसे पसचता हुई है या दुःख । एक तरह का मानसिक मार उसकी अंतनबुद्धि के कर्ण पर आस्तुत बोझ लेकर आ बैठा । उसका जीवन उसी के नामने एक अद्भुत प्रपञ्च एमक पड़ा ।

## [ ४ ]

बहुत दिन नहीं गुजरे कि जोसेफाइन के माँ-बाप ने एक मुक्त के साथ उसका निवाह तय किया । मुक्त उसी मगर में रहता था । वह देखने में सचमुच मज्जा था । मरिच्य कपन का पहला अंश यही से पूरा हो जाता । उसके बाद बचारी जानेफाइन का यह भी मालूम होते हैर न लगी कि उसका अगला अंश भी अपनी अमिट ब्यापता का सार्थक करने

मविप्यवासी ]

वे स्निग्ध अमरसर हो रहा है ।

उसका पति उसे पेरिस ले गया । वहाँ होजावर उससे उनको अनेक कष्ट दिए । हर तरह से समाप्त और अन्त में यन्त्रा को एता के भिन्ने त्याग दिया । वह उस अवस्था का निराश्रय और अर्थहीन हो गया । उस समय पेरिस में कृष्ण असाधारण सुन्दरी गवतुवती का अवस्था रहना निरापद न था । उसका निष्ठुर स्वामी ने वह भी शोषण का वृत्त नहीं छोड़ा कि अकस्मी आसेफाइन जीवन के अकस्मिक प्रतापना और गतरो के बीच अपनी रक्षा किस प्रकार कर सकती ? इसके कुछ ही वर्ष बाद फ्रांस में राज्य-क्रांति का दूधपात हुआ और उसमें आसेफाइन के इस नर पिशाच पति को मार्कसद्वय हो गया ।

मृत्यु के बाद भी वह एक दुःख इस अवस्था के लिए झोका ही गया । उसका ऊपर राज्य-क्रांति का सम्वेद हुआ और वह कारागार में बन्द कर दी गई । उसके साथ वहाँ और भी कैना ही का पार किया था । वे कभी स्वतन्त्र और दुःखी हो रही थी । आसेफाइन ने उन्हें कैद बनाया । अपने सम्बन्ध में उसने उनसे कहा—बहिनो ! निश्वास करो मैं किसी तरह मर नहीं सकती । मैं फ्रांस की सम्राज्ञी बनूंगी ।

अतः इस मुक्त की असीक्तिक महत्वाकांक्षा पर मत ही मत आसर्जन कर रही थी ।

कारागार में भी मविप्य की सुन्दर कल्पना से उसका हृदय प्रफुल्लित रहता था । उसने बड़े से बड़े कष्टों को सहकर भी नहीं छोड़ा

नहीं सोचा । आखिर एक दिन वह मुक्त कर दी गई । वह त्रिष स्वाधोन जीवन की आशा से भ्रष्ट थी, वह अनन्त कष्ट, असंख्य असुविधाएँ और गरीबी के दुर्भिक्ष से कटनवाले निम्न स्तर उसके चानने का पट्टा, पर उन समाप्त पक्षधारा न भी उस विचित्र न कर पाय, वह असीम साहस और अत्यन्त हृदय के साथ उनका मुकाबला करती रही ।

• [ तले ]

पेरिस के एक छूटे से मकान में अनुपम सुन्दरी बालिका जोसेफ़इन वैकन के दिन बिता रही थी । उसके शरीर और उसके छात्र सामान में गरीबी और दुःख की छाप लगी हुई प्रत्यक्ष मासूम पड़ती थी, पर इस समय भी उसके अन्तःकरण में मविष्णु की एक उग्र प्रकाशरत्ना जगमग रही थी, जो बाहर से अदृश्य थी । उसी, कभी उसी अदृश्य के सहारे वह हृद्यांगी विषय अब तक साहस की मूर्ति बनकर जीवित थी ।

एक दिन उसके द्वार पर अटकटाकर एक पौकी सिपाही ने पुकारा । जोसेफ़इन ने आकर पूछा—क्या काम है ?

सिपाही—हमारे जनरल साहब न आपका स्नानाभिवादन के परंपर वह तत्पार मकी है । तलवार आपके स्वर्ण स्वाम्ने की है । आप इसे ले लीजिये ।

जोसेफ़इन ने तत्पार ले ली । जनरल की इस असाधारण अनुग्रह और स्नेहना पर उसका हृदय निश्चय हो गया । उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह स्वयं आकर इस युवा के सिंगे जनरल को अपना

महिल्याशी ]

देगी। उसके दुखी जीवन में फर्कवार के विवाह और प्रत्युपकार का ही क्या !

उस अनारल का नाम शाबद नैपालियन बोनापार्ट बताया गया था

[ चार ]

अनारल की इस वृथा ने जोसेफाइन के हृदय का कूटकृता से भर लिया था। वह उसकी विचारशीलता और रुढ़कृता पर फर्कवार देम के लिए उसके यहां का पहुंची।

अनारल इन औदर्य राजा का आग्रहिक के रूप में देखकर भावकता रह गया। उसकी सवा, उसका कामल कष्ट-स्वर, उसका रूप साक्ष्य उस बड़े ही मजुर और प्रिय मालूम हुए। वह उसकी हर एक बात पर इस कदर मुग्ध हो गया कि वह अक्सर उसके घर आने जाने लगा। कूटकृता ने पहले ही से प्रेम स्वर कर रक्ता था। उन राजों में शीघ्र ही प्रेम हो गया, और वा रान महीने भी नहीं बीतने पाय कि वे विवाह के पवित्र एण में आबद्ध हो गये।

जोसेफाइन का यह दूसरा विवाह एक श्यामवर्ण और साधारण आग्नी से हो गया, लेकिन यह विवाह डेम का वा, इच्छित यह कुछ थी।

पर कितने मालूम था कि विवाह कितनी बन्दी उसके इस दुख को छीन सकता है। दुर्भाग्य से उनका प्रथम मिलन केवल बारह रातों में समाप्त हो गया। विवाह के बाद ही नैपालियन का इटली में प्रवेश हुआ

का तंपालन करने के लिये जाना पड़ा । इसी क्षण से नैपोलियन का पता पारों पोर पैछा, लेकिन बराबर उसे अपनी प्रासप्यारी सुन्दरी तकली पत्नी की भाव व्यपित करती रही । जब आसपाइन से अलग रहना उसे असह्य हो पड़ा तो उसने उसे वहीं मुका येका । इसके बाद फिर नैपोलियन का नाम निरवविच्छल हो गया, और उसके साथ साथ आसपाइन की कर्ति पता-प भी सर्वत्र फहराने लगी ।

[ पांच ]

आगिर वह दिन भी अपने अनुपम आवाक का लेकर आया, जब शाही मिरजाया की पवित्र और आर्त्तामान ईबारों के भीतर फांस के समुद्र नैपोलियन बानापाई की बगल में सुनो के बल मुककर आसपाइन ने प्रायेता की ।

नैपोलियन के राज्यरोहस के साथ वह फांस की सम्राज्ञी उद्वोमित की गई, वह सचमुच सम्राज्ञी से भी अधिक गी, वह दुनिय के सबसे बड़े सम्राट की हृदयवती थी ।

अभी उस मविप्य-कथन का बरिष्ठ अंग समझूर बिह्वना के रूप में जाने को होय था । आसपाइन ने देखा, किस तरह नैपोलियन के अन्दर उसके प्रति बरे बरे उपेक्षा का भाव भर रहा है । रवावि कम भी उदय अपूर्व लौह स उसका दरबार आलीकपूर्ण हो जाता था, उसके आकरपस की बिगली समाय कामों को मुक कर बैठो थी ।

अन्त में उसने उस दृक दिक्—पैची उपेक्षा और उद्वोमिता



मविष्याणी ]

के साथ त्याग दिया जो एक ली के लिये सब से कठोर आघात है ।—एक बार फिर आसेफ़द्रन आगली रह गई ।

नेपोसिबन ने कुछ ही ठण कारण बतसाया । उसने कहा—मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । तुम्हारे लिये मेरे हृदय में बड़ी प्रेम-भावना है और सदा रहेगी लेकिन बिना शर्त मुझे आपसे लिये नहीं चाहिए इस समझ के मुकद के लिये, तुम्हें तलाक देनी पड़ रही है । उसकी रक्षा के लिये उत्तराधिकारी की जरूरत है और आसेफ़द्रन । तुम बही मुझे नहीं दे सकती ।—मैं बिना हूँ । मैं कुछ नहीं कर सकता ।

परिष्कृत ओसेफ़द्रन इसके बाद पांच साल तक और जीवित रही, लेकिन उसने कभी एक क्षण के लिये भी नेपोसिबन के विरुद्ध कुछ नहीं कहा ।

वह सदा उसकी मंगलकामना ही करती रही । उसका निष्क-सम्पन्न मुनने के लिये वह सदा उत्सुक रहती थी । अन्त समय तक उसकी प्रसन्नता में ही उसने अपने मुकद का खोसा था ।

उस दिन के मविष्याकर्म का पूरा करके वह बाग़दू की पराजय से बहोते ही अनन्त क्षम का बची गय । इसमार्गिनी सुदरी आसेफ़द्रन ।

## यात्रा

मैं बाहर से आकर कमरे में बठ गया । मेरी संभावना के प्रतिकूल मीटर से किबाड़ कोसकर उर्मिला मेरे पीछे सड़ी होकर ईसने लगी । मैंने चौंकर देखा, ता वह कहने लगी—बाह, दूर रहकर तो दूर रहने का बर्ताव किया था सकता है, पर मुह के सामने रहकर आँखें बुराने की पाल भी बल छकती है कही ?

मेरे सन-बदन में आग लग गई । क्या आज मुझे पय का मित्तारी बनाकर उर्मिला क पिता को संतोष नहीं हुआ, जो इस तरह मर्मे पूरी वाक्यवास्था का प्रयोग करने के लिये ठस मैम दिया है ।

वह मेरी ओर और बोका निसककर बाली—मालूम पड़ता है आज मैं अजनबी हो गई हूँ ? अगर नहीं, तो आठ दिन से पहा आकर भी पर न आने का क्या जबाब रखते हैं ?

किसी निराश हृदय पर यत् स्मृति का जो आघात होता है, वही ही एक तरह की जोर में हृदय पर लगी । मैंने बहुत धकत होकर जबाब दिया—यही मैं तो पूछ सकता हूँ । मैं धनिक भ्रमरों में पंख रहा था, पर आप ही ने अब तक आने का कद क्यों नहीं किया ?

अब जो बार वह मेरे पास ही पृष्ठी पर ैठ गई, और अचानक

को भिड़काती हुई कहने लगी—यह दोष भी मुझे नहीं दिया जा सकता । मैं तो आज अभी हत्याभय से लौट रही हूँ । तुमसे ही बेगने लगी हूँ । सब कहना, क्या भूलकर भी तुमने हम तरह मुझे बेकने हप्ता भी थी । तभी तो—

मैंने बेला तो नहीं पर कह सकता हूँ कि मेरे फटफटे हुए होठ शांत हो चुके थे । अपनी स्याम पैतृक जायदाद हारकर मैं सत्पाए हुए खंय को तरह झुल्ल और निराल होकर कचहरी से लौटा था । मैंने समझ लिया था कि मेरे बेमन का चितारा आज खस्त हो गया, और अब मुझे अपना दिनेच्छु समझनेवाला संसार में कोई हो भी पर अपने जन्मस्थान में तो कोई नहीं रह गया है ।

मैंने उर्मिला से कहा—मुझे सचमुच इन व्यावहारिक मसलों के कारण किसी का सम्बन्ध करने की पुरसत नहीं थी । आशा है, इसे समझ कर दोगी ।

उर्मिला—मैं इस बात की शिकायत ही अब करती हूँ ।

मैंने मौकर को आवाज देकर पानी खाने को कहा और बाघ खली हुई एक किताब के पन्ने उलटने लगा ।

उर्मिला पानी मैं सिने जाती हूँ कहकर लौट गई और एक मित्रास में लगी और छरवरी में कुछ मिट्टी लाकर मेरे बाघ खली हो गई और हँसते हुए बोली—मैं देखती हूँ बहुत हँसी बातें तो बदन गई हैं पर अभी बिकरवरी को उलट-पलट करना ही शुरू । हम व्यावहारिक पुस्तक-बस्तोवन की पूरी याचत से कई बार मेरे हाथ में गई हो मुझ है । धान

मैं उसी तरह देर तक रुकी नहीं रह सकती ।

मुझे कई बरस पहले की उर्मिला का स्मरण आ गया । उस समय मैं और वह सगे भाई बहन की तरह रहते थे । मैंने अपनी सख्त शील को नीचा कर लिया, पुस्तक बन्द करदी और उर्मिला से कहा—कोई दुश्मन तो किया नहीं है, फिर मला लगे रहने की सजा कैसे दे सकता हूँ ?

उर्मिला ने बिना कुछ कबाब लिये ठरसरी मेरे आगे रुक दी । मेरा शरीर आनन्दोन्मत्त भाव से सिहर उठा । वह मिठाई थी ऐसी अद्भुत-मधुर से दिया गया तिक्तकपाय भी कौन अमृत का छूट नहीं समझेगा । मेरे होठ मेरे अन्तरेक्षतास का क्षिपा न सक, मैंने स्नेह मृगमृग होकर उर्मिला से कहा—अभी, मैंने तो पानी के क्षिपे कहा था, और मला वह मिठाई किसने बताई है ?

उर्मिला ने हल्की मुस्मयान के साथ कहा—मिठाई किसीको किसनी अच्छी लगती है, वह बात इस घर में एक दिन का आया हुआ मेहमान भी अच्छी तरह जानता होगा, फिर मैंने गलती की हा, ऐसा बिस्वास नहीं होता । पर जो मैं कौन सी चीज नहीं जानती हूँ ? मेरे गुच्छ में अभी दा थर ऐसी आबिर्भाव पड़ी होगी किनसे चाहूँ तो सारे बच्चों की तलाशी ले सकती हूँ ।

मैंने हंसकर कहा—मिठाई न जानने का अपराध अगर स्तानेतराश हो तो मैं अभी उसे ठकाऊ आता हूँ पर उर्मिला अब मेरी मिठाई खाने की वह आर्त बिल्कुल ही छूट गई है । बाहर रहता हूँ । वहाँ मैं इस तरह आई बिनाता ते, न वह अपराध ही रहा है । जब सा अस्पृहातर मैं

बाबा ]

नमस्कार ही पसन्द करने लगता हूँ ।

उर्मिला—हाँ चाप और परिस्थिति से स्वभाव भी बदल सकता है ।

मैंने मिठाई खाई । जल पिया । उर्मिला ने साकर मुझे पीना दिया और कहा—इस हमारे यहाँ आना होगा । अगर कुलाबे की फिर बरसत हो तो बामी में यह बर्तिये । मैं खर नौ बजे प्रतीक्षा करूँगी ।

मैं—आरे वह क्या कहती हो ? यहाँ यहाँ सब एक ही सी है । और कल तो ---

उर्मिला—नहीं, अब बहुत देर हो गई है और किसी तरह के बहाने मुझे और उसका निर्वोध करने की मुझे फुरसत नहीं है । मैं इतना ही करे जाती हूँ कि कल सबेरे आना हो पड़ेगा ।

उर्मिला चली गई ।

[ अ ]

शाम हुई । पूर्विका का ठगाना देखा । मेरे हृदय-समुद्र में बाढ़ की लहरें उमड़ने लगीं । जगन्मा में सचमुच मुग्ध है, और उसकी निरखों में जल । मेरे जीवन के लाली और वैमिश्र आला-करण में किसी अनिर्वचनीय समुद्र की क्या हुई है ।

मेरे जीवन की सबसे निराश और दुःखमय चक्रियों में ऐसी सुन्दर सुखायुग्म की आगताई-आरम्भ हुआ जो वास्तव में किसी विरहकवि की अमर सेवनी की सुषुप्त चरुणा में ही रम्य है । पूर्विकों की सहयोगिता

लक्ष्मी ने मेरे रस्ते से छपनी नहीं ली थी, और मुझे जानेवाली गंभीर राशि के अनन्त अन्धकार की ओर डेल दिया था । यह से निर्वासन समाज से बहिष्कार मित्रों से उपेक्षा और दुश्मनों से उदासीनता—आह ! मेरे दो विहाई जीवन में इनके सिवा और यह ही क्या गन्ध था पर छाव उन मित्रों की कहुवाहट में ठर्मिला ने पोड़ी नी मिथी की डमियां छोड़कर अपूर्व मिठास पैदा करदी ।

प्रकल आंधी में हवा के रसीले फल मड़ जाने से वास्तविक दुःख माली का ही होता है हवा के चार दिन के मेहमान पक्षियों को नहीं । नीकर चाकर और खाली मित्र भी वही पक्षी हैं । मेरे पास अब कुछ नहीं रह गया है उन्हें अब कहीं अम्ल अम्ल आभय आभय चाहिये शायद इसलिए किनी को भी नींद नहीं थी । अब अपने अपने विस्तार पर करवटे बदल रहे थे । मैं सोच रहा था कि ठर्मिला के घर जाने का मुझे अधिकार अब कहाँ है । एक अकिम्बन की तरह आतिथ्य स्वीकार करूँगा । नहीं, यह नहीं हो सकता । अब वे जाग मेरे कान हैं । दृष्टिजीवन गौरव की वस्तु है पर अपमानित जीवन को कुबेर का लज्जना चाकर भी रहने की शक्ति मुझे नहीं है ।

रात को डेर से जाग था, पर सवेरे लक्ष्मी ही नींद जुल गई । कोई काम था ही नहीं, मैं बाहर रहने चला गया ।

सूख चुम कर लौट । रेल, रेल की पट्टी, किसानों के खेत सब पार करके महर के किनारे तक चला गया था । बहुत दिनों बाद मैं सब चीजें देखने को मित्रों को । कौन जाने फिर कभी उन लोगों से बातें हो

संभोगी । बड़े भले किसान हैं । वे अपने जीवन के समस्त रहस्य को धर्म के प्रकाश की तरह जोलकर रख देते हैं, इसलिये हम उन्हें माता, आदमी कहते हैं । वे सत्य और मूठ को बिना पक्षपात के तापते हैं, हम लोग उन्हें कुशलता से बदा बहा देते हैं । उनकी सरलता मूर्खता समझी जाती है और हमारी सुचचेष्टी चुरता के गले में सम्मता का मुलहला ठीक पका है । पर मेरा अर्थ अपनी गौरवभूमि से सदा के लिये नाश हो रहा है । जीवन की कठमकल में वहाँ रहकर उद्विग्नता करनी हामी वहाँ संसार के स्वार्थों का विकट हास हो रहा है ।

बच्चे ने पीछे से भी बजाया । मैं मुड़कर वृद्धों के रास्ते से जाने लगे पर वह खोचकर कि रास्ते पर तो किसी का अस्तित्व नहीं है । फिर से ही जाठ पा । अर्मिला मुझे पकड़ तो लेगी नहीं ।

बहुत वर्षों बाद मैं उधर से निकला । मकान जिलाकुला ही नये ठाठ का कम गया था । उन नये-नये दरवाजों पर मेरी मन्द पड़कर आपसी आपसी हीनता का अनुभव कर रही थी । ठीकसे दरवाजे में घामने की और मुह किन्ने हुए अर्मिला बाल लोने लगी थी । मेरी सारी बड़ता और मर्तीया की क्षम में अपर्ययी होने लगी । उसने मुझे अच्छी तरह देख लिया । मैंने उसके लयगत की पुकार का ईश्वर पकने के लिये पीठ को थोड़ा झुकित कर लिया, पर कोई आवाजपूर्ण प्रहार नहीं हुआ । और मैं पहले से भी बहुत धीरे धीरे दूर जाता गया । अपमान की बला उठ गई । मन में जान आई । मैं पर आ गया ।

नीकर को पुकार पुकार । उसने कहा—कोई भी तो नहीं

आया था ।

उसकी बातों पर मुझे विश्वास नहीं हुआ । एक दिन दो दिन तक प्रतीक्षा की पर कोई नहीं आया । धीरे धीरे अर्मिला के आने की बात स्वप्न की तरह भुलती हो गई ।

[ तीन ]

। आठ कई वर्ष बाद आशी गंगारानी को देखा । अचपट उठकर मैंने उसके पैर छू लिये । उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए 'बड़ी ठमर हो'—कहकर आशीर्वाद दिया ।

म माछूम क्यों मुझे अपराधी की भाँति उनके सामने कुछ भी कहते सुनते न बन सका ।

उन्होंने मेरी मानसिक विकृत अवस्था को अच्छी तरह समझ लिया । वे अपनी आँखों को एक ओर लूँकी पर हँसकर बोलीं—केजव ! तुझे जाने की तैयारी करनी है क्या ?

मैं—आशी तुम तो सब जानती ही हो । मन्ना मरु रहकर मैं क्या करूँगा ?

आशी—ठीक है पर इस बार अपनी आशी से भी कोई उम्माह लेने की आवश्यकता नहीं समझी गई ।

। मैं—इसका मुझे कोई है । कई बार मन में आया कि जाऊँ किन्तु—

। आशी—धीरे पास आने में तो कोई सकोच की बात नहीं थी ?

मैं—इस भूल को भी मानता हूँ ।



बाबी—अब मैं तुमसे कहने आई हूँ कि कहीं जाने का इराफा छोड़ दो ।

मैं—इस आशापातन का मैं कोई इपाय नहीं देखता ।

बाबी—उसके लिये तुम्हें चिन्ता नहीं करनी होगी । मैं सब कर लूंगी । तुम केवल अपने विस्तर कोलने के लिये मीकर से कह दो ।

मैं—मासूम पकता है, अभी आपकी परिस्थिति का ज्ञान नहीं है ।

बाबी—मैं जानती हूँ । बड़े बाबा ने आपसे बाद कर्म के अज्ञाना तुम्हारे विराघने के लिये कुछ नहीं छोड़ा है ।

मैं—हां और समाज में भी मेरे लिये जगह नहीं है ।

बाबी—अभी तुम बच्चे हो । जिन बातों में तुम निराशा का समुद्र देखते हो, वहाँ बहुत बाबी मेहनत से सुगम मार्ग बन सकता है ।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया । बाबी रंगबरेली घर मेरी बचपन से अपार भडा थी पर मैंने मन में निश्चय कर लिया कि अब मेरा किसी तरह बसा रहना नहीं हो सकता ।

बाबी ने फिर कहा—जिस दिन अपने पिता के साथ तुम वहाँ से गये थे, उस दिन अगर मैं तुम्हारे न जाने का इठ नहीं कर सकी थी । आज वैसा नहीं होगा । मैंने अमिता के द्वारा भेजा से कहला दिया है, अब मैं वहीं आकर रहूँगी । वैसे तो मेरा इराफा बर्तीमाय पूरी और रामेश्वर जाने का था लेकिन जब अपना बहुतका हुआ बच्चा आकर मिल गया है तो मेरे लिए यही ठीक है । क्या वह उचित है, कि मेरा बच्चा इतर ठहर भटकता फिर और मैं तीर्य करती रहूँ ? ऐसे तीर्य को मैं पुण्यकार्य नहीं समझती ।

जिस काम के करने से आत्मा को शक्ति मिल रही परम धर्म है । जिस दिन भुवनावन में मुझे समाचार मिला कि तुम यहाँ आ गये हो, उसी दिन मैं अर्मिन्ना को लेकर चली आई ।

मैं सोचने लगा ।—जिस तरह उस दिन मीठी मीठी बातें करके अर्मिन्ना मुझे बोझा देकर मेरा अपमान कर गई थी, कहीं उसी तरह आज उसकी बुद्धा मी तो बाल नहीं बिद्धा रही है । इस समय मैं वह झूठ ही गया कि मैं अपनी जाँची के बारे में साब रहा हूँ ।

जाँची को किसी ने बाहर से बुलाया और वे रुठकर चली गई ।

१

## [ चार ]

उसी दिन स जाँची आकर मेरे साथ रहने लगे । एक दिन सवेरे ही उन्होंने मुझ से कहा—तुम्हारी सालगिरह होगी क्या क्या करोगे ?

मैं—जीवन की एक साल और व्यर्थ चली गई उसका प्रायश्चित्त, ऐसे कहागी कर लिया जायगा । अच्छा तो रही हो कि उसी दिन चलकर हम विरचनाप के दर्शन करें । फिर वहीं से पूरी और रामेश्वर चलो ।

जाँची—अबसर नहीं आज्ञा है । आज्ञावला उस दिन मैं पहुँची नहीं ।

मैं—अपमान कर होगी और मुझे साथ न ले जाओगी ?

जाँची—अब मैं जाने लागूँगी तब शायद तुम्हारी वह हठ भी चला जायगा ।—अच्छा तो हम समय तो वह तय करना है कि क्या किया जायगा ?

मैं—बापू इस विषय में मुझसे कुछ पूछने की आग्रहकता नहीं ।

मेरी ता समझ ही में यह बात नहीं आई कि इतना बड़ा आत्मिक प्रफेसी बापू ने घर के भीतर बैठे बैठे किस तरह कर लिया ? गरीब बाबू ठे, लोगों के जाने जाने से, बेबिबाब बातों से दो तीन दिन के सिने घर रग भूमि का माझूम पड़ने लगा ।

इस समय राय-रस में उर्मिला के एक बार भी दर्शन न हुए । मैंने समझा बापू ने उसके कहा बुलावा नहीं मंजूर होगा । यह बात मुझे अज्ञात रूप से बराबर कटकती रही ।

कई दिनों बाद मैंने बापू से पूछा—क्यों बापू, मालूम पड़ता है उर्मिला के कहा किसी का मंजूर हो ही नहीं ।

यह बात मैंने कह तो दी, पर मुझे विरहच या बापू ने ऐसी जवाब देने की संभव नहीं है । उनके बहा से कुछ ही काई नहीं आया होगा ।

बापू ने कहा—मैंने जामबूझकर बुलावा नहीं मंजूर था ।

क्या मेरी संभावना के प्रतिकूल था, इसलिए मैंने पूछा—क्यों ?

बापू—जिसे अपने घर बुलाने के बे विरह में उसके घर बेसे आदोंगे ?—यही सोचकर नहीं बुलाया ।

मैं—वही, मैंने बोली पूछा था ।

बापू—मैं भेष की आदत समझती हूँ । उस दिन भी जब उर्मिला मुझे थोड़ा दे गई थी तो उन्होंने ही रोक दिया था ।

मैं—मैंने तो पहले ही उर्मिला को रोखा था । उसके लिए समानासमान की चर्चा ही क्यों है । आपने तो नहीं बुलाया वह अच्छा ही

किया । उन्होंने हमारे साथ सब व्यवहार भी ठा ठान्ठे ही बाण्डे किये हैं ।

[ पाँच ]

बाबी ने मुझे भोजन के लिये पुकारा । मैंने बाहर स्नान-भोजन किया । पर उस दिन बाबी से किसी तरह की कोई बातचीत नहीं हुई । शाम को मैं धुम कर सोया तो माधुम हुआ बाबी अर्मिला के घर गये हैं ।

मैंने पूछा—क्या कोई बुलाने आया था ?

हां कोई बुला तो गया है, पर कौन था इसका पता नहीं ।

मेरे मन में कभी-कभी तरह की कल्पनाएँ उठती रहीं पर मैं यह निश्चय न कर सका कि बाबी के वहाँ जाने का क्या कारण है ? अगर ठीकी सम्पत्ति में सुलझा होगा, पर क्यों ?

बाबी उस ही को आ गई थीं पर मुझे माधुम नहीं हुआ । दूसरे दिन उन्होंने बतलाया कि अर्मिला अस्वस्थ हो गई थी ।

मैं चुप रहा ।

एक दिन मैं बाबी के पास बैठा था । एकाएक वे बोली—माधुम पकटा है बिबि का निधान कुछ वैसा ही है ।

मैंने पूछा—क्या हुआ बाबी ?

बाबी—केशव । जब वह सोया था, तब भी अचानक मेरे ही पास रहता था । तेरी माँ ने एक तरह से मुझको मुझे चौप दिया था । यदि बापा की बदली न हो जाती तो वह बीब का अलगाव भी न होता । यही बात अर्मिला की है । वह भी सदा से मेरी ही गोद में बसी है । उसकी माँ

कैवल्य हुए विश्रामेवाली थी । मेरे संताप न होने पर भी तुम दोनों के कारण मेरी गेब कमी जाती नहीं रही । तुम दोनों की माताएँ एक बहुत बड़ी बात का मार मेरे ऊपर रखकर मर गईं । उनके रहते वह कुछ कुछ संभव थी थी, पर बीच में विस्तृत हो अचभव हो हो गई थी ।

उनकी इच्छा थी कि तुम दोनों का व्यवहार हो जाता थीर तुम सब मेरे ही पास रहते, पर किस परिवारों में सब से ही बैर विराट की जाई पड़ी हो, वहाँ ऐसा व्यवहार एक स्त्री कैसे कर सकती है ? इसलिये अवतक मैंने कभी प्रयत्न नहीं किया पर अब माहसस बड़ता है कि उनकी इच्छा ही ब्रह्मा का विचन थी, ता बड़ी प्रयत्नता होती है ।

मैं—पर चाची, ऐसा तो कभी हो नहीं सकता ।

चाची—हमारे दुग्द्वार चाहते से अवश्य नहीं हय्य पर समता है कि हाकर उन स्वर्गीय आत्माओं की मनाकामना पूरी हो कर रहे ।

मैं—ऐसी मनाकामना का न पूरा हमा ही सम्भवा है ।

चाची—देखा जायगा । वह तो विचरता के हाथ का बात है ।

मैं आगे कुछ न कहा, आकर अपने कमरे में पुस्तकें पढ़ने लगा ।

मेरे मन में चाची के साथ हुए विवाद की उमैकतुन रोप थी । अकस्मात् मेरे कलेजे में एक चीर हो आकर लगा । एक मौक्यनी मे बबहाए हुए स्वर में आकर चाची से कहा—बीबीजी उर्मिला की हासत सदाय है । दुन्दे कुलाय है ।

चाची—मैं जबकर क्या कर लूंगी ? ऐसी अमागी का मोठ ही आ

बाप तो मैं कुरा हूँगी ।—अच्छा, कह देना आऊंगी ।

उर्मिला क लिये बापों की यह मृत्युकामना मुझे अच्छी नहीं लगी, और वह भी अच्छा नहीं लगा कि वे क्यों बेरी कर रही हैं । मेरे मन में भाव, मैं खुद भी जाकर उसे बेका आऊ, पर बहुत ही बातें ऐक रही थी ।

आखिर उस दिन बापों नहीं गई । दूसरे दिन गई और थोड़ी देर में ही लौट आई । मैंने पूछा, कहा क्या हाल है ?

बापों—हाल क्या है, अच्छा ही है । मैंने जो कह दिया था कि ऐसी अयागिणियों का चुनाव मौत नहीं करती ।

मैं—अच्छा, वह अमागी क्यों है, बापों ?

बापों—माँ नहीं वह अमागी ही है । जहाँ सगाई लग रही थी, वहाँ भी अब न होगी । माया अभाव्य इन्हीं बातों में बेका आता है ।

मैं—सगाई क्यों न होगी ?

बापों ने कुछ उत्तर नहीं दिया । केवल मेरी ओर एक सकल्य अभि-निर्घृण भर कर दिया ।

मैंने फिर कहा—अच्छा कहीं न कहीं हा ही आसगा । इसे ही लड़की के दुर्भाग्य की निशानी समझ लेना ठीक नहीं है । उर्मिला तो—

बापों—वह मरेगी नहीं अभी उसके अस्त-वस्त में आसगा का अकुर मौजूद है । वह धीरे धीरे उसमें धातु-सधार कर रहा है ।

[ क ]

उर्मिला का अस्थि हा गई पर समाज के ध्यय, और सेमायी

की कामाक्षी ने उर्मिला के पिता का शेषांश कर दिया । बटमायी का रोग उनके शरीर में बड़ी निरक्षता से मिट गया ।

उन्होंने कष्ट-सहित संवत्सि देकर भी चाहा कि उर्मिला की समस्त वापस न हो पर एक भी न चली । जो बात उस दिन मैंने सुनी थी वही चर्चें तमाम लोगों में फैल रही थी । मन में एक बार आया कि मैं जाकर उठ निर्मूलत बात का लक्षण करके लोगों को शान्त कर दूँ पर उर्मिला के पिता की विजली करतूतों की याद आये ही वह मान निष्ठुर हो गया ।

चाची को उर्मिला में सुझाया । वे गई और अपने माई को देकर आई । उनके माझम हुआ कि उर्मिला शीघ्र ही ब्रमाप होनेवाली है । उनके पिता की वह अंतिम बीमारी है । उनके हृदय पर बड़ा भारी मानसिक आपात हुआ है । अतएव वे भीषित हैं वह केवल एक सकल्प-विकल्प की बदीलत । कोई बात बराबर उनके मन में आती है पर वे अभी तक उसे स्वीकार न कर सके हैं ।

इसके आगे चाची ने कुछ नहीं कहा । मैं भी वह न समझ सका कि वह क्या बात हो सकती है ।

दूसरे दिन एक मौक़र मायता हुआ आन्ध्र और कहने लग्य—  
बीबी बी, मैत्र को अपनी मैत्र ब्रिजिये बाबूजी सुझाते हैं । तुम्हें भी सुझाया है ।

चाची ने मुझे पूछा जाओगे ? मेरी समझ में न आया कि क्या उत्तर दूँ ।

फिर चाची ने कहा—वे ॥ चार बड़ी के मेहमान हैं । अन्त

समय भी क्यों और माय मय में रहते हो । जैसे भाइयों, राम्बर पुरानी बातों का पहरावाण करें । मरने के समय मृत्यु की निराहति परित्र हो जाती है ।

मैंने कहा—अच्छा, जाता हूँ ।

भाभी—हाँ, हाँ जहाँ मैं भी पीछे से जाती हूँ ।

वह जाकर मैंने देखा तर्मिता के पिता मृत्यु-शैया पर भरे हुए अस्तिम लोंके हो रहे हैं । पास ही दृष्टी पर उन्मुखित लता की तरह तर्मिता पकी विलस रही है । मुझे देखकर वह एक ओर सिसक कर बैठ गई पर राम्बर उस समय भी रा रही थी । रागी ने विस्मय भेजों से एक बार मुझे देखा । ओकर ने संघातक मुह में झुक दिया । तब तर्मिता के पिता ने बेत हाथ झपटे हाथ में लेकर कहा—अन्त समय भी मैं तुमसे एक क्षण चाहता हूँ ।

मैं—तुम्हारे, राम ।

रोनी—वही तो सोच रहा हूँ कि तुम दे सकोगे या नहीं ।

मैं—आपने देने लायक था मुझे रखना ही नहीं ।

रोनी की आँखा में आँसू आ गये । उसने कहा—वही तो मुझे नहीं मालूम था ।

मैं—दर करिये । देने लायक हाथ था मैं इन्कार न करूँ ।

रोनी—वो इत लड़की को सहारा देगा कि यह संसार में मुली रह सके ।

मैं—यह क्या दाग है ? यह तो जोर आश्रय है । यह मार मैं



कैसे हो सकूँगा ।—वह आशा तो मुझसे परमो मर्म है ।

रोनी—तुम्हारे सिवा इसका उद्धार और कौन कर सकता है ।  
तुम्हें इसका बेका पार लगाना पड़ेगा । बेटी उर्मिला, इधर तो आ ।

उर्मिला ने पल्लव के पास आकर मेरे पैरों पर सिर रखना चाहा,  
पर मैं हट गया । उसका सिर मेरे पैरों के बजाय पृथ्वी पर पड़ा ।

इधर पिता ने वो दिक्कियत होकर बस ताड़ ली ।

उर्मिला चीलकर पिता की सारा सं बिगड़ गई ।

मेरी समझ में न आता कि क्या कर । मैं बही देखने लग कि  
बापी क्या आती है ।—पर वे न आई । मिथुन बापी ।

मरा मीकर शोकता हुआ आया और कहा—बापी आ रही थी  
पर बीच ही में वह बुलंद समाचार सुनकर लौट गई हैं ।

शुब का सतिम उत्कार करके लौटने लग तो उर्मिला पिता की  
अस्तित्वित पिता की ओर वह कहती हुई चली कि अब मैं कहाँ जाऊँगी ?

मैंने उसे रोक कर कहा—उमि । पगली तो नहीं हो गई हो ।  
तुम्हारे तो अब एक भी जगह दो-दो कर हा गये हैं ।

उर्मिला मेरे मुँह की ओर बेकसी रही ।

मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींच लिया ।

×

×

×

अब मैं उर्मिला को लेकर पहुँचा तो बापी कैलाश में लगी थी ।  
मैंने पूछा—वह क्या है ?

बापू—मेरी यात्रा का उपयुक्त समय था मन्ना है ।

मैंने कहा—पर बापू, इतनी जल्दी नहीं ।

उर्मिला ने भी कहा—बापू, इतनी जल्दी नहीं ।

बापू ने उर्मिला की श्वात देखकर कहा—इतनी जल्दी जाता नहीं

बदल जाता, पगलो—मैं तेरी तुझा ही हूँ ।

उर्मिला लज्जाकर चुप हो रही ।

## मन की रानी

पड़ोस के घर में मारपीट के छाव ही थीकने और रोले की आवाज सुनकर रामसरन ने पत्नी से पूछा—सुनबना, पड़ोस कब से आवाज हो बघ है ?

सुनबना—आरे, आग ही तो आये है ।

रामसरन—और आते ही

सुनबना—आते ही क्या घर-घरखी में आगके लगे ही रहते हैं ।

रामसरन—तुम तो खुद कोतवाल से कम नहीं हो ।

सुनबना—मैं तो कोतवाल हूँ । न हाऊ तो पानीदारी दुम्पारी करी रह बाल ।

रामसरन—यह तो मैं जानता हूँ ।

सुनबना—न भावोगे तो कहाँ जाओगे ?

घर अब तक बल रही थी, बल्कि उग्रतर होती ब्य रही थी । सुनबना से नहीं रहा बख तो खुद पर चढ़कर उभर आया । अनेक छत कमलिन बहू की बेतनो से पूछा कर रही थी ।

[ दो ]

'आमकल बहुत सिर चढ़ रही था ।

कोतवाल बना दिया तब वो चढ़ गी थी ।'

'तुम्हें भी किसी सास के सुपुर्द करना होगा ।'

'कैसे नहीं था ! का साल तक तो जैसे उठाया जैसे ठटी जैसे

बिठाया जैसे बैठी ।

'अब ?'

'अब मैं आतवाला हूँ और तुम यामेदार । अब रको ।'

कभी भूलता हूँ ?

पर मर्यादा का ध्यान नहीं रका तो मुझे जानते हो ।'

'जानता हूँ, बेबी !

[ तीन ]

बकोस की कमसिम बहू को रामचरन से घर में पनाह दी ।  
कोतवाल मुनक्का की सारी टमक न जाने कहाँ चली गई । वह खरी  
बची रहती है । मुकी मुकी चलती है ।

कमसिम बहू का मित्राण आसमान पर है । रामचरन तब यामेदार  
या अब भी यामेदार ही है, पहले से अधिक सख्त कोतवाल के नीचे ।  
उसके ऊपर पाकन्ही है । वह मुनक्का से बात नहीं कर सक्ता । उसकी  
बात का नहीं खू मकता ।

बैठन के बग़ावत आँखों के हशारे से घर का शासन चलता है ।  
उसके इत्सर्गपन का ताहस कोई नहीं करता ।

[ चार ]

तुम्हें दूसरा घर सजासजा होया ।—बहु ने कहा ।

‘दूसरा घर ? रामभरन ने पूछा ।

‘हां, भाव ही ।’

‘किसके लिए ?

‘उस उसके लिए । बहु ने सुनवना की ओर संकेत कर दिया ।

‘उसके लिए इस घर में जगह नहीं है ।’

‘नहीं ।

‘हां, मेरे सुनवना मैं बहु के पास पकड़ लिए ।—‘मेरे ऊपर दया  
; रानी । मैं अब कहाँ जाऊंगी ? मेरा दुनिया में कौन है ?

‘तो मैं जाती हूँ । बहु झमझम काटी बाहर निकल गई ।

सुनवना—‘अरे नहीं अरे नहीं मन की रानी’ का आने की आकरत  
नहीं । मैं ही जाती हूँ । मैं ही जाऊंगी ।

सुनवना उसके पीछे पीछे निकल गई ।

साली घर में पानेदार आँखें फाँटे लका रह गया ।

## मातेश्वरी

उबरे लहलहाती हुई बाल मे मुह उठाया । उसमें एक कली  
लिली थी । शाम का भोका काया और उसकी महक को पुरा ले गया ।  
पूछे दिन वह अनमनी हांक घूस में पड़ी थी ।

रंगमहल में रहनेवाली बिलासिनी ने उसे देखा और फिर अपनी  
बसन्त भी बो । वह किमकर पंखे हट गई । कामनाएं मसल गई —  
प्रेम सजीव हो गया । महल से निवृत्तकर वह कुटी की छाया में  
रहने लगी ।

कौन,—बिलासिनी !

नहीं वही जग्गमाता !

[ दो ]

“उसकी सम्पत्ति कुबेर का राजागी थी, कुटी में रहकर राज-  
स्य पत किए होंगे ?” पणिक ने पूछा ।

“नहीं, वह अमागी थी । कठिन दुर्मिष में लुट गई—अगस्त्य  
कीड़े-मकड़ों की ठप्पर-ज्वाला में भस्म होगई”—पुत्राटी ने उत्तर दिया ।

माधेश्वरी ]

“दुर्भिक्ष में ।”

“हाँ रही-सही महंगारी में ।”

“अब ?”

“हमों को मरती और फस के लिए तरबरी होगी ।”

[ खीन ]

पुजारी ने पूछा—“बेल लिया ।”

“हाँ, पर यह जगह ख खेती है । कहीं पवित्र स्थान में नलकर बैठे ।”—पबिक ने कहा ।

पुजारी ने मन्दिर का द्वार खोल दिख । पबिक ने सहमकर आँसों बन्द कर लीं ।

“क्यों, बलाने नहीं ?”

“नरक में प्रवेश से मज नमता है । वह क्या मन्दिर है । पुजारी, पापल तो नहीं हो गये छ ।”

“मूढ़, क्या कहता है । देख, सामने ठगुरभी निराकरो हैं ।”

“तुम्हारी आँसों की कमजोरी पर मुझे तरस आता है । मैं तुम्हें यथाशक्ति उबर जाने से रोकूँगा ।”

“अममगा, मरम हो आकम ।”

पबिक ने आकाश की ओर देखकर आँसों को मूँद दिया और कहा—“आधो, अब तुम देखोगे ।”

## [ चार ]

मम्पाह के अ गारों में पथिक आगे-आगे या और पुजारी पीछे । सामने सड़क पर एक बालक होने से पीकित पड़ा था । बिल्लासिनी ने अपनी ओर में उसका लपपय शरीर रक स्थिर था । पुजारी ने कहा—  
“आगे चलो ।”

एक घर में सात मासी थे । दो लड़के छल लड़कियां, छी और पुस्य । पुस्य मर चुका था । छी-पुस और दो लड़कियां मरवासप्त,—रोप भूत-व्यास से बेचन । पुजारी का हृदय पसीन गह पर वे वे आहत । बिल्लासिनी वहाँ भी आ गई । पुजारी ने पथिक की आर देना । वह निर्विकार था ।

मु ह पुतासे ही सामने कई बिताए लपटे ले रही थी । एक युवक सवार की समस्त कपड़ा का हुवन से लगाकर बिलक रहा था । पुजारी की आंखें सन्न हो गई । उस युवक का सारा परिवार उस आँखों का गम्य था । पुजारी ने मोखा—उसका कोई नहीं है । क्योंकि वह अनमय था । बिल्लासिनी वहाँ भी आ गई । उसने युवक पर अ बल की दया करके कहा—“बचो रोते हा ।”

“कहा—गई मेरी मां ।”

“आमा, मेरी गौर मे ।”

“हा, पिता ।”

“बह मैं हू ।”

“प्यारी तात ।”



मातेश्वरी ]

“इधर देखो ।”

पुजारी वहीं अपना माथा पकड़कर बैठ गया । पण्डित ने  
सावधान कर कहा—“अरे, वह तो आपविश्व शमशान है ।

[ पांच ]

“कहाँ हो—पुजारी ?”

“दिव्य लोक में ।”

‘ वह क्या है ?’

“अस्मत्तन ज्योति ।”

“उधर बत्तों की बीया कौन बजा रहा है ?”

‘ मातेश्वरी ।’

उस कहना निताडिनी तो नहीं ?”

“अजी, जगदम्बिका के लिये, यह क्या कहते हो ।”

‘—और वह शारदा ?’

“ओह ! वही ठाकुरजी तो हैं ।”

[ छः ]

पुजारी मन्दिर से चलते-चलते रुक रुक और कहा—

“वहाँ कहाँ ?”

“कहीं ?”

“उस कुट्टी में वे न ।”

“और अब ?”

“यही तो—अब यहाँ कैसे आ गये ?”

“मन्दिर का कुटी में तो मैं नहीं रहता ।

‘तो ?

‘मैं रहता हूँ मेम और चौखट में—और तुम कहाँ रहते ?”

‘यही, यहाँ आप दरवाज़ा बने थे ।”

‘मैं, यहाँ जाने का अब आकर यहाँ नहीं ।

पुजारी ने भावाचरणों में मुका विषय और चमत्कारों को पोंछकर देखा, आदमी की अमृत मरी फिरों किया। रंगीन आदमी और मरणात्मक हृदय के कंकाल का साथ ही साथ भूमि रही थी । उसने मन्दिर से निकलकर राते हुए अन्त्येष्टि का गहले लगाकर सम्भला दी । पुजारी पवित्र और मन्दिर और-सागर हो गया ।

## ‘वह यदि मैं होती’

आँसु में दबा बलवाने अस्पृश्यात्त गया था । वहीं रागिनी के एक कमरे के सामने मेरे कमरे में एक बहुत खोप स्वर् में वशब्द पड़े— वह यदि मैं होती ; —फिर सब शांत हो गया । मासूर पड़ा, किसी ने खता कहनेवाले के ओठा पर हाथ रखकर आवाज का बन्द कर दिया, वा उसकी अन्तिम श्वास सहसा शून्य में विलीन हो गई ।

अस्पृश्यात्त से लौटने पर वह हल्के-धीमी आवाज एक हजार-सै लहू का बोझ बनकर मुझे बचाने लगी । सुलभम निश्चिन्त जीवन में एक अप्रत्याशित बिगड़ा का ठप्प भी को बड़ा बन्द कर मासूर पड़ा ।

जीवन की समान विकट और दुःखदायी परिस्थितियों से निकल चुका था । भिन्ना के व अहात्य कमी क बीत चुके थे । मग्न का सितारा अगम्य रहा था । समाज में मान प्रविष्ट्य खोलाफी में विश्व-शुद्धि का आसंक, पूरी तरह कम चुका था । मेरे अरिज में लोगों के स्निग्ध ‘सत्य शिव सुन्दर’ का सामग्र्यत्व स्थापित हो चुका था ।

गोध में अपनी नागाह आने जमींदारी थी । जन धाम्य से घर की शाना अलम्ब गुनी हो गई थी, तिस पर भी मैं था एम्प्रेन्स पास । अपने आसामियों के सिधे मैं गौरव की बन्धु था । पूर पूर सक गांधी में

मेरी खेपटा की बाक थी। वहाँ ऐसा पहा भिना भला या ही कौन बर्माहार ?

इन सब बातों के बसता मेरे कोमल और हृदय त्वभाव मे और भी मेरे हिये लोक-प्रियता का संभव कर सकता था। मैंने रिवाज के हिये कई सुविचार कर दी थी। परंतु कि सरकारी अफसर मेरे साम्प्रदायी होने का सबेह करने लगे थे। वे सब मेरी उपेक्षा करने लगे थे ; पर मैंने कभी उनसे माम पाने की उत्पत्ता नहीं की। इसीसे मैं अपने लोगों का बहुत प्यार था। जिस दिन मेरी पुरस्ती बन्दूक बन्द करली गई थी, उस दिन मैंने भी अपने आपको बहुत दुःख भग्नमुक्त समझ लिया था। मेरे ब्रह्मिणों ने तो एकमत होकर मुझे बन्दारों की थी और कहा था— आप इस सरकारी माम से दूर हो रहें ता अच्छा। मैं सबका इसना भिन्न था कि एक बार मेरे लून कर बालने पर भी किसी को कानों-कान बन्द न हावी।

पर मैं मेरी सुन्दरी ली थी, और भी बहकती हुई मैना-सी एक छोटी सुकुमार बालिका। गठ ३ मास से मेरी ली बूंदों बन्ने की न्य होने बाली थी। सभी बिरोधों ने इस बार एक मत होकर पुनः के पूर लक्षण निश्चित कर दिये थे। मरी भीमती तो बह होठे हुये भी इस समाचार से किसी फुलझड़ी की तरह हर्षोत्पुल्ल दिखाई पड़ती थी। मैं बालन्दातिरेक से भिन्न रहा था। ओह ! वैसा लोभाग्ग्राही था मैं !

पर मैं बाराह और मुक्त था। द्वार के बाहर भीति और स्नेह। जीवन सरल, बालन्दा और यथार्थ था। मैं कभी मूल्यर की किसी बेदमा-पूख जीवन की बस्त्रा नहीं कर सकता था पर क्या बहू, जबस

‘बह बहि में होती’ ]

मुझकी एक चुकी थी, जिनकी गहरा रेखा समय के झलझल से मिटने पर  
आमर्ष थी । अब मैं अपने पूर्ण बेग से उनके लिए परचासप के आँद  
बहाने जा रहा था कि आकस्मात् कमरे के द्वार खुलने से मेरी निद्रा भंग  
हो गई ।

मेरी भीमती ने भीतर आकर मुझे बताया कि आज शाम को  
उसकी मृत्यु अस्पताल में हो गई । लाग पूर्वमें किचकी ।—मेरी भी ने वो  
उसका नाम मुझे बताया था, पर मैं किच तरह बसक । जिसे मैंने हृदय से,  
मन से और विचार से निष्काश दिया था, जिसके सारे सामान्य को मैंने  
अपरिचीम दूरी में परित्यक्त कर दिया था । जिसे अस्पृश्य अन्त्य की मंति,  
विप्लव रानों के बीदासुओं की मंति, निष्पूरता से अरक्षणीय मान लिया था,  
आज उसका नाम कैस लू ।

किन्तु आज भी बरस बाद उसके मरने का समाचार सुनकर मैं  
हृदय उसके घर की आर पता था । अपने वहाँ किसी ने नहीं जाना कि  
मैं वहाँ जा रहा हूँ । जिसे स्मृति-अम्बिर से बहिष्कृत कर दिया था, उस घर की  
मन प्राचारा के भीतर पहुँचा तो वहाँ केवल हिलते हुए हड्डियों की पत्ता, न  
किसी आधमी का निशान था न जीवन का स्पर्श । उसके घर की हासत  
कक्षात शेष हृद की तरह शीर्ष हो गई थी । जिस घर में एक बार,  
परीक्षा पाग हो जाने के बाद, मैंने उसकी भोली सहस्रामिनी को आयाओ  
की कपहनी मुगमरीबिधा दिखाई थी वहाँ आज शमशान की शान्ति झा  
रही थी । मेरी आँकों से आँसुओं की गगन बह जाती । वहीं कड़े कड़े  
मैंने एक बार के सब शक्ति संचय बाँटी ।

एक समय या मेरे पास मोटरसाइकिल थी । उसी के फल से बलराम नियन्त्रित बेहोश गया था । उस समय मेरी उम्रों का सारा विकास द्विध-विध हो गया था और जब बाबू ने जाकर उसकी अंतिम प्रक्रिया की सुनता दे दी थी सब तो भयंकर सड़क का अनुमान लगाता कटित था । उस समय परिवार और प्रसिद्धा 'करी की सहायता से काम निकलनेवाला नहीं था । पर स्वयं बलराम ने उस समय मुझे बस जीवन दे दिया था । उन्होंने एक काम पर अपने अंतर्गत और मरणासन्न हाथों में डाक्टर की उपस्थिति में लिख दिया था— 'मैंने स्वयं आत्महत्या कर ली है । पिता माता और छोटी बहन व ऊपर अपनी पढ़ाई का काम बालकर उनके कष्टमय जीवन को और सुखमय बनाने से उसका न रहना ही अच्छा होगा ।"

उस मरीचनीय एन पत्र का लेते समय मेरी आत्मा बलराम से मत हुई जा रही थी । मैंने भी एक माहसी मुकद की तरह उससे प्रार्थना की थी कि वह मुझे कोई सजा का मार दे नाव । बड़े अनुनय-अनुग्रह के बाद उस महान आत्मा बलराम ने, अपनी छोटी-बहन सावित्री के जीवन की देख-रेख का उत्तरदायित्व इन निष्काम कष्टों पर रख दिया था । हाय ! मैं तो वह आह्वारपूर्ण बीगता । हाय, मानवीय प्रवृत्तिना ॥—पर उस समय मैं अपनी अक्षमता का विचार न कर सका था ।

शक्तिवा शक्ति और उग्रही मरणा में ने मेरी बातों का प्रभाव कर लिया था । उस समय तो मुझे भी यही काम पड़ता था कि संवेदना-मिश्रित भाव ही परम पवित्र वस्तु है । कष्ट के माध्यम निरुति के माध्य

## विवाहिता कुमारी

फूल मिजना जानता है और मुरझाना भी । श्यामिनी ईसना जानती थी, रोना नहीं । मुसकान ही उसके आँखों पर लेती थी । आँखें ने उसके कपोल का स्पर्श नहीं कर पाया था ।

बसन्त कबी का गृह्णार करता है आशा ने उसने मन को सुमिष्ट किया था । कौमुदी कुमरणी की शोभा निकारती है। सरल मोक्षेपन ने उसके हृदय को मन्त्रुल किया था ।

उसका शरीर कुम्भ की तरह नहीं हलकी बबली की तरह था । उसका मुक चन्द्र की तरह नहीं सुरमई संध्या की तरह था । उसका चेष्ट-विन्यास कुसुम-गुम्फित नहीं श्यामजाता की तरह था । उसकी संश्लिष्टों में कलियों का छोकुमाय और छौंहरा नहीं, कशीबे की पटुता थी । उसकी आँखों में कदाच का विकास नहीं थी सरल चितवन की स्निग्ध रमणीयता । उसका बंटा कोमल की तरह नहीं मयूरी की तरह था । उसका गण प्रेम-सगीत की तरह नहीं, प्रार्थना की तरह था । वह बहपवा और कफिल की तरह नहीं बर्म-शास्त्र की तरह थी । वह बेबी नहीं गामबी थी । उसका शरीर नहीं, मन सुन्दर था ।

उसने अपना हृदय अपने प्रेमी बसन्त को दे दिया था । उसी

हरह, जैसे माकली शता अपने फूलों का शर माकली को उतार बेती है ।  
उसने अपने मन के मन्दिर में बसन्त को मूर्ति चित्रित कर रखी थी ।  
वह उसकी आँसों का बन्दी था और उसके निराहो शीशु और सरस मोठेपन  
का दास ।

शरास्त्रिनी के माँ नहीं, विमाता भी न थी । था केवल एक पिता ।  
पिता के आंगन को उसके दूसरे बहन या भाई ने कभी अपनी हँसी से  
आलोकित नहीं किया था । वही ठक पर को अकेली दीव झिला थी ।  
नील और धम्म की छाया से आच्छादित और बगीच से घिरा हुआ उसके  
पिता का घर महर्षि कश्यप का छोटा धाम था । शरास्त्रिनी शकुन्तला  
थी । मृत-झौता उसने पाता रक्खा था । शरास्त्रिनी का उसने सीप-सोपकर  
बढ़ा रक्खा था । कभी उसके एक सखी भी थी । उसका नाम था यास्त्रिनी ।  
बड़ी हिलेपिली, बड़ी प्यारी और बड़ी स्नेहशीला । बचपन की उसकी वह सखी  
एक मजुर स्मृति छोड़कर अपने भाई के साथ बही पली गई थी । बरसों के  
बरदे में उस स्मृति-पट को मँझा कर दिया था । उन दिनों बसन्त ही उसके  
मनोरगत का मुखरु था ।

[ दो ]

उसका विवाह कहाँ हुआ था । भी सात की लकड़ी के सामने  
भरार शत की उम्र का लकड़ा कहाँ बँधता है ? तिस पर बसन्त मनुष्य  
की तरह लकीला, कुम्हिली की तरह संकोच शील, कपल की तरह मोझा  
और सरोज की तरह सुकुमार था । उसके स्नेह में मृदुलता थी, स्वभाव में



विवाहिता कुमारी ]

सादगी थी और व्यवहार में चीजन्य । उसके गुण शैवास्तिमी को माते थे ।  
उसके पिता का पसन्द थे । अतः विवाह न होने पर भी सम्मान हो गया था ।  
शैवास्त में तो उससे भी पहले बसन्त का अपना समझ लिया था ।

कैसी सुन्दर समझ थी और कैसी अनुपम चरखा । एक दिन  
शैवास्त के पुत्रे हुए फूलों की माला पहनकर बसन्त ने एक गाना गाया ।  
कैसा सुन्दर था वह गान । कैसी मधुर थी वह स्वर-बीजा । लेकिन उसका  
भाव अच्छा नहीं था, शैवास्त के कानों को कटकता था । उसमें महात्माकादा  
की शक्ति थी परन्तु भी कामना थी और उत्पत्ति का भाव ।

शैवास्त टकास हो गई । मुझी हुई सत्ता का पुष्प-गुच्छ उसके  
गुस्ताबी कपोलों का झरोकरा हुआ कब स झूल रहा था । उसे चेक कर  
उसने बखेर दिया । मृगछीना फूलों की हाँ एक पंखुरियाँ मुँह में लेकर उसे  
छाद करने आयीं या उसे भी उसने मना कर दिया । बसन्त वह भाव-  
परिवर्तन समझकर बोला—शैवास्त तुम्हारा वह दंग ठीक नहीं है । देखो  
माय्य की रेखाएँ । तुम्हें सम्राट् का झुन्ड चरण करना है ।

शैवास्त ने कटक कर कहा—तो बाझो, करो न ।

बसन्त—और तुम्हें मेरी रानी बनना है ।

शैवास्त—माय्य में है तो यहाँ भी सम्राट् बन जाओगे, न होगा मैं  
बड़ी पिता से कहकर तुम्हें एक सुन्दर मुकुट बनवा दूँगी । उसे पहनकर  
बड़े पहाडियों पर घूमना, हरियाली पर शासन करना । मैं ऐसी ही रानी  
बनना चाहती हूँ ।

दोनों झिझझिझाकर हँस पड़े । रात यही रह गई ।

## [ खीन ]

बसन्त को छोड़ा, बनने की धुआँ की । शीबाल के पिता महमूद न ।  
 शीबाल राबराती शान्ति, छोड़ । उनके गौरव का क्या ठिकाना ? आदमी के  
 मन के अतिमरकल के लिए विवाह का यह विषय भी छुड़ा है । मारी का  
 त्याग और पुरुष की कामना शान्ति ही निस्तीम है । एक की साधकता  
 पहले में, तो दूसरे की अन्तिम में ही है ।

एक दिन शीबाल के पिता ने अनेक असीरुपनों के साथ उसे,  
 बसन्त को विवाह कर दिया । शीबाल को खीन ने समझा—ठण्डा जाना  
 बहुत धाँके समय के लिये है, इसमें थोड़े समय के लिये जितने में कोई  
 बाधा दिखानेकरमन से मान्य नहीं हो सकती ।

पलते पलते बसन्त ने एकान्त में गलबाही देकर उससे कहा—  
 हम चले नहीं, विवाह से पहले हम दोनों मिल जायेंगे ।

शीबाल तो विवाह की कुछ आवश्यकता ही न समझती थी, पर इन  
 दिनों उसकी चर्चा इस ओर से चल रही थी कि उसे भी क्या हो गय जैसे  
 वह नियम सब बहुत दूर नहीं है । वह यही कही जाने के लिये तयार बैठी  
 है । बहुत संभव है, नदी में उस बार पड़ी हुई अमीरी पर पहुँचकर वह चल  
 ही किसी समय काकर द्वार खरबखाने लगे ।

इसमें थोड़े समय में वह जाकर कुछ कर पायेगा, जिससे हम  
 लोगों का जीवन सुखमय हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है । वह जाता जाय ।  
 मैं कभी उसके मार्ग की शीशार नहीं बनूँगी ।

मुहूर्त पुरुषपर वह जाने सगा तो शैवाल में हँसी-कुसी उसे बिदा दी । केवल विवाह होते समय आँसों के कामे आँस से पूजा की तरह भीग गये थे । हर्षोन्माह के छाव रोने का यह सामान बड़ा ही विचित्र था ।

[ चार ]

उसकी प्रतिष्ठा को लेकर कई पत्र आये, पर उसके दर्शन का मंगल-मुहूर्त कहीं माग में ही बाटक गया । उसके आने में इतनी देर लगी कि कस्ती का एक-एक अरमान हवा के झोंके साथ टक गया । शैवाल, प्रेम पुस्तिका शैवाल, की उम्र अपना रास्ता तय करती हुई आगे बढ़ने लगी ।

समाचार मिला, वह अगले मास आवेगा । उस महीने में तो वह अबरव ही चल देगा । अमुक दिशि के प्रातःकाल की प्रथम किरण के साथ उसके प्रयाग करने का मुहूर्त है । वह निर्दिष्ट समय पर अपने स्थान से प्रयाग कर चुका है । मार्ग में उसके स्वागत की बाध की बाध छोड़ रखी है । आकाश में इन्द्र-कुल की लहरोंवाले बादल के कण पहल लिये हैं । विशाखो ने यक्षिण पवन की साँको से अपने को घबघना कर रक्खा है । पहाड़ियों ने पूलों की छाँलें खोलकर उसके स्वागतार्थ अपूर्ण कन्दनबारें सजा रखी हैं । वह आज मही तो चल और कम नहीं परसों ललित शशि के साथ-साथ अबरव ही शैवाल के द्वार पर पहुँच आयगा ।

शैवाल में भी सुही और जमेली, गुलाब और मौलसिरी, बेला और मिठाई के फूलों की मालाएँ गूँथ-गूँथकर रेशमी पुरख-पद से टक रखी थी । इन्द्र के मुकामल रखों में कितने अरमान जकन कर रखे थे ।

हाथ । पर मंत्र कुछ पढ़ा रह गया । सुना गया कि वह धावर भी लौट गया । कोई बहुत आवश्यक काम था । इतना आवश्यक कि शिवके समक्ष शिवाम का मुख कुछ भी न था । शीवाक्ष रो पड़ी । अपने हृदय का दबा लिया । बेसी अपने धर्म्य का क्या करे ? किन्तु नहीं उनका जाना ही ठीक है जिससे उनके मन की आकांक्षा पूर्ण हो जाय । उन्हें मुकुट मिला जाय । राजकुम उनके ललाट पर सुशोभित हो । मंत्र भी वा ललाट तक सूना नहीं रहेगा ।

फिर सुनने में आया—महाराज ने उन्हें मोद ले लिया है । महाराज मृत्यु शय्या पर पड़े हैं । शीव ही अब वे महाराज के पद पर अभिषिक्त होंगे । शीवाल धम हो उठी वह साधने लगी—अब मैं लङ्कपन की पगाली नहीं हूँ जो उन्हें राजपाट झूठकर बहा जाने की सलाह दूँ । नहीं, अब वे सम्राट् हों क्योंकि मुझे भी वो सम्राज्ञी होना है ।

## [ पांच ]

पूरे उत्पीड़न माल के अंत नियम भी बसन्त को शीवाल के पास न ला सके । पर क्या एक क्षण का भी उसे निराशा हुई । सूर्य का, आकाश का, विष्णु का, इन्द्र का और मन्त्रों का ध्यान भी उसे एक पग आगे न बढ़ा सका । पर कोई भी उसके कोप का मानन न बना ।

आध्यात्मिक धर्म का पर्व था । सूर्य अपनी सुनहली किरणों को अपनी कद की बगली से अस्ताचल की ओर लीन रहे थे । शीवाल दीपक जलाकर मार्गरेखा की आरती करके ज्योंही ऊपर जाइ स्थोत्री उसे माधुम सुना कि उसके पर पर कोई अतिथि आया है ।

शेवाल चौक पड़ी—मेरे घर पर और अतिथि ! संसार की गलतियाँ विपत्तियों में भी जहाँ का अतिथि स्वीकार करने का कल नहीं किया वहाँ कौन आयेगा ! मुझे कौन जानता है यह संसार में ! क्या है लौकर कोई अतिथि होने का ज्ञाता नहीं ! पिता माता दोनों ही स्वर्ग पहुँच चुके हैं । राजमुकुट मस्तक पर धारण करके पूरे टप्पीस साल बाद क्या कोई आ सकता है !

शेवाल का हृदय धक्क ठड़ा । उसकी संवेदनशिराएँ बिजली से स्थात हो गई । अतिथि ! अतिथि !—करीब दूई वह मन्त्र-मुग्ध-सी अपने घर को छोड़ जली, पर वास्तव में उसे अपने शरीर का मान नहीं था ।

द्वार के सामने पंप्पा के अन्धकार में एक परछाईँ हिल रही थी । दूर पर लता-जूतों की छाया में, सपन बन्द-प्रवेश आलोकित हो रहा था । पृथ्वी पर जलती हुई शेवाल धीरे धीरे आकाश में उठने लगी । उसे प्रतीत होने लगा कि आत्म कण का आभय बुद्धि के आगमन से महोत्सवमय हो उठा है । उसके जालीस छालवाले बम्बक शरीर में मुख्य शक्तिका के मधुर हाव-भाव उरगित होने लगे । उसे प्रतीत होने लगा जैसे सम्मुख ही उसका बहकल-बसल जलते जलते करील के फंदों में उलझता जा रहा है ।

द्वार के समीप पहुँची तो पुरुष नहीं किसी स्त्री की छाया आसना मिला थी । शेवाल मनकी अचलता को मीन के आवरण में लपेटे उच्च मानवमूर्ति के सामने जा लड़ी हुई और उसे पहचानने का कल करने लगी । क्षान्ध हिली, साड़ी की सरसराहट और आभूषणों की मधुर भ्रमभार के साथ

एक रमणी उठकर लकी हा गई और उसने बढ़कर पुकारा—शबाल मेरी प्यारी शबाल ! सली, कहे तुम अच्छी तो हो !—वह बढ़कर शबाल के शरीर से लिपट गई ।

सहसा शीशाल के मुह से मी निकल गया—मेरी प्यारी मास्तिनी ! तुम अबतक कहीं थी !

कछे कहुँ बहन तुनियो की ऊँची-नीची सरंथो का उत्पान पतन देख रही थी । यश और आनन्द, आशाएँ और उनका पूर्ति में मी मनुष्य का संताप नहीं होता । वह सदा अग्राम्य का आशा में मटकता रहता है । अमास मास के लिए छुटपटाता है और भाव अपने उस अमयमय जीवन की ओर समुत्सव रहता है ।—हां, और तुम केशी रही !”

“मैं, मुझे तो तुम देख ही रही हो । भरे जीवन में पर्वत की अचलता, उपासक की साफ़ता और स्पर्शन की अशान्ति का एक अद्भुत मिश्रण सदा ही बना रहा है ।”

“वही तो देखती हूँ बहन तुम इसमें ही दिनों में सम्पत्तिर्म ली दिगने लगी हो । यह क्यों ?—और तुम्हारा वह बगीचा फटा है ? मैंने और तुमने जो आम के पेड़ लगाए थे वे कैसे हैं ?”

एक मूनी स्मृति शबाल के अन्तःप्रदेश का भयने लगी । वह बोली—सली व इस तो अब पहाड़ की चोटी से घाँट करने लग गई । उनके शैल्य की ओर तो सर मग में भी एक पहाड़ी हा गई है ।—और बहन, अपना वह हिरण का सपना, हाव ! येपारा कैसा शुभ्र था, कभी का मर चुका है । उसके कारण अब टन मचरो से मुँह हुए दूधों के पास

बाबे को जी मर्हो करता है ।

मासिनी ने कुछ बककर कहा—उसकी शक्लकुली आलें वो अभी तक मुझे याद हैं, और उसका वह फुरकना हाथ । कैसा सुन्दर था । एकदमक शवाल का उसी क ने शब्द बाद था गय 'कि तुम कैसी सम्बन्धिनी सी दिखती हो ?' उसके दिता पर ठेस लगी वह वो अवतक अपने को भाभी साम्राज्ञी ही समझ रही थी ।—लेकिन उसमें कुछ कहा नहीं ।

बानी खसिब बड़ी देर तक अपने गल जीवन की बातें करती रहीं ।

बाकी देर में तीन बार आ गइरकों के साथ वो बालक आये । खिरीप से कोमल और गुलाब से प्रफुल्ल । उन्हें आठे देखकर मासिनी ने कहा—बहन ! वे तुम्हारे ही बच्चे हैं । बड़े को स्वामी ने आने नहीं दिया है । वह अपने पिता को बहुत प्यारा है । फिर बच्चा से कहा—किम् । अपनी मौसी को प्रणाम करो । किम् । तुम भी प्रणाम करो ।

लड़कों ने मं की आवाज का पालन किया । शवाल में बारी बारी से दोनों को खूमकर आशीर्वाद दिया । उसकी सुनी गद आवाज मानु-सैह से पवित्र हुई ।

मासिनी ने बच्चों का मेज दिया, आप बाकी देर और बैठी रही ।

माता पिता की मृत्यु के दुल-दुल के साथ विवाह की बातें चल पड़ी । मासिनी ने शवाल से पूछा—बहन और तुम्हारा विवाह कहाँ हुआ है ? विवाहिक जीवन की कुछ बातें बताओ ।

शवाल ने कहा—विवाह हो गया है, पर वे बहुत दिनों से विदेश

जैसे गले हैं । जब आते हैं, ठन्ही की प्रतीक्षा में हैं ।

मालिनी—मैं तीस यात्रा को निकली हूँ तुम अपने स्वामी का पता मुझे देना । मैं अक्षय ही उन्हें घर भेजूंगी । बड़े बुद्ध को बात है, मैं तुम्हारे स्वामी से परिचित नहीं हूँ, पर तुम तो बहुत मरे स्वामी से भली भाँति परिचित हो । हम लोग अक्षय तुम्हारी चर्चा बलाबल बीते दिनों की पाह कर रहे हैं । उसने अपने स्वामी का परिचय दिया । उसके हृदयेश्वर का अपना स्वामी बतानेवाला उस बाबूसाहब की सेवाएँ भला फिर अपने स्वामी का क्या परिचय देती ?

उसके शरीर कापने लगा । पैर के नीचे की तृष्णी निचकन लगी । सिर पर आकाश झूमने लगा । सारा संसार अक्षय उस आकाश से गया । उस अक्षय में मालिनी के कान्तिमान मुकुटमाला का देखकर सेवाएँ की प्रतीत हुआ कि वह अक्षय ही साक्षात् और मैं सम्पत्तिनी—मैं, पप की निकारिणी हूँ ।

कुछ देर टहरकर मालिनी ने बिदा ली । उसके समय नहीं था । प्रातःकाल प्रयाण करना था और इधर सेवाएँ का हृदय अपना स्थान छोड़ रहा था । वह बुद्ध से बात हो रही थी । तथा वया में उसने अपनी सती का बिदा दी, कह दिया—स्वामी का पता और परिचय सब लिखकर भेज दूंगी ।

[ द ]

सुष्म, प्रतापिता, निरह विपुला, अपमानिता और विरहता



गीताला शम्भु आकाश की ओर दृष्टि लगाव अपने पूरे जीवन का प्रत्यक्ष कर करके देकती और मुग्धा होती रही । मुन्ना कोप और ग्लानि के विभिन्न भावों से उसका मन मर गया । वह सचने लगी—मेरे विश्वास में मुझे क्या विश्वास है । मुन्ना के उपन्यासों, कहानियों और इतिहासों—उन्हीं में तो अनेक बार भोली-भाली कथाओं के टूटे जाने के रत्नक वृक्षान्त मिले हैं । मेरी सरसटा हा में मेरे मुन्ना का दास कर लिया पर नहीं, उन्होंने ही मेरे साथ विश्वासघात किया है । अपराध का दण्ड तो उन्हें मिलना ही चाहिए किन्तु एक भिलारिणी के लिए एक सम्राट को दंड देने का कौन साहस करेगा ? मैं तो कुछ नहीं कर सकती । हा, एक पत्र लिखकर अच्छी तरह उन्हें फटकार सकती हूँ । वस, मैं एक कफ़-सा पत्र उन्हें लिखती हूँ ।

कहीं भूल से गलती हो गई है, और मैं उसका प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हो जाय ? कहीं मैं मेरे आस-पास होने के लिए, मुन्ना शम्भु करने के लिए, दौड़कर मेरे पास आ जाय तब मैं क्या करूँगी ? आ बात हो चुकी है, वह सौद नहीं सकती । मुन्ना जब ज्ञाप्य करना चाहिए या तब की वे पत्र-संघों का ही ज्ञानी गई । अब आत्मसाक्षात्कार की समर्पण के लिए उन्हें विनियमित करने की आवश्यकता ही क्या है ? पर जब आज उसका पत्र मिला गया है तो मैं उन्हें एक पत्र जरूर लिखूँगी । हाय ! पर लिखूँ क्या ? वह भी तो घण्टा में नहीं आता ।

उन्होंने मुझे बताया था बहुत है पर अब उस वर्षा का समय नहीं ! मैं उनका हृदय तो दुझाऊँगी नहीं । तो अब कौनसा अस्मान बाकी

वह गया है ! जिसका भिए कुछ लिखने देऊँ । मरने है, सब व्यर्थ है । हाँ, एक बात लिख सकती हूँ । वह मेरे जीवन की अन्तिम आदिताया है । मेरा समस्त जीवन एक स्वप्न का मूल ही था रहा है । संभव है मोक्ष के इस पुण्य प्रकाश में साथ ही स्वर्ग ही सजे ता म अपने का कृपा से समझूँगी । वर, इसी क्षण लिखूँगी ।

कुमारी हाकर मैं बिनकी बनी रही हूँ ठीक मैं अक्षय लिखूँगी कि मे ठीकी तरह मुझ पुत्रवती होने का मुझ दिना है । उनके तीन बच्चे हैं । एक मेरे पास आशाना । आ हा ! पैसा सुन्दर हागा वह बावक । उसकी मीठी घानना बाली में किठना खाव हागा । मैं एक काँटों । मुझे सब कुछ मिला आया ।

पत्र तो लिख गया । मेरी दशा से व ममहत अवरन हा जायग । उनक सेवा में दया भक्त उठेगी । इसके बाव बाव में अक्षय कुरी का अन्त है । इसकी वक्ति-वक्ति में वेदना का मूक रागिनी है और उनका दुख भी ठी पापर का नही । उसम शक्ति है अक्षय । वह अक्षय विष्णु आया, पानी पाना हा जायगा । मर मर्य के सितार का वह शक्ति किनु हागा । सेवेदना का आकाश में उगका उग्य हागा और दवा के वातावरण में पोषित होकर उसकी रमण भिन्न बिरथे मेरे शुद्ध प्राप अन्तःकरण में सुख विष्णु की । वह पत्र उनके हाथ में हागा और मेरा पुत्र मरी माद में । ता वने म हम मर दूँ ! अमी मरती हूँ वर वर मैं जीवन निशा के समस्त पहरा म एक मुन्दर अन्त नही देख सकती हूँ ! प्रणय की भिन्ना मांगकर मर पुन की भिन्ना मंगल का साहस नहीं

हो रहा है । अभी तक मैं उनकी साझाही बनने का स्वप्न ही तो देख रही थी । वह आमतौर और प्रत्यक्ष से कितना भला था ।

बस, मैं अपने प्रेम पत्र की इस अमिस्ताप को स्वप्न ही देख प्रत्यक्ष कर लूँ तो कितना सुन्दर हो । उसे मैंने उन्हें अपना सर्वस्व मानकर जीवन निशा बिठा दी । उन्हीं प्रकार वह भी मान लेती हूँ कि उन्होंने मेरी माधेना स्वीकार कर ली है । पुत्र को मेरे पास भेज दिया है । मैं उसे खिलाती हूँ । बुझाती हूँ । वह खिलाता है । खेता है । मुझे मं-मं कहता है । मेरा यह स्वप्न नहीं बहसना नहीं परम सत्य है । पत्र लिखते ही तमाम काम बन गये तो अब उसे क्यों भेजें ? भिक्षारिणी को बिना मांगे माती मिल गयी तो वह क्यों वापस करे ? आलीशान बर्तन की अवस्था में साधुसाधु की सुनहली रमाही से सिका हुआ मेरा यह प्रेम-पत्र लेटर बक्स में नहीं मेरे रत्न-वर्जित आभूषणों के साथ सुहाग की गुलाबी साड़ी में तब किया हुआ बड़ी हिफाजत से रक्ता रहे । क्योंकि इसमें मेरे सुकसम जीवन का सर्वोच्च घासोक स्मृति के रूप में बिकरा हुआ है । रोमांचकाल में जिन सुकुमार कुसुमों का जन्म किया था । उन्हीं का पूर्णरूप के रोमांचकाल में फिर बिरह के मलयगुली आगे में सुबह से शाम तक गूँब-गूँब-कर सुसंस्थित दिव्य हार लहरा दिया था और जिसे अब तक दरमदर में छिपाये हुए थी आन-आन बही तो निशरकर इस पर आपका है । फिर इस लेटर-बक्स में क्योंकर बाधूँ ? इसमें मेरा मुक्त है । मेरी स्मृति है । मेरा सबल है । यह मेरी आत्मा के सामने ही रहे तो अच्छा । इसी से इस एक लेटी हूँ । यह रहे मेरी सुहाग की साड़ी में, क्योंकि इधने मुझे रही-

सही सासना का साक्षात् करा दिया है ।

शैवाल म बड़े बदन से गाँठकर यह पत्र तार तार हो रही अपनी मुहाग की छाड़ी में रक्त किया । उस समय उसके आनन्द का टिकना नहीं था । सम्मुख ही अग्निर्वर्जनीय रूप से उसका बहोबर निद्रित हो रहा था । रात्रि के प्रथम ही प्रहर प्रतीत हो चुक थे । उसके घर की दीपशिखा धीरे धीरे प्रकलित हो रही थी । मुरुर बनान्त में राजमहिषी माहिनी देवी के प्रस्थान की तयारियाँ हो रही थीं । दो कोमल बालक उनके आश्रय से खेल रहे थे । शैवाल भी अपने कनका प्रदत्त पारिजात-कमल पुत्र का धीरे-धीरे, हँस-हँसकर, गिरक गिरककर घुम्न कर रही थी । उसका मुक्त चितना उत्त और दमर्पण था ।

## ढाक-मुंशी

मेरा भाग्य ठहरा है या सीना, वह सचा मेरे लिए एक ठलमरी  
पहेला रहा है । मैं कभी उसे मुग्धकर समझ न सका । कभी एक  
दृश के लिए भी ठसकी भीमोना न कर पाया । तुलसी की छाँव छोड़कर, अपने  
विषय में, स्वयं चित्त से, कभी मैं निरिच्छत विचार बारा में नहाकर मन  
की हरारत को मिटा न पाया ।

शैशव आकाश में उड़ा था, सुनहले स्थानों में बसा था । बचपनी  
अमावस के अंधकार में बड़ी हुई, विषया की कन्या शून्य निराशा में उठने  
स्वास्थ्य की माँसे ली । अंतर व्यवधान । विषयता की लोला देखिए ।  
सब कुछ देकर कुछ भी न दिया और कुछ भी न देकर इतना बहुत सामने  
बाल दिया है—मैं साक्षात् में जिस मर नहीं पाता हूँ । दृष्टि के अन्त से  
जिस बहार नहीं पाता हूँ ।

मैं मया ढाक मुंशी हूँ । यह माकरो मुझे अनायास मिल गयी  
है, इसीसे मैं यह भी तब नहीं कर पाता हूँ कि वह मेरे शोभाय का चिन्ह  
है, या अभाग्य का फल । मैं मन्त्रमुक्त उनके लिए तैयार न था । वह आप  
ही आकर गले पड़ गयी । फल छोड़ते भी नहीं समझता हूँ । सब पूछो  
तो छोड़ने की इच्छा भी नहीं होती ।

मैंने गरीब के घर जमा लेकर रईम की लकड़ी का पाश्चात्य किया था, उस ज़माने में जब शादी एक सौदा थी । मैं ग्यारह बरस का था, मेरी स्त्री जपनी सात बरस की । उस वक्त मुझे इनका ही मालूम था कि वह जोड़ी मिलाने के लिये मेरे ससुर ने मेरे बाप से मुझ मातृश्रीन को लौटा लिया था । अमीर को गरीबी पर जो पुष्पा और नफ़रत होती है, ठीकी से मैंने बार-बार अपनी जम्म तिलि की आपर्पणा की थी । मैं मोहर पर झूमता था । घर पर तीन-तीन माछर लगे थे । एक आँगन को पड़ाता था, एक हिसाब और एक मातृ-भाषा । लेकिन स्वप्न की वह सुनहली रात बहुत छोटे दिन रही । आनकल करते करते मेरे ससुर मेरे किए कुछ भी न कर सके । न जाने कौनसा संशय या संस्कार उन्हें रोकता रहा । लेकिन उनकी वह अभिलाषा अक्षय्य थी कि जपनी और मेरे लिये उनका उत्तराधिकार किसी को न मिले । उनकी अभिलाषा उन्हीं के साथ चली गयी । मैं बाप हीन भिक्षारी ( मेरे बाप मर चुके थे ) के माग्य के साथ सुकुमारी सुकुमारी बदौती का माग्य भी बिछारना के रूप में गुप्त गया । हम दोनों अनाथ और अनमिद थे । बकाबक ससुर चल बसे । बाँझ दस्त नहीं बनाया, कोई लिखा-पढ़ी नहीं की, किसी से कुछ कहा भी नहीं । हम दोनों धते रह गये । बदौती के पापा ने हम दोनों का रोने भी न दिया ।

स्वाध अनाथ होता ही है, वह हृदयहीन भी होता है । उसे अनाथों और दुलियों की विरक्त की अनुमति होती ही नहीं । जपनी को पापा ने घर पर रखा लिया, और मुझे बाहर जाकर अपना कमाने की छलाह दी । अर्जुन संघति के उत्तराधिकारी को भी कभी-कभी उदरपेयण

आक-सु खी ]

के लिए लौबिकोपार्जन की जरूरत पड़ जाती है । परिस्थितियाँ तब कुछ  
बढ़ होने की समझा लगती हैं ।

मेरी उम्र के आदमी सिवा स्काल्डिंग के और किसी उपभोग में  
शास्त्र बहुत कम खाते हैं, पर हमारे समुद्र के सहोदर की दृष्टि में मुझे  
पर पर बिनाकर बिलाना और मेरे लिए पढ़ाई में कुछ कर्ष करना दोनों  
ही फ़ायदा है । जिसकी संपत्ति पर सबका मरस्य पोषण होता था, उसी  
के लिए रोमियों का योग था ।

न-जाने क्यों अबतक मैं जाणा को बिलकुल निरखर समझता था ।  
पर आज देखता हूँ उन्हें मणिष्य की लीपि का अच्छी तरह ज्ञान था ।  
वे बिनाता की हर एक बात को अच्छी तरह समझते थे । उन्हें मालूम  
हो गया था कि मेरा अतीत और मणिष्य दोनों एक तरह के थे । अभाव  
की रात में बिकली की चमक की तरह, एक क्षण्वाधी आलोक ऐसा  
मेरे जीवन में कहीं से आ गयी थी ; पर उसका अदृष्ट हो जाना ही निश्चित  
था । क्योंकि वह मेरे माय का फल नहीं, बचती के माय का फल थी  
पर मेरे दुर्भाग्य का प्रकट आकर्षण उसे भी भिटा देने में समर्थ हो गया ।  
आ बकार, केवल आ बकार रोप रह गया ।

[ दो ]

कानपुर के एक आदित्य से मेरे समुद्र की बहुत रस-बस थी ।  
मेरे माय को बदलने में उसकी इच्छा तो नायमात्र को ही थी, विशेष प्रयत्न  
वा मेरे जाणा का । इस बास्ते का लवके आगे उस बेचारी के निष्कर्षक

गाम को लेते की जल्दत ही क्या ?

हां, तो यिवा ज्यंती के और सब लोगों की इच्छा चाचा की बात का समर्थन मात्र थी । मेरे चाचा के एक भी लड़का या लड़की नहीं थी, और ज्यंती मेरी बालिका पत्नी, को जेलने के लिए एक साथी की जरूरत थी । वह बही मेरे प्रस्थान से दुखी थी । मैं उस समय उसकी मनो-बिधा ठीक तरह नहीं समझ सका । यदि समझता, तो शायद मैं कानपुर पहुंचने के लिए उठना ठसुक न होता । मेरे चाचा ने मेरे मन में कानपुर का वैसा सुन्दर चित्र खींच कर दिया था । मैं तो उस समय इसी धुन में था कि जब कानपुर बेगू । बाकिर मैं घर से बल पका था चलने को विवश हो गया । उस समय मेरी बगल-बागल की स्ठकर एक कोने में जा बैठी थी । मैं उसके पास गया—अपने हृदय के सारस को बसेरकर कहा—मैं जाऊँ !

बगल-बागल भी नहीं ।

मैंने फिर कहा—तुम्हारे शिमे कानपुर से क्या लाऊँ ?

उसने एक और को मुह पर लिखा ।

मैंने छप्रेम स्निग्ध स्वर से पूछा—गुडिचें ? मिर्चाने ? मोल्लो ज्यंती,

क्या लाऊँ ? छोड़, तुम वा बोलती ही नहीं ?

कठिन, नीरव निश्चल अज्ञान के नीचे अनंत सुख छिपा रहता है । मौन भी वैसी ही एक मंदार की अज्ञान है । उस जरा छेड़ने से अन्दर की अल-राशि तुमुलारव के साथ निकल पड़ती है । ज्यंती रो पड़ी । उसकी परल कोमल हसी भिन गाँतों पर हल्का नृत्य किया करती थी,



बाक सु शी ]

हे मीमा गये ।

मैं अभी बचवा था, पर मेरा हृदय काफी बरफ था । वह मतौमाओं की गर्त समझता था । वय का बहुत कुछ सम्भव अनुभव के ही साथ है । मैं भी रो पड़ा । क्या ? पर मैं नहीं जानता । पर मेरा हृदय जानता है ।

हम दोनों देर तक धुये । दोनों की छाँसों कपड़ों में छिपी थीं । कन्पाक अर्पती ने थ थल हृदय लिया । छाँसों को अजीब तरह से मुग्धकर, देढ़ी-मेढ़ी नजर से ताककर कहा—जाओ न, जाते क्यों नहीं ?

छाँसों का यह संवादन, मुकुटि का यह मिलाप उसके गुस्से का मदरात था । मैंने कहा—मैं तो न जाऊंगा न, कहीं नहीं ?

उसने मिसकुल मने ढंग से ठड़ककर पूछा—एचमुच ? उसके धालों की एक धुनहली सट छिड़ककर उसके सजस बड़े बड़े नेत्रों पर झा गयी थी ।

उसी समय जाना ने पुकारा—थल रे थल मवेश कब देर-बार कर रहा है ।

उसने बालों की सट को अपने बलि हाथ से सिर के पीछे लिपककर मेरे चेहरे की तरफ देखा । उसकी मूक दृष्टि में अनेक प्रश्न थे ।

मैं चौंककर अवाच हो गया । हवा के झंझोरे में धीमे धीमे भी तो लिपमिला जाता है ।

अर्पती मेरे सफर को समझ गयी । 'जाओ तुम जाओ कहकर वह अपना मुँह छिपाकर अन्धी अन्धी नहा से चली गयी ।

मेरे हृदय की बड़ी ठेस लगी । शेष में मैंने सोचा—कानपुर न जाऊँ । क्यों ? वहीं जाना तो मेरे जीवन की सबसे बड़ी छायेंछटा है । ओह, वह कैसा सुन्दर शहर होगा ! कितना भीखन और कितना आनन्द ! वहाँ क्या है ? अथ के सैल, पढ़ने-लिखने के जगन, चाचा चाची की लास पीपी आँखें । बदली हूँ मूलाँ है ; पगली है अपने जीवन के साथ मेरे जीवन का आनन्द भी मर कर देना चाहती है । आलाक छोड़ो ।

## [ तीस ]

कानपुर आकर वहाँ की दशा को समझा । शहरों की तरह भड़क और उनका आनन्द गरिबों के लिये नहीं, अमीरों के लिये है । अगर कोई मेरी बात पर विचार करमवाला मिले तो मैं कहूँगा मर । जल जलने की तैयारी करो तो आच्छा है पर शहर का नाम न लो । वहाँ की ऊँची-ऊँची इमारतें दीवों से कम नहीं होती । वे गण्डियों को बहिष्कृत ही ला लेती हैं । अमीरों की समता के आगे उनका सिर नत हो जाता है । वे ही मुट्ट के पत्थरों की तरह उनके तपस ललाटे पर रोमा पाते हैं ।

अब समझता हूँ पर की बाध्य अवस्था में भी शहर के आनन्द से अधिक मुक्त रहता है । हाथ, प्यारी बदली ! उस समय क्या मैं यह सब समझ पा ।

मैं दूरे तीस बरस कानपुर रहा, केवल रोमियो और मित्रिमियो पर । जयंती पर अपने लिए कुछ बन तो इच्छा न कर सका पर अनुभव

बहुत-सा बरकर लिया ।

इस बीच मैं एक बार भी मैं पर नहीं पहुँच सका । बड़ी हल्का भी । मन ही-मन मुला जाता था । बसक हो जाता था । ज़री ज़रती की बिना-समय की कबूत-कोमल मूर्ति आमुझों से मुला-मुलाकर डबल-डबल होती जा रही थी । दिन में काम के मार से मार-मस्त रहता और रात्रि को स्मृतियों के अगिरल पतझड़ से आहत होकर चुपचाप अपने अस्तित्व को बिलीन कर देता था । कामपुर और शाहजहाँपुर में अन्तर ही कितना है ? पर मेरे लिए बहुत था । पर पहुँचने का कोई साधन मुझे प्राप्त नहीं था । अपनी किसी भी पर मेरा अधिकार नहीं था । मेरी वनबसाह, वो हास ही मैं कल्लो बतायी जाती थी, मेरे चमुर के मार के नाम जमा होती थी । सब पूछो तो मुझे कुछ भी अपने अधिकारों का पता नहीं था । जवती के पिता ने मुझे बरकर लिया था, न कि उनके मार ने । इतनी मोटी बात भी उस समय मेरी बुद्धि में नहीं आती थी ।

पर जाने की बड़ी उत्कंठा थी, बड़ी लासला । मैंने कई बार पत्र लिखे । बार-बार बाबा को बताया कि मैं अब काफी बपय पैदा कर चुका हूँ । मैं थक गया हूँ । मैं मर रहा हूँ । अब यहां रहने की निशुन हल्का नहीं है । आप मुझे तुरन्त मुला लीजिए ।

बाबा ने बहुत बेर बाब आगकर उत्तर दिया—बसकओ नहीं, काम किये जाओ । पर पर आकर क्या करेंगे ? काम नहीं करेंगे तो लाओगे क्या ? यहाँ क्या रहता है ?

मैंने और भी एक पत्र लिखा—आप मेरे जाने की बिम्बा मत

कीजिए । मुझे कुला लीजिए । मैं यहाँ एक चूण भी अब नहीं ढ़ सकता ।  
आप न कुलायेंगे तो मैं स्वयं चला आऊँगा ।

दुरन्त उत्तर आया—आपदा मैं आ रहा हूँ । वहीं आकर ठीक  
करूँगा ।

मेरे प्राण निकल गये । जानता था क्या होगा । वहीं हुआ ।  
बाबा ठही शाम को आ करके । शाफर बिट्टी के साथ ही-साथ चले ये ।  
आकर मुझे कहीं ठीकी आवाज से व्यथित करते हुए कहा—क्या तुम को  
शर्म नहीं लगती है । यह आराम ही माया में लिखा होता, तो एक  
मिस्त्रमों के यहाँ काम लेते । अब तुम ऐसे नाजुकमिआम हो गये हो ।

मैं क्या कहता । चुप रह गया । आँखों के आँसू भी मसमीत  
हो गये । छात खरिद चुकी पत्थी की तरह कांपने लगा ।

रात हुई । मैं आकर अपने बिलारे पर लेट गया । बड़ी देर का  
यथा हुआ प्रवाह एकदम पाकर बड़े बेग से बह निकला । मैं खोच रहा  
था—शाम । मैं गरीबी भी अपनी हक़्का से बरप नहीं कर सकता । मैं अब  
बाबा से कुछ चाहता हूँ । बे लें, सब ले लें, पर मुझे और मेरी प्यारी बचती  
को तो तत्काल में कुछ लेकर रहने दें । इसमें उनका क्या आता-जाता है ।

बाबा दूर पड़े हुए शायद मेरे मन को समझने का कन  
कर रहे थे । बड़े कोमल और आकर्षित करनेवाले अँठ से बोलें—महेरा,  
बेरा । तुम्हें येते बातें कहूँ तो लगी होगी । दया बहुत ही होती है ।

कितनी दिनों बाद बाबा मिले थे । इससे पहले तो शहर कभी

कोई आश नहीं था । बरसों से घर के बाहर पड़े हुये मुफ्त विद्योगी का मन एकएक पुनक्ति हो उठा । कुछ घंटे पहले जाया का मेरे प्रति क्या व्यवहार था, वह मैं उस समय याद न रख सका । अभी एक बार नेत्रव्य और दुःख से रो चुका था, अब हफ और आनन्दितरक से रो पड़ा । हिचकिंच बंध गयी, सांस फूलने लगी ।

कहुरे बसा के बाह मिथी की बनी-सी बेतें हुए जाया ने कहा—मैं तो तुम्हारे मते की कहता हूँ । कुछ दिन वहाँ और रह जागे, तो आदमी हो जाओगे । अगर जानवर की तरह ही जीवन बिताया जायेंगे, तो मुझे कोई आपसि नहीं ।

मैंने अनेक आशाओं से आशान्वित होकर प्रायना के से स्वर में कहा—अच्छा तो मैं खौद आऊगा ; पर एक बार आप मुझे बर सेते जैसे । बर जाने की मेरी बड़ी इच्छा है ।

सोचा था, इस छोटी-सी प्रार्थना को जाया स्वीकार कर लेंगे ; पर उन्होंने नहीं किया । बर सेते तो क्या सुपाई हो जाती, वह आज तक मेरी समझ में नहीं आया । उन्होंने बहुत बेतरे तरीके से कहा—अच्छा, इस बार तो मैं खीच पर नहीं आ रहा हूँ । अब की बार आऊंगा, तो अवश्य ही तुम्हें से चलेगा । मैं जरूरी ही आऊंगा । तब तक तुम और रहो ।

मैं चुप रह गया । तीन बरस के बाद बहुत शिलने बर तो उनके इशारे हुए थे ; दूसरी बार अपने आप कितनी जरूरी आ जायेंगे मैं इसी बात का अनुमान लगाने लगा ।

मुह मुई । बाबा बाजार से बहुत-सी चाड़ियां, छतिया और गहने लोह कर ले चले । मुझसे कहा—देखा, इस दफे ठीक से रहना फिर गड़बड़ी मत करना ।

मेरी आँखें रंग-बिरंगी चाड़ियां के पुलकते पर पक रही थीं । बाबा ने न-बाने क्या समझकर कहा वे सब खर्चती के लिए ले जा रहा हूँ । उसने बहुत बिर की थी ।

मेरी आँखें आँसुओं से आयासित हो आयीं । बाबा चले गये । मैं मन मसोसकर रह गया । जवरी, बैकल खर्चती की बाद मर सा रह गई थी ।

आँसुओं से पलकों को धात्र करके मैं चिठिठ होने पर बाबा की छे वाली हुई चाड़ियों में से कमी लाल, कमी आसमानी और कमी बसती चाड़ी में अपनी प्यारी खर्चती को अपने सामने प्रत्यक्ष करके देखने लगा । मेरी बस्वना-वृद्धि बहुत बढ़ गई थी । चाड़ी का ठहरा हुआ अन्त, मेरी नास्तिका प्रिय का तीव्र मुकुटि दिशास और ठहरा भ्रमुर निमल शाय मेरी आँखों के सामने नाचते रहते थे । न-बाने क्यों, मैं उन दिनों जाणति और स्वप्न दोनों में सिधे अपने घर के ही दृश्य देखा करता था ।

## [ पार ]

क्रिस्ता समय बीत गया, बाबा नहीं आये । खर्चती के मुनु उबाद को लेकर उनकी एक चिट्ठी एक दिन आ पहुँची । मैं आकाश की ऊँचाई से पाताल की गहराई में घोंपि मुह गिर पड़ा । मेरा भी किसी

घर के मिष्टुर हाथों ने अच्छी तरह मय बाँटा ।

आज मैंने समझा, शायद इसीलिए था कि मुझे नहीं हो गये थे । अब कुत्ता रह है । पर अब मैं बाहर करूँगा क्या ? शायद उससे ऐसा भी न आता होगा । मुझे रोने के लिए कुत्ता रहे है । मेरे हाँसुओं से अपनी दाँती को खींचकर करना चाहते हैं । मैं क्यों भाऊँ ? शायद ऐसा ही है, तो एकदम में रोऊँगा । ऐसी जगह रोऊँगा, जहाँ से मेरी सिस्का का पता उन्हीं न लगे । मेरी छी से मुझे एकबार मिलने तक न दिया । अब उसकी दाह में मिलते हुए आँसू देखने के लिए मुझे कुत्ताते हैं । न न मैं कभी न भाऊँगा ।

तीन दिन मैंने कुछ खाया नहीं, पिया नहीं । एक करकट लगातार रोता पड़ा रहा । सारी आशाएँ मर गयी थीं । जीवन के तमाम आकर्षण वफा हो गये । उसी समय मैंने सुना—कोई बाहर मेरी उल्लास कर रहा है । की मैं बोला—कह दूँ, अब परलाफ मैं ही मेंद होगी । फिर मत नहीं माना, नीचे उतर गया । सड़क पर एक मोलमानस हाथ में पहाड़ी लकड़ी लिए चिताग्रस्त-ते घूम रहे थे । सड़क पर कोई नहीं था । मुझे देखकर पूछा—येटे, वहाँ कोई मरेयफन्न रहता है ?

ओफ ! म-आने कितने बरस बाद अपना पूरा नाम सुन पड़ा । मैं तो अकित रह गया । मेरे बसुरजी मुझे इसी नाम से पुकारते थे । उनकी आदत थी । मुझे अधिक से अधिक सम्मान देना । उनका प्य था । शायद वे जानते थे कि उनके बाद मैं किस किस चीज के लिए तरस जाऊँगा । उस उस चीज से वे मुझे अपनी जीवन-काल में अच्छी तरह

परितुम कर गये थे । मेरे मन की कोई साव आशुम मरी झूठी थी ।

मैंने बहुत सारी तरह से झिझककर बचाने दिया—जी, मैं ही मरेगा हूँ । मुझे अपना पूरा नाम लेने की हिम्मत न हुई । मरी हालत भी नहीं थी कि पूरा नाम लेकर मैं उनकी चारला को आश्चर्यचकित करता । फिर भी वे कुछ बच । फिर मुझसे पूछा—तुम कहाँ रहते हो ? किसके लकने हो ?

मैंने सब बता दिया । पर शाबर इसके कुछ विशेष उन्हें पता न लगा । उन्होंने मुझसे पूछा—तुम्हारा क्या हो गया है क्या ?

मेरी छात्रे सजल हो गयी । कुछ बचाव देते न बन सका ।

उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारे समुर का नाम क्या है ?

मैंने किसी तरह बता दिया । उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारी बी का नाम क्या बचती है ?

मैंने इनके चेहरे की आर देखकर कहा—है नहीं, बा ।

मुझसे रहा नहीं गया । मैं बेतहाशा च पड़ा । उन्होंने मेरा हाथ बकड़ा और कहा—क्या, एते क्या है ? आओ, मेरे साथ बसा । मैं तुम्हारी बी का हो जाया हूँ ।

मैं पिल्ला बसा—है, क्या कहत है बाप ।

उन्होंने कुछ कहा नहीं । मुझे धीमे कमशाखा में ल गया । ठयमे रास्ता में मैं किसी बार भर-भरकर भी गया, यह नहीं बतला सकता । मरी मरी हुई पत्नी की आँखें हाँसी हलका मुझे जरा भी विश्वास नहीं होता था । फिर भी मैं उस बूढ़ पुरुष के साथ बसा का रहा था ।



घर के निपटूर हाथों में अच्छी तरह मर जाता ।

आज मैंने समझा, बापव इसीलिए बापा मुझे नहीं ले गये थे ।  
अब मुला रहे हैं । पर अब मैं बापव कक गा क्या ? हाबए उससे रोना  
मी न जाता होया । मुझे रोने के लिए मुला रहे हैं । मेरे आंखुओं से  
अपनी छाती का रीतक करना चाहते हैं । मैं कबों जाऊँ । अगर रोना  
ही है, तो एकांत में रूकोया । ऐसी बगइ रोटींग, कहां से मेरी सिरक का  
पता उन्हें न करो । मेरी बी से मुझे एकबार मिस्रने तक न दिय । अब  
उसकी याद में मिरते हुए बाबू, देखने के लिए मुझे मुलाते हैं । न न,  
मैं कभी न जाऊँगा ।

ठीक दिन मैंने कुछ खाया नहीं, पिया नहीं । एक करबड़ लगातर  
रोता पड़ा रहा । घाटी आशाएं मर गयी थीं । जीवन के तमाम  
आकर्षण बर्झन हो गये । उसी समय मैंने सुना—कोई बाहर मेरी ठगार  
कर रहा है । बी में सोया—कहू, अब बरजोक में ही मेंड होगी । फिर  
मत नहीं माता जीबे उतर गया । सबक पर एक मलेमानस हान में  
पहाड़ी कककी लिए पितामस्त-से ब्रुम रहे थे । सबक पर कोई नहीं था ।  
मुझे बेककर पूछा—बेटे, यहां कोई मदेयकन्न रहता है ।

ओफ ! न-जाने कितने करस बाए अचना पूरा नाम सुन पड़ा ।  
मैं तो चकित रह गया । मेरे सगुरजी मुझे इसी नाम से पुकारते थे ।  
उनकी आवाज थी । मुझे अचिक से अचिक सम्मान देमा ही उनका ध्येय  
था । शब्द के जलसे थे कि उनके बाद मैं किंच किंच जीव के लिए तरस  
जाऊँगा । उस उस जीव से थे मुझे अपने जीवन-काल में अच्छी तरह

परितुष्ट कर गये थे । मेरे मन की कोई राख अतुष्ट नहीं हुई थी ।

मैंने बहुत बुरी तरह से झिझककर बर्बाद दिया—जी, मैं ही मंदरा हूँ । मुझे अपना पूरा नाम बोलने की हिम्मत न हुई । मेरी हासत भी नहीं थी कि पूरा नाम लेकर मैं उनकी चरखा को आश्चर्यचकित करता । फिर भी वे कुछ बक ! फिर मुझसे पूछा—तुम कहाँ रहते हो ? किसके सङ्गके हो ?

मैंने सब बता दिया । पर शायद इससे कुछ विशेष उन्हें पता न लगा । उन्होंने मुझसे पूछा—तुम्हारा स्नाह का नाम है क्या ?

मेरी जाली से घम्मा हो गयी । कुछ बर्बाद बेत न बन सका ।

उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारे ससुर का नाम क्या है ?

मैंने किसी तरह बता दिया । उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारी स्त्री का नाम क्या बनती है ?

मैंने इनके चेहरे की ओर देखकर कहा—हैं नहीं, या ।

मुझसे रहा नहीं गया । मैं बेतहाशा रो बका । उन्होंने मरग हाव पकड़ा और कहा—क्यों, रोते क्या हैं ? आओ, मेरे साथ चलो । मैं तुम्हारी स्त्री का हो जाया हूँ ।

मैं चिल्ला पड़ा—हैं, क्या कहते हैं आप ।

उन्होंने कुछ कहा नहीं । मुझे सीधे कमरास्ता में ला गया । उसने रस्ते में मैं किसकी बात भर-भरकर भी गया, बह नहीं बैठता सकता । मेरी मरी हुई बच्ची की आम्मी हाजी इसका मुझे पता भी दिखाना नहीं होता था । फिर भी मैं उस बूढ़ पुरुष के साथ चला जा रहा था ।

बर्मेन्गाला में पहुँचते ही, असमय में ही बरा-बीसों हुई एक मुन्गी आकर मेरे मुँहसे शरीर से लिपट गयी । मैं डर गया । शरीर एक बार कांप गया । जपती, बर्मेन्गी क्या कभी बैसी थी ? सचमुच मैं तो किसी तरह उसे पहचान न सका । हाय ! मैं तो जब तक वही समझे हुए था कि मेरी बर्मेन्गी बची ही बनी होगी । उसकी मृत्यु पर मैंने बितने भी आत्मा मिटाये थे, वे सब उसी मोली-माली बालिका-पत्नी के लिए थे । लेकिन अब आपको से बितना बल-बर्बाद हुआ, वह जीवनित परमत्तु अस्मि पञ्चरात्र रोप अपनी लक्ष्मी-पत्नी बर्मेन्गी के लिए था । होता भी क्या न, जबकि उसका ठकुराई का जीवन उस कस्बेयुक्त मृत्यु से कहीं मजबूत और सुन्दर-दुरुस्त था ।

हाय ! जब तक मुझे माहूम न था कि मैं स्वयं भी बहुत कुछ बदल गया हूँ । अपनी बर्मेन्गी के आत्माओं के रूप में अब मुझे अपनी बर्मा का ज्ञान हुआ, तो मैं बख्तर खम्बर रह गया । मुझे उस बर्मा में भी जपती ने पहचानने में भूल नहीं गयी, वह बात उसके अनुकूल ही थी ।

[ पाठ ]

मुझे माहूम नहीं कि मेरे समुद्र के लोहोदर को लिखतान इसे हुए भी दोस्त की लुप्ता इतनी प्रवृत्ति क्यों थी ? मेरा दुर्भाग्य इसका कारण हो सकता है पर बेचारी मोली माली अछहाय बाला ने क्या किया था । उसे बिकन कम से बिकन जाने की क्या आवश्यकता थी ? यदि घर में जानै

की कमी थी तो उसकी जगह लेनेवाले एक आदमी का ने जानसे ही थे । मुझ लखर देते । हा स्थायीत्वता ! तू नीति धर्म का झूठा मासु-संवाद दा दे सकी, पर उसकी रक्षा का एक शब्द भी मुझने न भेजा गया ।

मैं और जयंती उस अपरिचित महापुरुष के प्रति कुतूहल का मास भी प्रदर्शित न कर सके, पर हमारा रोम-राम उनका कृपा के मार से मुक रहा था । उन्होंने मुझसे और जयंती से कहा—तुम मुकहमा जवाबदे, मैं तुम लोगों को कचै दूंगा । मैं भी उनकी बातों से दायर सहमत था । मुकहमा जवाबदे नहीं, लेकिन लख सप्तम के सामने जयंती के सहित उपस्थित होकर आभा के धुलित आभार को प्रकाशित करूँ । लेकिन जमा की देवी जयंती ने कहा—नहीं, का उपवि इतने धनकों की बड़ है, उसकी मुझे जरा भी इच्छा नहीं । वह मोहिगो मास पापा के लिए ही खोद था । मैं जब उस घर की तरफ कदम न दूगी । गरीबी का विरोध प्लूट है, जिसकी तरफ किसी की सोचुप इति नहीं पड़ती । मैं उसी में परितुष्ट हो जाना चाहती हूँ ।

मैंने जयंती का हृदय से लगाकर अपनी जीवन-नीका अपार सवार-सवार में छोड़ दी । कोई आभय नहीं, कोई साहाय्य नहीं ; बस, एकदम निरीह और निरवश्व ।

[ कः ]

भास्य कोई वा दुर्गन्ध ! हृदय तां उसी मास ही समझ बैठा था । यद्यपि भीम विहीनी थी, आभा हुआ अजमा हाव लगा था । मैंने

धर्मशास्त्रा में पढ़ते ही, असमय में ही अठ-बीस हुई एक मुश्ती  
आकर मेरे मुख पर गिर पड़ी। मैं बर मर । शरीर एक बार  
काँप गया । अर्पटी, अर्पटी क्या कभी ऐसी थी ? सचमुच मैं तो किसी  
तरह उसे पहचान न सका । हाँ ! मैं तो अब तक नहीं समझे हुए था  
कि मेरी अर्पटी ऐसी ही बनी होगी । उसकी मृत्यु पर मैंने बितने भी  
आँसू गिराये थे, वे सब उसी मोली-माँसी बालिका-पत्नी के लिए थे ।  
लेकिन अब आँसुओं से बितना जल-बर्षा हुआ, वह भीमिष्ठ परम अस्मि  
पञ्चदश-शेष अपनी तरकी-पत्नी अर्पटी के लिए था । होता भी क्यों न,  
अबकि उसका तरसाई का जीवन उस कल्पित मृत्यु से कहीं मयबह और  
कुशल-कल्याण था ।

हाँ ! अब तक मुझे मालूम न था कि मैं स्वयं भी बहुत कुछ  
बदल गया हूँ । अपनी अर्पटी के आँसुओं के रूप में अब मुझे अपनी  
बरा का ज्ञान हुआ, तो मैं बसमर लाल रह गया । मुझे उस बरा में  
भी अर्पटी ने पहचानने में भूल नहीं की, वह बात उसके अनुकूल  
ही थी ।

[ बाब ]

मुझे मालूम नहीं कि मेरे ससुर के ससुरदर को निस्संताप हाने हुए  
भी दीक्षित की दुष्का इतनी प्रकट क्यों थी ? मेरा दुर्म्यग्न रहना कारण हो  
सकता है पर बेचारी मोली माँसी असहाय बालिका ने क्या किया था ? उसे  
विजन-वन में छोड़ आने की क्या आवश्यकता थी ? यदि धर में जानै

को कनो की लां उसकी लहर लेनेवाले एक आदमी को वे जानते ही थे ।  
मुझे खबर देते । हा स्वाभाविकता ! तू भीकिले व्यक्ति का भूटा मुख-संवाद  
ता दे सकी ; पर उसकी रक्षा का एक शब्द भी तुम्हारे न मेरा क्या ।

मैं और जयंती उस अपरिचित महापुरुष के प्रति कृतज्ञता का  
भाव भी प्रदर्शित न कर सके, पर इगाछ राग-राम उसका कृपा के भर से  
मुक रहा था । उन्होंने मुझसे और जयंती से कहा—तुम मुकदमा बजाओ,  
मैं तुम लोगों को खर्च दूँगा । मैं भी उसकी बातों से घरात-सहमत था ।  
मुकदमा बजाकर नहीं, मेरे मित्र स्वयं समाज के सामने जयंती के प्रति  
अपरिचित होकर बाबा के सुनिश्चित आश्वासन को प्रदर्शित करूँ । लेकिन  
जमा की देवी जयंती ने कहा—नहीं, जो अपरिचित हमसे आसनों की आक है,  
उसकी मुझे क्या भी इच्छा नहीं । वह अहिंसा मार्ग स्वयं के लिए ही खोज  
हा । मैं जब उस पर की तरफ कदम न दूँगी । यही भी वह निरर्थक पूछ  
है जिसकी तरफ किसी को अनुरोध नहीं बही पकती । मैं उसी में परिचय  
से जाना चाहती हूँ ।

मैंने जयंती को इरादा से लगाकर अपनी जीवन-भीका अपार  
खलार-खलार में डोका दी । कोई आशय नहीं, कोई आशय नहीं बस,  
एकदम निरीख और निरालम्ब ।

[ क ]

माया कहीं का दुर्भाग्य ! इरादा तो उस माया ही समझ बैठ  
था । गरी हुई चीज मिली थी, ओसा हुआ जमाना हाथ लगा था । मैंने

बड़ी अचिरवा से जयंती को और जयंती ने बड़ी उत्सुकता से मुझे अपने पास खींच लिया था । हम दोनों ने एक दूसरे को पाकर फिर किसी विशेष वस्तु की आवश्यकता नहीं समझी । इसी से जयंती के उद्गारक महोदय को बार-बार कन्हाद बेकर मैंने बिदा कर दिया । उनके बार-बार अनुरोध करने पर भी मैंने उनसे और सहायता न ली । हम दोनों तो बैठे ही उनके अपार श्रुत्य से मर-मरत हो रहे थे ।

उनकी ट्रेन छूट जाने के बाद शीघ्र ही मुझे मालूम हुआ कि मैंने ठीक नहीं किया । कानपुर-जैसे शहर में कन-कन-हीन स्त्री-पुरुषों का अस्तित्व सुपक्षिप्त नहीं रहता । हम दोनों को उसी समय एक आश्रम को हाथों से ठेसकर दूसरे की तसारा में बसना पड़ा—पैदल ही । क्योंकि टिकट के लिए पैसे न थे ।

गंग के किनारे एक गाँव में हम दोनों ने आश्रम लिया । धीरे धीरे मेरा कुछ ऐसा अनुमान हो गया है कि अमी पृथ्वी पर परोपकार और स्वार्थ का समान कम से कम चल रहा है । कहीं एक की जय होती है तो दूसरे की पराजय । अपने घर से निर्वासित होकर हमें दूसरे के वहाँ आश्रम मिला । गाँव के जमींदार ने हमें रहने को मंजूर करवा दिया । दूध-फूँसी उस मंजूर की को हम दोनों ने बड़े परिश्रम से ठीक किया । उसकी फूस की छद्मों पर कोहरे और लोकी की बेतों चढ़ाई । चापा की भाग में शायद एक मूठ और एक मूठ के लिए पागल था । पर हम दोनों इस नवीन संसार में नवीन प्रहस्ती का आनोदन कर रहे थे । कुछ मुँह मिला, पर प्यार बिना से अधिक नहीं । जयंती बीमार पड़ गयी । उसका शरीर सराबन रहने

साथ । दिर मर आसवाणी-सी, उदास-सी वह म-माने क्यों पड़ी रहने लगी । मजबूरी करके चार पैसे लाना भी कठिन हो गया । एक दिन जाता तो दूसरे दिन नहीं । बहिष्कार के ऊपर विपत्ति का यह बोझ बज्र-महार के घाट हुआ । बड़ी धाव से कुम्हरी हुई एहस्वी के अजर-यंजर टीले पड़ गये ।

बपती की दशा देखकर जी नहीं होता था कि उसे कुछ काम करने दिया जाय, पर वह म मानती थी । अनाना की बगइचिया हुआ आस से जाता तो मित्रकृती, पूरहा फूटने बैठ जाता तो प्लीका सुसकुराहट से मना करने की चेष्टा करती । अब धावता हूँ, मरतीय एहस्वी का हास मी कितना सुलभ होता है ।

धीरे-धीरे विपत्ति बढ़ गयी । बमबारी के कारण उसे सब कुछ छोड़ देना पड़ा । अब तो वह धृष्टी पर पड़े-पड़े, अ कमी पूर की दही के छहारे बैठकर, मेरे अनाकलान पर अपनी प्रेम-पूर्ण दृष्टि का अन्त विकसित करती थी ।

गांव की बाढ़ ने गांव की सारी विभूति स्वाहा कर ली थी । गांव भूखों के आस-पास से व्यथित था । किसी को हमारी किम्बदन्ती थी । पर से बाहर जाने पर कहीं से पैसे की आशा न थी । अतिथार, धर्महसी आदि उस रोम-परिवार में से हैं, जिसमें मनुष्य, वृष और लिखड़ी का पण्य दिया जाता है, शाक और कोहरे जैसा शाक, विशेष तौर से चर्चित है । पर मैं क्या करता ! अपनी बगती के लिए मैं किसी दूसरे पण्य की व्यवस्था ही न



कर सका। उस समय राग और उमका विषम भी कुछ माझम न था। अज्ञानता में बड़ी निश्चितता होती है। उस समय मैं कोहरे का शाक जिला-लिलाकर ही उसे अन्धा करने की आशा कर बैठता था। वह भी बड़े स्वाद से, बड़े चाव से, अमृत की तरह उसकी प्रतीक्षा करती थी।

ऐसी परिचर्या का जो नतीजा हो सकता है, बही हुआ। मैं अज्ञान था सही, पर प्रकृति तो सतर्क थी। सिधे मुझे शोक रह गया है, तो बही कि उसे अन्त में एक नहीं, पूरे दो दिन वह कोहड़ा भी न मिल सका। मैं जो चार पैसों की मक्खूरी को मारा मारा फिरा, वह भी न मिली। उसके बाद उसी कोहरे की बेलि में फल भी निकलें और मैं रोखी से भी क्षम गया हूँ। मेरी कर्मवी के मन में बही एक कसक बसी गयी कि मैं किसी काम के योग्य नहीं हो सका।

## [ बात ]

वह बात नहीं कि अब मुझमें कुछ घेम्पता आ गयी हो। मैं तो वैसा ही लठ्ठगंवार हूँ। कुररत का परिहास है। अब अकुरत नहीं थी, तब एक-एक बूँद के लिए तरसा जाता। अब अब दरकार, नहीं, तब सगर सामने टैंडेल विना।

अपनी को गंगा मैना की गार्द में समर्पित करके सोचा था कि मेरे सांसारिक सुखों का भी विसर्जन हो गया। उसी पुन में गरीबी की विलास-कक्ष उस कुटिया की परिक्रमा करके मैं उद्देश्यहीन पथ की ओर चल पड़ा था। किसी बात की हल्का न थी कोई अमिताभा न थी।

कहारी की निर्बल भूमि से होकर मैं चुपचाप बसा जा रहा था ।  
 रास्ते में एक माताभक्त देही साहब से मेट हो गयी । उन्हें सीधे सारों  
 बताने के लिए उनके साथ हो लिया । मेरे उदास चेहरे की स्पष्ट छवि  
 को बाँधकर उन साहब ने कई प्रश्न कर दलौ । उत्तर न दे सका ।  
 कल अदबद हो गया । आँकों से कुछ आँसू छल-छलाकर गिर गये ।

कविक महोदय ने छाँसना न देकर मेरे अवस्था प्रवाह को  
 निरुद्ध निर्वन्ध भाव से वह जाने का वाक्य किया । तब रो चुकने के  
 बाद भी कुछ शान्त हुआ । मैंने बककर कहा—यही सीधा रास्ता है ।

मैंने सोचना चाहा । पर उन्होंने कहा—गहरी, जब इस समय कई  
 क्षणों । कविता, एक दिन मेरे बहुत विस्मय कीविष्ट ।

बहुत हाव-पौर कल्पवृक्षों पर उसका अनुरोध कम न हुआ ।  
 साधर में साथ हो लिया ।

बैराग्यताओं के सुपरिमेंटेंट से । एक बगीचे में उसके केरे पड़े  
 थे । उन्होंने मुझे वह आदर से टहराया, फिर मेरे जीवन के कुछ  
 प्रवाह को इस नीकली-कबी संघ से लोक दिया । सीमा ही मैं इस आपत्ती  
 अवस्था पर आ पहुँचा । रहने की छोटी-ठा बकातर है, काम करने को एक  
 जेबिल-कुछी-कुछ बपतर है । बाहर सीमा की सभन सीतल झँद है ।  
 बाहिरी तरफ छोटी-सी बगिची है और बाकी तरफ विविध तरह फेंके हुए  
 हरित-शमामल लेव ।

इन सब मैं मेरे अविष्ट मन को रमा रहता है । सबसे अधिक

बाक-मुग्धी ]

मेरी ममता को उद्योजित किया है मेरे मातृहृद बाकिश कर्म की कर्म-  
कर्म नव-वर्षीय पोष-पुत्री सुखिया से । वह मुझे जाना बमाने और  
पूना बलाने आदि में सहायता देती है और बरतने में मैं उसके साथ तरह  
तरह के खेल खेलकर उसके सम-वयस्क बालिकों का समान बुर कर देता  
हूँ । दिन बड़े मने से उसे का रहे हैं । आज सुपरिस्टेन्डेंट साहब आने  
के और मुझसे पूछा—कहो, जी लगता है ?

मेरी समझ में नहीं आया कि क्या कहूँ । चपल सुनिश्च  
ने मेरी तरफ से कह दिया—सुन लगता है साहेब ।

सुपरिस्टेन्डेंट सुलकरा दिने और मैं भी । अभी तक बाकजाना  
अवस्था (Experimental) का और मैं भी । पर आज से दोनों  
स्थायी कर दिने गये ।

## मृत्यु-शैया

राजे ! तुम्हें मालूम नहीं, मैं सदा से असह्य हूँ । आरोग्य  
वृद्धि निराश्व की एकमात्र अवसंध ! मर उठे लकपते हुये अकेले छोड़  
कर तुम्हें उचित है ! कोल को तनिक अपनी आँखें ! देखो यह प्र बकार  
धरे धर में फैलने में पावे—कहकर धरत में दगिनी पत्नी की चारपाई पर  
सिर टेक लिये ।

राज ने बड़े क्रोध से आलें झोलाकर और कपड़ोंकर कहा—मैं  
अच्छी हूँ । क्यों भी झोला करते हो ? तनिक कला को गेरी में लेकर  
आकर तो । बेचारी कहीं हो गई है । तनिक मेरी बच्ची को ले लो ।

चरन—हाँ, वही तरह हुआ बेटी रहो मेरी स्वामिनी । देखो,  
मैं बच्ची का सिने होता हूँ । बाबू—बाबू मेरी बेटी कसा । करो मही ।  
हमारे बच्ची बच्ची बच्ची हूँ जाती है ।

ਪਥ—ਹਾਂ, ਠੀਕ ਹੈ ।

चरण कक्षा के गुण को बार-बार धूमने के बाद राखिनी की ओर देखाकर—टीक हो है, वर यह क्या ? पक्षों क्यों झंपती हो ? देखो न, मैंने कक्षा को गोदी में ले लिया है । तुम बाका ठण्डके सिर पर हाथ फेर

हो । कह दो, वह बरे नहीं । अब तो, तुम तो बोलती ही नहीं । इससे तो मैं तक करने लगता हूँ फिर वह तो अनोख वास्तिका है ।

राधा—मैं कहती जो हूँ निन्ता छोड़ दो । कौन सदा बना रहता है । मेरी सैबी सीमाय मृत्यु तो बहुतों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है । तुम तो समझदार हो । अभीर क्यों होते हो । ईश्वर की इच्छा होगी तो अपने कैराय और कला को खेहर रहना लेकिन अभी कौन जानता है क्या होगा ।

वरन—राधे ! तुम मुझे बोलाना न हो । मैं वह एक मी बात नहीं सुन सकता । मालूम नहीं, अब इन हृदय में बोझ भी आयात करने की शक्ति नहीं रह गई है । मेरे इस जीवन में कितने असहनीय कष्ट नहीं आये और मैं सबको सह सका हूँ किन्तु आज का यह दुःख असहनीय हो रहा है । प्रियतमे ! वह बड़ा-सा मकान यह दीनक वह ठाठ बाट मेरा नहीं है । वह सब तो मेरी लक्ष्मी तुम्हारे मायम का है । इसे मैं अपनी तरह जानता हूँ । और इसी से जाके बोझ बहुत इन वस्त्रों के बिस्ते में भी पड़ जाय । नहीं तो मैं एक अभाग्य प्राणी हूँ ।

राधा ने अपनी दोनों कान्त बाँहें वरन के गालों में डाल ली और रोकर कहा—वह क्या कहते हो ! अपने सीमाय की इस सुनहली मुगल बोझी को देखो । परमात्मा से प्रार्थना है वह इन्हें चिरञ्जीवी करे और अब मेरे लिए निन्ता करना छोड़ दो ।

अचैती रात भी और सरसों का मधानक मीसम । हाथ पैर बर्द हो रहे थे । वरन की गोद में कला मुरझाई पड़ी थी । पाँच ही एक घूँघरे

बिस्तर पर झरोखे वाला कपड़े पहना था । मामबत्ती लालचर समाप्त  
 मान हो चुकी थी । चरम की आँसों से गरम-गरम आँसू की बूँदें बराबर  
 झरझर कर गोद में बड़ी बच्ची के कपड़ों को मिथ रही थी । रागिनी की  
 निवृत्त बाँहें स्वामी के गले में पड़ी थी ।

बढ़ावक ममत्व का बंधन टूट गया । माह की बड़ी निष्पत्ति निर्भीक  
 होकर झुल गई । दीपक का निर्वास हो गया । चरम ने व्याकुल कंठ से  
 पुकारा—मेरी रानी ! मेरी स्वामिनी !—मिने ! राखे ! दुप क्यों कट रही हो !  
 एक बार, केवल एकबार अपनी बाँहें इस गले में और बाँध दो । आफ ! यह  
 अब बेव कदा बिकट है ! महाप्रसन्न की रात मल्लम पकटी है । दीपक,  
 आलोक, उभाला, प्रकाश ! कहाँ हो प्राणेश्वरी ! एक किरण—केवल  
 एक मल्लक !

[ दो ]

चरम का नाम जिस क्रांतिपी में बिजला था उसकी आँसों की  
 दृष्टि चारों तरफ़ रही हो, पर उसकी विषा-बुद्धि में कसर न थी । उसने  
 केवल नाम के तीन साक्षर अक्षरों में उसे उसके जीवन का सारा मर्म  
 अंकित कर दिया था । चरम सचमुच बचपन से चरमों की तरह बुद्धि,  
 उपेक्षित और अनादर रहा ।

कहने को बकल का लड़का था । घर में जाने की कमी न थी ।  
 पर विरोध सुनिश्च भी न थी । माँ जो प्यास करती और कर सकती थी वह  
 घर की स्वामिनी होकर भी दासी—नहीं भिन्नरिणी थी । मामबत्ती चरम

उसी क्षमाशी माँ के उदर से जन्मा था ।

माँ का नाम ही सिर्फ बसन्ती था । जैसे न उससे बसन्त का वा  
मादक रूप था न बेसी बहार । बौली रूपहीन वह थी । बौला ही था उसका  
मास्य । रवामी ने कभी उसे प्यार नहीं किया था । वह रूप बहिष्कृत रह  
बहिष्कृत, प्यार और स्नेह बहिष्कृत छावला थी । बुझी निराश्रित और निरक-  
लम्ब ! लेकिन उसकी विरक्त आकृति और भद्रे बेश विम्वर में छिपा  
या अनन्य प्रेम का महासागर जिसे कभी किसी ने पूछा न था,  
बिचका नहीं साहस न था ।

गैबार और बुरूप की सुविधित पुस्य की पहिछी बने इससे

अधिक अपराध और कष्ट हो सकता है । शासन विधान में इसके लिए कोई  
कोई बारा न हो पर नये निकले हुये बकील की प्रतिभा कोई न कोई  
रास्ता निकाल ही लेती है । जर्मन के पिता ने अपनी बकालत की कारण-  
वारी पहले पहले अपने पर से ही आरम्भ की । मनाविज्ञान पढ़ा था । उसकी  
सहायता से ही आरम्भ किया । दिन में बार बार की की पैरी होने  
सगी । कमी बल में नमक की शिकार कमी पाल में खुले के लिए पैरी,  
कमी बिल्लर पर सखवाई के लिए मर्तना । आरोप बढ़ते ही जाते थे । पर जब  
देवले का मौका आता तो हाव डक जाता । हिपूला के विवाताओं की  
बुद्धि की बलिहारी । उन्मत्ति तलाक का कहीं भिन्न ही न किया था ।—म सही,  
पर इससे क्या घर के काम-काज रुक जाते हैं !

बकील साहब को कानून में विवाता में बौली बुद्धिमत्ता से काम  
लिया था जैसे ही उसने बसन्ती को अपराध से अधिक सरलता और बुरूपता

देकर अपनी बुद्धि का भी डंका पीट दिया था। अनेक तरह के कष्ट और नई नई अनुविधाय भी उसकी सहाय मग न होती। अपने कष्टपूर्ण जीवन का उसे भाग ही न था। उसमें न अभिमान था, न शर्म। स्वामी कहते सही हा, तो सही हो जाती। वे दुःख सेते बैठ जा, तो बैठ जाती।

उसके इस माध से बकील साहब मन ही मन बल गुन कर कहते—बकी मूर्खी है।

वह भी गुपचाप धिर मुझकर स्वीकार कर लेती। उसने कभी एक क्षण के लिए भी स्वामी के कथन पर शिष्टिवास न किया था। वह स्वयं अपने आपको वैसा ही समझती थी, वैसा बकील साहब श्रेष्ठ में आकर कह जाते।

उसका कोई काम स्वामी को पसंद नहीं आता, पर घर के प्राण सभी काम करने उसी को पड़ते थे और हर काम के साथ सुनती पड़ती थी शब्दों काटकार। ऐसी ही के स्वामी बनकर बकील साहब भी परेशान थे। उनका महत्त्वपूर्ण जीवन स्वर्ग की बक-भक्त और बुद्धिमान में जाता था। वैवाहिक जीवन की बीसी मनोहर कल्पनाएँ कर रक्खी थी उन सब पर तेंबर-कुम्भ और मूर्खी बसती वे पामी केर दिया था। कचहरी से जब लौटकर आते, तो कभी वह द्वार के बास ठसुक्ता से प्रतीक्षा नहीं करती हाती। कभी कभी रूप लौष्ठन की बात बिकता का अभिशाप मानकर मूख भी कामा जाते थे, पर बसती की फूहक कार्य प्रयासी बर पद पर उसका स्मरण दिला देती थी। जब वे जाते कि वह बाजार से सही और आभूषण हा देते के लिए आते तो उस समय बसती बकी व्यस्तता से



## मृषु रोना ]

चूल्हा फूँकने में लगी हाती । जब वे चाहते कि वह उनकी पुस्तकों में से किसी सरस उपन्यास को लेकर पढ़ने बैठ जाय और उसके विषय की आलोचना करने के लिए उन्हें कचहरी जाते समय थोड़ी देर रुकने के लिए अनुरोध करे, उस समय वह उनकी नहाँ हुई जाती खोंटी होती या भाषा आबम की पुरानी रामायण की पोथी लेकर श्याम मन होती । कमी प्रेम पत्र लिखना न जानती थी । कमी हाथ माथ धराना न जानती थी । न 'प्रियजन' कहकर कमी प्रेम निवेदन करती थी । इस शुष्कता और मोरचता ने उसके रूप को और भी स्वामी की नजरों में माँहा बना दिया था ।

## [ चीन ]

वह विषय आज तक विवाद प्रस्तुत है कि पौँच साल के बालक ज़रन को झाँककर बछ्ठी त्वरं कहीं कहीं गई थी बकूल साहब ने ही किसी तरह उससे पीछा हुआ था । लेकिन इसमें संदेह नहीं कि बेचारा ज़रन बिना माँ का रह गया ।

बछ्ठी का कहीं पता न लगा । लेकिन कियों का पता न लगने से पुष्पा के जीवन में कोई अभाव आयाता हो वह बात नहीं तथापि बकूल साहब ने मन ही मन उसे बहुत अनुमन किया । क्योंकि बछ्ठी को न सही ताँ वे ज़रन को तो प्यार करते ही थे । कियों की ममता उन्हें उसकी धाँ दिलाये बिना न रहती जिसके लिये उनका जीवन सदा पुष्पा के भाव से भरा था ।

बच्चे के लाञ्छन-पागल के लिये हो, चाहे अपने आराम के लिये, उन्होंने शीघ्र ही दूसरा विवाह कर लिया। श्री आई मुन्दरी पढ़ी-लिखी, अप-टू ब्रेड। उसने बकील साहब के कष्टपूर्ण जीवन में अपूर्व मिठास पैदा कर दी; पर बेपारे चरम की दशा में कुछ भी परिवर्तन न हुआ। वह उसी तरह पिता के निष्कल प्यार और माता के उपेक्षित प्यार में अपने बचपन के दिन व्यतीत करता रहा।

सातवीं साल में वह स्कूल में पढ़ने गया। उसके अपने चेहरे और शिष्ट समापन में एक आदु पा, जो सब पर शरार डालता था। पिता उसके ऊपर कृपानुक्त। विमाता का माथ भी बालम हाँवला था। सीमान्त के मुनहल स्वप्न जाने में देर न थी। वह ममही मन प्रयुक्तित हो रहा था। यद्यपि विमाता का भाव बदल गया। वह फिर चरन से लिपटी रहने लगी। पर उसकी समझ में कुछ न आया।

उनकी देतक सम्पत्ति चाहे कितनी ही पानी क्यों न थी पर वह अब तब उसका आकेला उत्तरधिकारी था। अब उनका वह अधिकार भी बँट जानेवाला था। वही नहीं कन सम्पत्ति के अतिमिष्ट पिता और विमाता का प्रेम भी उस पर न रहा। न जाने कितने कर्मों की श्रुता का बस्ता लेने के लिये विमाता के गर्म से एक बालक में माई बनकर जन्म लिया। माई का स्नेह मधुर स्वान लेकर एक राहु उदय हुआ जिसने अभाग चरन के समस्त सुखों का प्राप्त कर लिया।

[ चार ]

चरन स्कूल में पढ़ता था। उसकी विमाता मुन्दरी और पढ़ी

लिनी थी। बकील चाहत में इस शारी में अपनी सुखि का पूरा उपभोग किया था। श्री बुनने में उन्होंने बिलकुल नये ढंग से काम लिया था। फल्ये से गुण दोषों का कर्मी-कमी परक नहीं हो पाती। इसलिए उन्होंने लकड़ी स्वयं बेचकर पसन्द की थी। इसीसे कर्मसमाजी हमने पर भी आत्मसमाज के सिद्धान्तों में भ्रष्ट रहनेवासी श्री से उनका प्रस्थि बचन हो गया। पर हमारे के लचीले स्वभाव में इस मतान्तर की कानि का दुर्लभ्य न होने दिया। श्री समाज के अक्षरों में बेरोक-टाक जाती थी। स्वामी अपने सम्ब विरघास और धार्मिक विचारों के अनुसार काम करते थे। एक समय था जब बसन्ती का रामायण पढ़ना उन्हें अक्षर जाता था, पर उसके अदरव हो जाने के बाद से उन्हें रामायण की ओर विशेष रूचि हो गई थी। न जाने क्यों, पर फिर भी श्री पुष्पा में पूरी-पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता थी। मनुष्य की नई रोशनी में यहस्वी का कायकल्प हो गया था।

स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के भी अवस्था भेद से रूप बदला करते हैं। जबतक किसी धार्मिक चिन्ता का सामना नहीं पड़ा तबतक मन्त्र में बसता गया, पर जब भीमती के लिये लागे के पीछे एक स्पर्श का शोक प्रतीति होने लगे तो धार्मिक मतान्तर का कुरिखत रूप कुछ कुछ स्पष्ट हो जाता।

किसी सम्प्रदाय की हो, किसी में धार्मिक विरघास का आधित्य होता ही है। वे जिस बात को मानती हैं अमताकरक सं मानती हैं। बकील चाहत के इशारा करने पर भी भीमती ने समाज में जाता नहीं छोड़ा। बसिक और निरुमित हो गई पति-पत्नी की इस पारस्परिक जीवनातानी में धार्मिक समस्या और उत्पन्न गई। विश्व के आदिकाल से जा होता आद्य

है अन्त में नहीं हुआ। रमणी का इठ रहा, पुरुष का पुटने डेकदेने पक।  
 पूरेकाट्ट किराये का तावा भीमती को समाज मन्दिर की आर से बाठा  
 रहा। हाँ बाँक-सा अम्बर यह कबरेच हुआ कि बारह बपवा महीने का  
 एक लौकर हुका दिया गया, और चरन, का स्कूल में बाहर अपना समक  
 और पिता का घाट इस मासिक बरबाद करता था उसकी जगह पर का  
 काय काज देखने लगा।

बकील साहब ने कुछ विरोध मध्य किया इसलिए वह नहीं कह  
 सकते कि उन्होंने इसे पसन्द नहीं किया। जान चरवा के स्थान पर आ  
 गया और चरवों के स्थान पर बासीन हमें स ही अम्बुदम का आरम्भ  
 होता है।

जहाँ चरन के मास्य को इतना साटा बनाया था, वहीं बिचठा ने  
 बचपन स ही ठम कुनाम बुद्धि देकर बड़ी समझौती का काम किया था।  
 पड़ना-तिलना छोड़कर घर की उहल करते करते ही वह अम्बर अपने जीवन  
 की आशाचना कर होता था। वह मनही मन जानता था कि बिमाठा के  
 जिस बच्चे का वह खेद में लेकर चुमकायता और गाँकी पर चढ़ाकर डहलाता  
 है वह बड़े बड़ा होने पर इतना कृतज्ञ न हुआ कि उसे घर से निकाल दे  
 ता मी बड़े भाई का पक तो कदापि न दे सकेगा। अपने पिता के घर  
 में हर समय, हर बात में, परचयन अम्बुदम कर उसके जीवन का  
 रस-संभर चुका जाता था।

लकड़ा में बचपन को जो ठमों होती हैं, जिस बचकता और  
 बाबाकता है उनका जीवन मुहाबला बना रहता है, वे उससे कहाँ से

आर्ती ! उसने न कभी लाइ जाना था, म जुलार । एक बार भी कभी किसी बात के लिए बठकर उसने माँ बाप का मुँहों के कण्ठ में मुँहासा मारा था । कभी इठलाकर चलने की छमता उसमें न आई थी, पर वही बुर्कल कमल परन पुरुषाय का पुतला बन गया । क्योंकि उसने सुना कि उसकी माँ इच्छार में है, वहीं गंगा-तट पर वह फूल बेचती है, लोही पर विदा के घर से बाहर हो गया । इच्छार कहीं, कितने, कितने मील । वह साँवने का वह उसने नहीं उठाया ।

जिसके पास जाने को एक पैसा नहीं, ओढ़ने-पहनने को कपड़े नहीं वह झंझ-झा बाँसक इतने मील का सफर करने के बाद, कितने फल भेलाकर इच्छार पहुँचा होगा इसकी बजाय कल्पना सब कोई नहीं कर सकते । केवल माँ का प्यार उसे वहाँ खींच ले गया । तकलीफों को उसने माँ के फूल समझा ।

उसने इच्छार की गली-गली छान बाली । जितनी माँसिनें गंगा तट पर फूल बेचती थीं उन सभी को अपनी कल्पना कहानी से एक-एक बार उसने सुना दिया पर माँ का कहीं पता न चला ।

माँ का न पाकर वह निराश था । जब चारों दिशाएँ उसके लिए समान थीं । इच्छार की जनाकीर्ण गर्लियों सब लम्बी प्रतीत होती थीं । एक दिन वह गाड़ी में सवार हो लिया । माँ की कहा किन्तु जानकी इस बुद्धिमत्ता में पड़ना उसने ठगित नहीं समझा ।

मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं । मूल-पत्र से सुँह लून रहा था गाड़ी काबुदेग से जा रही थी । उसी जलती गाड़ी में एक दोप-चढ़ी था

पहुँ आया । सब लोग उस अपना अपना टिकट दिखाने लगे । चरन का फिर पकड़र लाने लगा । जब बाबू ने उसकी आर फिरकर टिकट माँगा तो उसके मुँह के चक्कर आम आदक गई और वह सिंघक-डिंठक कर रोने लगा ।

एक महाशय बड़ी देर स चरन की दशा पर मन ही मन तरस ला रहे थे । उन्होंने बप्पे को विपत्ति में पड़ा देखकर कहा—यह लड़का मेरे साथ है । इसके टिकट के बाम मुझसे लीजिये ।

जब से मनीषण निकाल कर रुपये गिन दिए और रसीद लेली । चरन मन ही मन बहुत लजिबल और सजुषित हाकर आबू पंहुने लगा । पोली देर में उन महाशय ने कहा—सा बच्चा ! यह रसीद । दमास ठक का टिकट है । तुम क्यों उसरोगे ?

चरन ने कोपते हुए हाथों से रसीद लेली पर उसकी बात का कुछ उत्तर न दे सका । उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है ?

उत्तर में चरन ने चुप रहि ।

[ पाच ]

सुन्दरलाल का माहूँस हुआ तो वे चरन को अपने साथ ही ले आये । एक अपरिचित घर में अनायास आकर चरन ने माँ-बाप दोनों को पा लिया । भिन्न प्रभाव की न्वाला से उसका जीवन बग रहा था, बड़ न रहा । सुन्दरलाल सजमुच अपने लड़के की तरह रसने लग । उनकी पहिना भी की तरह उसका पहन लेने लगी । बाना की-पुखो

## मृत्यु-रोष ]

से भी अधिक सरस और सौन्दर्यमय बनाने लगी उन वन्यति की सज्जानी हैसियत का राधिका ।

सुन्दरलाल बहुत मामूली हैसियत के आदमी थे । उनके पास कोई ऐसी जाबदास्त भी जो वे किसी को बर्बाद कर जाते । उनका हुस्न बड़ा विरासत था । उन्होंने किसी तरह चरम को पहुँचकर एन्ट्रेन्स पास करा दिया । किन्तु उसका मतीका भी न निकलने पाया कि वे अचानक स्वर्गवासी हो गये । उनके थोड़े दिन बाद ही उनकी कनपत्नी भी जल बसी । किन्तु अन्त समय वे अपने स्वामी की अन्तिम अभिलाषा पूरी कर गईं । चारपाई पर लेट-कूट ही उन्होंने चरम और राधा का अपने सामने ही मावरें फिरा दी । वह विवाह भी अमात्या था । उसमें बाध नहीं पड़े ; उसका नहीं हुआ । चरम भी राधा था, राधा भी राधा थी, और सरस्वती, राधा की स्नेहमयी माँ, मृत्यु-रोष पर पड़े पक्ष सम्मान कर रही थी । माँको के कुछ घटा था उनको अधी निलती । मातृम पकटा है इसी वरीकृत के लिए उनके माथ शरीर में अटक रहे थे ।

[ क ]

जिस स्नेह और सौजन्य से, जिस आशा और अभिलाषा से सरस्वती और सुन्दरलाल ने अपनी स्नेहमयी बुद्धि का पक्ष के मित्रारी चरम का अर्पित की थी जीवन भर पूरी तरह से उसका आदर और मान करने में कुछ उठा नहीं रखता था, उनको उध अनूठी विभूति का चरम ने भी सदा अपनी पलकों पर ही रखने में शिरस्य समझा ।

उमने जी हामकर कनराति इन्हें की । मकान बनवाया । अपनी इरफेरकी की एक-एक इच्छा को पूर्ण करने का सतत प्रयत्न किया । राधा स्वयम्भू अपनी प्रेम और लाजवश के कारण उसे ठठनी प्यारी न थी जिसकी साज-सज्जद की स्मृति के कारण । इससे आज जब वह नहीं है सा बरका सज्जद सुता हो गया है । कला और केशव उसके उस अभाव की पूर्ति नहीं कर पाते । गन जीवन की एक-एक स्मृति उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगा रही है ।

गुरी में जब समय नहीं करता चाहिए, तब वह चुपचाप लिखक बना । इतने पर स कि पता भी नहीं चलता पर दुल में एक-एक वक्त बरत बरत बुझिया की हजार बार मृत्यु हो चुकती है । शून्य ठरावी से भी बरका उठता है । स्मृतियों से आँखें पुल जाती हैं । आज राधा की नहीं, करन के समस्त सुनो की मृत्यु हो गई है और अब शायद इस जीवन में फिर कभी उसमें प्राण-रस प्रवाहित नहीं होगा ।



## विरोधी

ठर-बलिष्ठ दिशाओं में जिस विरोध-मात्र की सुचना है, आकाश के बीच जिस अपरिचीम अन्तर का विधान है, ठीक उसी का हम दोनों के जीवन में योग था। मैं उसके हर काम का प्रयास ईश्वर से करता। वह भी मेरी बात बात पर जली छली आँसे अग्निबर्षा करने में ही उन्नीव पाता।

यह क्यों हुआ, कैसे हुआ ?—आदि बातों का ठर पूछो, कुछ भी नहीं। मैंने उसे पहली बार स्कूल में देखा लड़कों से मिला—पढ़ने आया है। किसी ने उसका नाम लिखा—कनामन्य।

मेरे मन में न जाने क्यों, बैठते ही उसके प्रति अनन्त प्रेम का समुद्र उठक पड़ा। मैंने अपने समस्त उपास्य देशों के द्वार खोल दिये। सबसे यही, केवल यही, प्रार्थना की—हे देव ! हे शत्रुघ्न इस पदसु को वहाँ से लोकन्तरित कर सको, तो माता वसुन्धरा का मन बहुत कुछ हल्का हो जाय।

कनामन्य के नाम का प्रत्येक अक्षर मेरे कानों में धन की तरह बजने लगा। मैं उसके पीछे नाम को सह न सका। मैंने उसमें जो परिवर्तन कर देना आवश्यक समझा। मैंने उसका नाम बुधामन्य रख

देख । पुष्पलम्ब के प्रति मेरी प्रिया और ईर्ष्या और भी प्रकट हो उठी । मुझे मालूम हुआ, कि वह स्कूल में मर्ती हो गया है । यही क्यों, वह मेरे दूबे ही में, मेरे ही बेकेशन में लिखा गया है । मैं उसे भित्तवा ही पूरा चाहता था, वह ठठना ही मेरे पास आकर लिपट गया । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि साँप आर्स्तीन में घुस गया ।

और इतनी हुई कि मेरे पास खानी चीट होने पर भी माछर ने उसे मुझसे दूर ही रक्खा । मैंने बड़े माछर की चापसी हुई अकल को क्लृप्त दिवा ।

उसने हफर से ऊपर इष्टि बौकाकर कुछ बेर में कमरे की छारी मूर्तियों का परल लिया । मुझे भी देखा—साँप की तरह कुम्भकारते हुए । मैंने समझा, उसने मुझे पहचान लिया । बात भी सच थी ।

माछर चले गये । काने-पीने की हुई हुई । सभी लकड़ों से, बैठा ठठका गठबन्धन हा मका । इतनी अन्दी ऐसा देखा-मेला । मेरी भी गये लक रही थी । लेकिन एक आँख और एक कान उसी की ओर लगे थे और शावर उसके मेरी आर ।

मैं उसे अपनी ओर कुम्भकारते हुए समझता रहा था, वह मुझे कुम्भकारते हुए ।

उस दिन यही तक हुआ । पुष्पलम्ब हुई के बाद प्रिया और विरोधी की आँख अन्तःकर अपने घर चला गया । मैं अपने कहीं चला आया और उसे सुरक्षित रखने का कल करने लगा ।

दूसरे दिन मस्माक्तादित विनगारी अस्मत्तरूप में प्रकट हुई । मैं

विरोधी ]

मद रखा था । माखर ने कोई शम्य पृष्ठ लिखा । मुझे न आया । मैं पुपचाप बना था । पुषानन्द ने मल से हाथ रेंगा कर दिया । मेरे शरीर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक कड़वा विष भर गया । मैंने कभी से कभी नजर से उसकी ओर देखा ।

शम्य को लेक हुआ । उसमें भी हम दोनों का स्पष्ट विरोध-भाव देख पड़ा । बात-बात में विरोध था—कहा, तीन और अनुचित । वा मेरे हर एक प्रस्ताव को ठग्यने में कसर नहीं छोड़ता । मैं भी उसके कोई बात लगने नहीं देता ।

मेरे जीवन का सारा रस विष हो गया था और शम्य उसका मी ।

[ दो ]

मेरे दर्जे के दो सेवकान थे । कुल सत्तर लड़के होंगे । मैं सबसे ठेक था । कभी किसी ने मुझे किसी विषय में परखत नहीं कर पाया था । मुझे और मेरे माखर दोनों को मेरी प्रतिमा और कुशाग्रबुद्धि का गम था । अमी तक वह गर्व हिमाचल की तरह दृढ़ और अचल जला आ रहा था । पुषानन्द ने आकर उसे भी हिला दिया । ऐसा दृढ़ ऐसा मेहनती और ऐसा सिलाही कोई लड़का शम्य माखरों की शाय में भी नहीं न हुआ था । मेरी सबसेमुसी प्रतिमा जब कई बार उसके सामने कुचिठत हुई वा मेरी आँखें खुली । माखरों की उसके ऊपर कृपा बढ़ने लगी । मेरा उसके प्रति रोज उद्देशित होमै लगा ।

हथना लेत्र होने पर भी कितानों में भी मलगाने की दिने कसम साईं थी । कबरत भी नहीं थी फुरसत भी नहीं थी । कुछ सापरवाही भी, कुछ बचपन का—और कुछ ये मेस-कून्, आनन्द और विमोह । आन-कथन के लिए नहीं, पुश्तामन्द के लिये, समस्त विश्व की पूजा उत्पादन करने की क्षातिर मैं अपनी समस्त शक्ति से पहार में लग गया ।

घर के कामों की ताज्जुब था । भाई का मेरे न पढ़ने की सदा तिकाकत भी मे प्रसन्न हो गये । मा का मेरी तन्बुहली की चिन्ता मताने लगी । बार-बार बाबूजी के सामने मेरी लगन की चर्चा बजाकर बात का प्रबन्ध तरह प्रसिद्ध कर दिया । केवल नई माझी ने मेरे इस नये कार्यक्रम का वक्तव्य नहीं किया । बरा हँसने बोलने का सुयोग था, वह भी गद्य ।

मैं अपने काम में लगा रहा । भूगोल विज्ञान और अविष्ट इन विषयों पर विशेष सान बढ़ानी थी । रोप विषयों में छाभी मैंने पुश्तामन्द का अभिपत्त नहीं माना था । लेकिन फिर भी महनत हरएक में करता रहा ।

शहर में प्रसिद्ध राममूर्ति का सर्वेस था । बाबूजी ने कहा, मैं ने कहा, पर मैं नहीं गया । माझी का भी अनुरोध नहीं माना । मार्त और बड़ोस की रक्षाना-कृष्णा दोनों हाकिमों जाकर देख आई । उस समय मैं विज्ञान में उल्लीख था । हमाही इन्तजान का बीस दिन से भी कम समय रह गया था ।

दूसरे दिन सुना पुश्तामन्द सर्वम देख था । वह कहा में खुब छाभी-पौड़ी हाँक रहा था । इन दिनों मैं अल्लो में गरीब हाया भी

बिरोधी ]

छोड़ दिया था लेकिन पुश्तानन्द हाथद बराबर माग लेता था । उसकी बर्ती ही दिखतली थी, वही रफ्तार थी ।

मैं कहता था—ठीक हैनाकिम गर्लबि के बत्त माशूम पड़ा, कि अगरब ही वह भी मेरे लिए वही कहता रहा होगा । मेरी उसकी मापाओं में मेह था—उसकी ठबू थी, मेरी हिन्दी । विज्ञान, भूगोल और गणित में उसके गम्बर आम्कि आब । लेकिन डोडक मेरा बढ़ गया । गौरब रह गया, पैसा मैंने समझ लिया । हिन्दी के पंडितजी को जम्बवाह दिया ।

गणित और विज्ञान बज्जाली मास्टर पढ़ाते थे और भूगोल एक अमेरिकन । दोनों ने मुझसे पूछा—क्या जी, तुमको क्या हो गया था ।

‘तुमको तो कुछ भी नहीं हो गया था । बहसो से हर एक पर्थ आच्छा ही किया था । कुछ पुश्तानन्द इससे भी आच्छा करेगा, इसका भला तुम्हें क्या पता था । पढ़ी आनकर मैं चुप रह गया ।

[ खान ]

खान में मेरी टाकर उसे छोड़कर और किसी से नहीं हुई । इसका कारण पूर्व-जन्म के किसी सरकार के सिवा और क्या हो सकता है । वो लोग एक निरबाह के काका नहीं, वे कोई वृद्ध कारण भी समझ सकते हैं ।

हम दोनों ने हाई स्कूल साफ-साफ पास किया । वो डिबीजन मैंने पास, वही उसे पाने का क्या आधिकार था । लेकिन उसने वही पाया । स्कूल

मे साथ साथ, कॉलेज में साथ-साथ, समा-मंगलकी में साथ साथ स्नेहित  
 हलो एक दूसरे के बहुर बिराधी और मजल बाधु । आर्यभुमार समा पुटबास,  
 हाकी के मैदान, तलपों के रमयण और विचरिष-सलप हम दोनों के होलसे  
 निचासने के स्वरूप थे । कहीं मार-साकबर, कहीं गालियों की बीसुर कर  
 और कहीं प्रतिभा और विद्वत् से एक दूसरे का बरास्त कर मीना दिसाना  
 चाहते थे । द्रामा में शाहसाक बनकर मैं सचमुच ही एग्जेनिवा (पुष्पानन्द)  
 का एक पौके भांस काट लेने की पृथित चेष्टा से लुटपटा डट्टा । पेरिशिया  
 का अभिनव और लकैन्दता उठनी हृदयहारिणी न होती, तो मैं नाटक  
 को खल पट्टा में कटित कर देता ।

पेरिशिया पाटकों के लिए नर्त थीम बही है ।

बहते रक्तमा और कृष्णा लकड़ियों का निष्क हुआ है । दाना मेरे  
 पकोव में पैदा हुई हैं—बकी हुई हैं । अब दाना ही कासेज में बढ़ती हैं ।  
 रक्तमा उड़ा है और कृष्णा अन्तुड़ा । मैं जमी से कृष्णा पर अपना एक  
 निरोप अविकार मान बैठा हूँ । कृष्णा का पेरिशिया का अभिनव निष्कृत है ।

दाना बहनों के सीखिया और रोमानिब के अभिनव भी प्यार है  
 पर मुझे कृष्णा का रोमानिब कमना उठना नहीं भाता । क्योंकि तब  
 पुष्पानन्द और लैरबा कमजर रत में बिप मोल देता है । उस समय भी  
 चाहता है, उठकर प्रलय मचा दूँ । कृष्णा मेरे मुह से तारीफ के वा शब्दों  
 के लिए कई बार धिर फाक चुकी है । पर मैंने परवाद नहीं की । वह मेरे  
 हठ का प्यागती है । इसीने कुप रहती है ।

परबालों का मेरे प्रेक्षक होने की इत्तजारी थी । वह भी मैं हो

गया । तब का शीश ही हुप्पा मुझे मिल जावगी । पक्काबक पौंछा पलग गया । कुछ पुष्पानन्द शुरू से मेरे लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास कर रहा था । लेकिन वह इतना बढ़ जावगा, यह मरोसा न था । खामा के प्रति उसके कुरख संकन्धी थे । वस, उन्हीं के जरिये वह शानी मार गया । हुप्पा उसके लिए, सुना रुक गई । शीश ही वैतालीस दिन के अन्दर बड़ी धूम धाम से ब्याह हो गया । हुप्पा ने मुझे भी निम्नस्थ दिया था पर मैं जाता था रोने के लिए । ऐसा था कमी जाता न था । अमिताभार्थ, इच्छार्थ और कामगार्थ सभी मृत हो गई । लेकिन पुष्पानन्द की वह विजय पुनौती थी । मैं सब कुछ सहन कर सकता था लेकिन बल्लेन नहीं ।

हुप्पा की पराधीन और बल्लेन मनोवृत्ति ने मुझे बहुत प्रबोध दिया । मैंने बोझे से अमृतहन्त्र के उपरान्त बिरकुमार रहने का हृद संकल्प कर लिया । उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि मैंने पुष्पानन्द की विजय पर भी विजय पा ली है । इस तरह सहज ही शायद मेरा बाब पुर गया ।

## [ बार ]

ऐसी मौखिक प्रतिष्ठा कर लेने के बाद मुझे लौकिक अश-वैभव की बरबाद नहीं होनी चाहिए थी पर ऐसा कहा हुआ । मुझे परिष्कृत, दुनी ठेकी और औगुने साहस के साथ मैं एम० ए , एल एल० बी० करने में लग गया । मुझे तो अपने बिर शत्रु से अब अन्धी तरह बल्लेन लेना था । वह भी अन्धी तक मेरे कदम-से-कदम मिलाकर बल्लेन आ रहा था ।

हृष्या को पाकर उसका भाग्य नमक गया था पर मेरा भाग्य उसे लाकर एक अपूर्व प्रकाश से बेदीयमान होनेवाला था । बाना ने एक ही होश ( कमरे ) में बैठकर इन्तज़ान के पन्ने किये लेकिन बानों की विचारधाराएँ विपरीत विचारों की ओर कलकल करती हुई सुमुख रश्मि से बही बली या रही थी । मुझे पक्की खबर थी, उसकी पढ़ाई की इतिभी यही थी । उसके पैरों में सुनहला बन्धन पड़ा था । वह पलक कबूतर था । ममत्व का लोभकर शून्य-नीति गगन में आवेले विचारने की उसे स्वतंत्रता न थी । मैं था निर्दोष स्थायी और स्वच्छ-बगामी । उम्मुक्त विशाल विपट बालू मेरी प्रीतिस्थली था । मुझे रोकनेवाला कोई न था । मेरे ऊपर किसी का अकृत्य न था । उसके संकुचित और सीमा-बद्ध अस्मत्त्व को अपने अनन्त अपरिचीम विकास के सामने मगध प्रतीत करके मेरा मन अपूर्व आश्वासन से आलाकृत हो रहा था । वह शुभ दिन किम सुहृत् में आने, वह इसी की आसुर प्रतीक्षा में मेरी बटिबा बीत रही थी ।

बोनों ने साय-साय एक-एक० बी० प्रथम मेथी में पास किया । वहाँ तक बानों शत्रुओं का स्वर एक ही तार से बोल रहा था । अब पार्यस्व होने में देर न थी । शीघ्र ही एक विमानक रेखा बानों के ठहरे रश्मि, बोनों के जीवन के राजमार्ग, मने सिरे से निर्माण करने जा रही थी ।

मेरी विलासत-वाद्य को अगुलियों पर पर गिने आने कावक दिन रह गये थे । धृष्टान्त को बकालत शुरू करने में शायद ठमसे भी कम समय था । मैं बन बहने से लीगर था पर शीर था । वह लक्ष्मी का वरण करने जा रहा था । पर गीतक-सा दबा बरा और संकुचिन था ।



अब तो चंदों की देर थी ले केन वह क्या ? यकायक यह कैसा बज्रपात ! कैसा मलय ॥ पृथ्वानन्द नहीं, मेरा सुरमन नहीं, मेरा प्रतिद्वन्द्वी नहीं, जीवन में जायति और स्फूर्ति फूँकनेवाला, मेरा स्वर्ण सहचर नहीं । सत्सुख हो गया, आश्चर्य ही गया । वह अचानक चन्द्र चढों में नहीं रहा । नष्ट-बंकर पूजा करने के लिए कुशासन पर बठा था । गन्धर्व-कन्ये होकर आचमन करते ही गिर पड़ा । देख्यो में हृदय की गति रुक गई— उसका हाँटे फेल हो गया ।

नौ साल साव-साव पढ़कर जिसे कमी करीब से अच्छी तरह नहीं देखा था विद्या की विडंबना, आज उसे मैं अपने कन्धे पर ले जा रहा हूँ । मेरी कृप्या, मेरी प्यार की हुई अनमोल जीव, बुद्धि, धर्म, अचेत होकर धूल के मोल हो गई है ?

पृथ्वानन्द नहीं रहा । मेरी विस्मय-वाण भी रुक गई । मेरा अमृत-धर स्मिर हो गया । जोश और निरलस साहस के पार स्रोत खखल हो गये ।

देखता हूँ मेरे सुरमन और प्रतिस्पर्धी ने अपनी अनाम्नित उपस्थिति से मेरा जोका कुछ हरण करके मुझे बहुत कुछ दे दिया था और अब जाकर तो सभी कुछ ले गया है । इस जीवन में क्या मैं कुछ कर सकूँगा ?—कमी नहीं ।

## बन्दी

चारों तरफ नीला जल नीला आकाश में मिल गया था । पर्वत भेक्षिक की तरह मुँह उठाकर लहरें ठठथी और सब हो जाती थीं । वह क्षितिज के उस तार, अमंशुर दूरी तक फैला हुआ महासागर था । उस अक्षरह अक्षरान्ति के बीच एक छोटा-सा टापू जहाजों के चक्कर लगा था । लहरों के उद्गम प्रकल को विफल करने के लिये ही माना इकता उसकी गगन-म में मरी थी ।

वहीं तल से डकारमेवाली फनिख लहरों का पैर से तपरी करता हुआ, उधल-सल्लाट एक मुक्क बैठा था । वह बन्दी था—निर्बोधित था ।

वायु का झुका उसके लम्बे बालों को लहराकर खड़ा गया । पानी का रेखा आकाश और 'छप-स' उसके आगे शक्ति में लगकर लौट गया । यकायक उसकी आँखें ठन गईं । उसने पैर से महासागर को कुचकर कहा—इतना गहरे ! जानता नहीं, तुमने मैंने कियास साम्राज्य का छुड़ शकद बनाया था या । और सब ।

उसकी आँखें आप ही आप जुक गईं । क्योंकि वह बन्दी था ।

[ खे ]

उस निर्बोध टापू में कितनी रातें आई और गईं । पन्नमा

निकला, सारं ठग, अंधेरा गहरा हुआ, सूर्य की रोशनी धीमी, लंकिम बम्बों के हृदय में वह उल्लाह बिखारि न सिध । उसकी मीली आँखों में फिर कभी वह चमक नजर न आई । उसकी स्मृति के सामने सदा निराशा का परदा पड़ा प्रतीत होता था । उसकी हरएक हरकत में क्षमता के भाव झलकते थे ।

सुन गगन में समुद्री पक्षी उड़ता, वो तब पुष्पाप बैठकर सिर झुका लेता । पहाड़ी बरत उड़ककर जब पहाड़ी की चोटी पर आकर तिरछी नजर से उसकी ओर साकता तो वह पुष्पाप अपनी हलिया स्वीकार कर लेता । समुद्र गर्भम सुनकर उसका कलेजा कर्प जाता था । उसके स्वप्नों का महल टूट चुका था । अतीत को हस्तक्षेप एक धुँक्की-धी धार रह गई थी । वर्तमान अंधरा पड़ा था और भविष्य इतना अनिश्चित और अदृश था कि उसके सुनमाने में मन लगता ही न था ।

## [ चीन ]

रात काली थी । समुद्र में लूफान था । लहरें आकाश को छूती थीं । प्रलय — अमी अमी दो मिनट में प्रलय होने वाला था ।

धरती गहरी निद्रा में शुष्य के द्वार पर साधा हुआ था । उसके भीतर जमीन हिलती थी ऊपर आसमान चक्कर काट रहा था ।

उसने देखा—महासागर को नुनीली बेहर वह हृद पका ।  
 मन्दका देकर बेहिय तीव्र थी । अन्तर्गत जल-वर्षा का सुख-मर में थीरकर  
 वह किनारे का कड़ा हुआ । उसके छिर पर सार्द्ध-भूटा सहस्रान्त था ।  
 किले उसके पैरों के पास पड़े थे । असंख्य सेना उसका विपुल मुने के  
 सिने कैमर थी । उसका हृदय उड़ता रहा था । तलवार कमर में झटक  
 रही थी । चारा तरफ दीर्घ बज रहा था । उनका जकनाह आकाश में  
 गुँब रफ़ था ।

उसने उस विपुल वर्षावर्षा का अर्थ। तरह निरीक्ष्य किया ।  
 एक बार झट्टे को आर देखा आर कहा—दास्ता । इस झट्टे के तंत्र एक  
 विशाल सामाज्य कायम होता । बुनिया ने सभी मिथका स्वाम नहीं देखा  
 था, उतना कहा । वे बड़े बड़े महासागर सुन्दर पर के तालाब होंगे ।  
 तुम इनकी जहरों पर शासन कराग । तुम्हारी आज्ञा के इशारे पर  
 बुनिया कटगी ।

समस्त समा में झट्टे के आगे छिर मुकाना और सम्राट के जकनाह  
 से आकाश हिल उठा ।

सना मार्ग करने का तय्यार जकी थी । किले का कचौरा पर  
 ताज रखी था । उसके झूठने के साथ ही कुछ झनेवाला था । एकमक  
 भगकर शन हुआ । कदी टकलकर जकनाह पर कड़ा हो गया । पैर की  
 बकिर्ष बग ठटी । सामने के दरवाज़े टूटकर भगकर शन के साथ गिर  
 पड़े । वह जकनी सना का आगिरी हुक्म देने के लिये बीड़ा  
 पर चारा आर सिना समुद्र की ऊँची ऊँची जहरों के भीर हुआ

बगरी ]

म था ।

वह दिन का मसोसकर बैठ गया । क्योंकि वह बगरी था ।

## तारा

मामी ने जब हँसते हुए मिठाई उलट दी, तो मैं उसकी बात नहीं समझ सका, पर—‘गल्लू खाने की तब जाहे जितनी मिठाई खे लेना’—कह कर हैगबेग जमीन पर रख दिया और नौकर को बाहर से ब्रह्मचारी खाने का इशारा करके मैं ऊपर कोठे पर जाने लगा। मैंने सुना नहीं, मामी ने फिर कुछ कहा—पर जब झूमकर देखा तो वे हँस रही थी और तारा उन्हें रोक रही थी। उस समय तारा के लगीले नेत्रों के माथ को देखकर मुझे थिराव हा गया कि मैं बात को नहीं समझ सका हूँ—पर मैं कोठे पर ही बसा गया।

आर्य०सी एस०परीक्षा में सम्मिलित होकर मैं सलनऊ से लौटा था। गत बरस एम० ए० काइमल का इम्तहान दिया था, उसके तेरहवें दिन मैरा गोवा हुआ था, तब से तारा केवल एक बार पन्द्रह दिनों के लिये अपने घर गई थी। नहीं तो उसे बराबर बही रहना पड़ा था। मैंने भी सल के कई महीने घर घर ही बिताये थे; लेकिन परीक्षा के एक महीने पहले मैं कुछ खेप समझ कर प्रकाश बसा गया था। उस दिन मुझे पहली बार

मात्स्य पक्षा था कि हर महीने में बस एक बटने पर पर मी अज्ञात रूप से मैं तारा के कितने समीप पहुँच गया हूँ और उससे अलग रहना अब मेरे जीवन की कितनी बड़ी अपूर्वता है ।

लेकिन मैं जल्दा आया, क्योंकि इन्तहाज के लिए तैयार होना था । कल्पि मुझे इसकी ठसनी चिन्ता नहीं थी जिसकी कि मर् माई साइब को । उन्हीं के सिर तमाम पृथ्वी का बाग़ था इसीलिए मेरे मन्त्रिण और परिवार की आवश्यकताओं को वे ही अधिक समझते थे । उन्हींने मुझे घर छोड़ देने की आज्ञा भी थी । मैंने हथ्का न रहने पर मी, उनकी आज्ञा का पालन किया ।

अब मैं घर से चलने लगा था, तारा किबाक का पकड़े चुपचाप खड़ी थी । मैंने मी उस समय उससे कुछ कहा था उचित नहीं समय पर शर के बाहर पैर रखने से पहले एक बार मेरी आँखें अनायास उस ओर चली गई । आ कुछ देखा, कहा नहीं जा सकता । वह व्यमता का भाव । वे सबस मन, उनका संदेश एक कथा थी जो अक्षरशः मेरे दिल में मक़्क हो गई । एक सेक्यिड में उन आँखों ने आ कुछ कह दिया उसी की मीमांसा गाड़ी में छोटे-छोटे मैन करनी आरम्भ की और निरन्तर कर लिया कि अपनी प्यारी तारा को बहुत जल्द अपने साथ रखने का इन्तजाम कर लूँगा । अब उसे इस तरह विभाग का धुक न होने चायेगा, जहाँ कहीं जाऊँगा वह मेरे साथ चायेगी । वह किबागी का प्यार करती है वही तो एक भयाना है । उसके लिये मैं मानस सन्नद्ध लूँगा । क्या मैं उसका भावा और तारा उसकी चार्की नहीं ? क्या हमें अपनी मर्तीजी पर इतना मी अधिकार

मही ! मुझ विरवास है जब मैं भाभी से कहूँगा कि वे अपने तीन लड़के लड़कियों का अपने पास रखें और कियारी का तारा के साथ मेरे दो ता मे मान लेंगी । बस फिर तो तारा प्रसन्न ही रहेगी । वही साधते हुए मैं प्रयाग पहुँच गया । वही भी इम्तिहान के दिन तक मैं तारा की आँखों की व बड़ी-बड़ी बूँदें में भूल सका । मैं उसका स्मरण करके बचैम हा रहा था । मैंने दो तीन पत्र भी लिखे थे, पर किसी का उत्तर नहीं मिला । इससे और भी बितायी । कभी-कभी मैं सोचता था कि जब की बार तारा चकचक कर गई है । वह अनुमान इसलिए और भी बढ़ होता जा रहा था कि मैं चलते समय जानबूझकर उससे नहीं बोला था । इम्तिहान के दूसरे दिन मुझे तारा का लिखा पत्र मिला । उस पत्र पर लक्ष्मी हुई और मैं भी हुआ । मैं उस कबल प्रेम की मूर्ति, सरसता का प्रतिरूप और एक अनाथ बालिका ही समझता था, जो लक्ष्मी के भार से हरदम दबी जा रही है लेकिन उसकी स्मरण कर चुकलता और मायी-जीवन की महत्वपूर्ण क्षण-क्षण का मुझे ठीक दिमाग पता चलता । यदि मैं पहले से जानता, तो मेरा पत्र और भी प्रशस्त हो जाता । उसने लिखा था—अविद्य जीवन के सबसे मुक्त के लिए मरा मौन रहना ही श्रेष्ठ है । धार्मिक उन्माद का मैं कमकर दबाए हुए हूँ और इन्हें बचाना ही होगा । इम्तिहान देकर जब घर आया तो मैं अचानक तरह बताई कि मैं मान नहीं करती । सच्चा प्रेम ही हमारे जीवन का पथ है ।

जब यही सोचने बराबर पहुँचा हुआ मैं लखनऊ गया । कुछ ऐसी लगन लग गई थी जो जीवन की संजीवनी शक्ति-कही जा सकती है ।



उसी अमित ठसाल में मैंने एक एक प्रश्नपत्र किया था । मैंने इन्तहान के बाव एक-दो हफ्ते मित्रों के साथ सदा ही बिताया था, लेकिन अब की मेरे जीवन की बदली हुई हालत ने तुरन्त ही घर चलान का मजबूर कर दिया । अब मैं वहाँ से चला बिना, रास्ते में कई बार सफोचकर ठकित हुई कि बाव में ही ठगर पड़ू । नहीं तो मामी मेरा खूब ही मजाक बनाएंगी । बास्न-बग्घु केराव आदि अब फरिश्तों कहेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा ? इसके अलावा ताप बेचारी को भी कम बातें नहीं सुननी पड़ेंगी । मरी भ्यस्ता से उसे मुहल्ले मर की लकड़िया लुका मारेंगी । पर यह सब कुछ साचते हुये भी मैं चला आया, और घर में पैर रखते ही मावक ने जब बही उपक्रम किया तो मैं मम ही मन कटता हुआ, अपने कमरे में चला गया । कपके ठठठकर बाहर भाई साहब के पास चकर उन्हें इन्तहान का हाल कहाने लगा ।

उसी दिन, मही ठसी रात का जब दीपक की जलती हुई लौ पर निकर पड़िगे निरवार्य प्रेम का राशिनी या रहे वे और ताप मेरे पास बैठी अभिवसित भाव से उसका सुनन में तन्मय हो रही थी उसके बिठासापूरा नेत्रा में उस रहस्य के लिए कई प्रश्न थे, उस विह्वल उत्तरी के लिए अनन्त कौतूहल था और हृदयस्व समवेचना के लिये उसके सुन्दर नेत्रों में ये दा बड़े-बड़े आलू । जीवन की सबसे असूख निधि देते आसुओं की जू दे ही होती हैं या स्वर्गीय अनुभूति का प्रकाशित कर रही हैं । मैंने अचानक उसकी आंखों का ।

आसुओं की जू देँ गालों पर निकर गई और अनुराग रजित

हॉल मुसकरान की अत्युत्तम शांति से भिन्न छोट । मैं उस पर अपने प्रेम की मुहर लगा दी । उस समय उसने मुझे राखते हुए कहा—ठहरा भी, देखो तो बेचारा पतिव्रता अभी-अभी जल मरा है और वह वृद्ध भी वहीं जा रहा है ।

मैंने कहा—जाने दो । वह प्रेम करता है ।

वह पतिव्रता का दीपक पर बारबार गिरना देखते हुए बोली—वह प्रेम करता है—अपना प्राण बेकर—मैं भी तो तुम से प्रेम करती हूँ । पर मेरा प्रेम इसके प्रेम के सामने कितना क्षुद्र है । क्या मानवीय प्रेम में ऐसा आदर-आदर सम्भव नहीं ।—मैं सभी जीवन के इस मार को अपरिचीन अमिताभानों के साथ बहुत किये जा रही हूँ । गुलामी में मुझे और तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा ।

मैंने कहा—अन्यथा और अशांत प्रतीत होनेवाले मानवीय प्रेम के जो आदर दिखाई देते हैं, वे भी अवहेलनीय नहीं ।

वह कुछ और भी कहना चाहती थी पर मैं बीच ही में पड़ उठा—मामी क्या कहती थी तारा ।

उसकी तरत पर लज्जा की लालिमा स्पष्ट हो गई । और उसने सकुनते हुए कहा—ये ही जानें—और तुमने वा वाग कर दिया है ।

यह जवाब तो मिल गया । मैंने कुछ-कुछ अनुसाम किया । कोई ऐसी बात है जिसे वह अभी बताना नहीं चाहती ।

दूसरे दिन तारा परोस रही थी, और मैं किशोरी के साथ कामा जा रहा था तब मामी ने बुलाया कहा—साका भी, इस तरह काम नहीं

जैसेगा । वह समझ सकता कि मैं माननेवाली नहीं हूँ । इस ब्रजल हस्तदान की ब्रजल और पेशगी बाबत लिये बिना मैं किसी तरह नहीं मान सकती ।

लेकिन माभी की इन बातों से भी मुझे संदेह ही रहा जब तक उन्होंने साफ-साफ नहीं कह दिया । जब मुझे निश्चय हो गया तो किसी तरह की विशेष इच्छा न रहते हुए भी मुझे अभिवादन का आनन्द हुआ । जब तक मैं अपने आपको कच्चा ही समझ रहा था आज पहली बार विटा होने की कल्पना का विचार मुझे कितना मधुर, कितना आनंदिक और कितना मनोहर मालूम हुआ । मेरी नस-नस में, मेरे राम राम में उत्साह और आशा के अक्षर उबल उठने लगे । कल्पनाओं के स्वर्ण जाल में मेरा हृदय झुक से उकर झूलने लगा । आनन्द का झटकर उस दिन मुझे कुछ दिखाई ही नहीं पड़ा । एकान्त में जब तारा से मैंने ईश्वर पूजा, ता वह केवल सहाकर रह गई । उस क्षण में का कन्ध भाव था, उसे मेरे मेम उस समय न देख सके । मैंने नहीं समझा कि प्यारी दास सम्मुख मेरे प्रेम का प्रतिग्न बनना चाहती है, उसने जिस आकाश को पसन्द कर लिया है, उसे ही जाने की वह सब तैयारी है । मैंने एक क्षण के लिये भी अपनी प्रियतमा के अपूर्व सरसों की बात नहीं सोच पाई । रात दिन नये नये हरादे, नई नई स्त्रीयें तैयार कर रहा था कि इन्तहा में पाद होकर, निपुक्ति होमे पर बाहर आऊंगा । तारा अपनी गोद का क्लिप्तोमा लेकर मेरे साथ चलेगी आशा ! केनी सुन्दर वह नहीं होगी । टा दिनों के सभी प्रभाव और सभी संघर्षों अपनी निराली शोभा लेकर आयेंगे ।

एक दिन वह बच्चा आठ० सी० एस० हांगा था मैं नहीं कर सका उसे  
 वह करेगा उस दिन तारा कितनी खुशी होगी ।  
 मेरे इम्तहान का मतीबा था गण्य ।

पहला नगर मेरा आया । इन दिनों तारा पीली पड़ गई थी ।  
 ठीकी दशा में उसने वह समाचार सुना, वह हँसी । इसके बाद उसे दो  
 दिनों तक कुत्तार रहा । मैंने समझा बेइत खुरी की बगल से ही ऐसा  
 हुआ है । वह झुकी हो गई तो मैंने एक दिन उसे भी बताया कि अब  
 सीमा ही उसे मेरे साथ बाहर चलना पड़ेगा । उसने समझी बात लीचकर  
 मौन धारण कर लिया । मैंने समझा उसकी स्वीकृति हो गई, पर शक  
 वैसा नहीं था ।

त्रिम दिन चिट्ठी कलकत्ता का निमुक्ति पत्र मेरे पास पहुँचा, उसी  
 दिन नवमास शिशु का जाँककर मेरी प्रियतमा न जाने कहाँ चली गई ?  
 मैंने उसी के पास गिरकर अपना सिर पटक दिया । माई और भावज ने  
 बलपूर्वक मुझे उठा लिया । मैंने लगे होकर देखा तो जान पड़ा तारा  
 गुप्तचर रही है उसके पास चलते हुए पीपक पर पतने गिर रहे हैं और  
 वह मुझसे कह रही है गुलामी में मुझे और मुझे क्या आनन्द  
 मिलेगा ।

इस बार मैंने उसका आशय समझा । निमुक्ति पत्र के  
 आनन्द दुबड़े करके मैंने कुछ दिनों और तारा के प्रेम-पत्र पर,  
 सच्चे आनन्द पत्र पर चलने का प्रयत्न कर लिया । मुझे फिरवास है  
 मेरी प्रियतमा तारा को इसके सतोष होगा और वह मेरे शपराह को

वास्त ]

जमा कर देगी । अन्त में हम दोनों का इस धार सन्ध्या, अमन्त मिलन  
अनुरूप होगा ।

## निरुद्देश्य

हुड़ी का दिन था, और मजे की बरती बहार । मैं घर से निकलता निरुद्देश्य । दहलकर चरा बाहर लकड़ घर गया । फिर बूमकर गल्ली में आया । एक मित्र को पुकारा । चरा हुआ, बोला । वह बोले—  
“आओ बैठो कुछ काम की बातें हो ।”

मैंने कहा—“काम के लिए हमसे के और दिन हैं । काम की बहाने हो, घर ।”

“अच्छी बात है ।”

बनो छुईत हुई । जान बची, लासों पाये । मित्रों का एक सूख मूँका आया । मैं कड़ी पतल की तरह डही तरफ को ठक गया । बड़ा मजा रहा । लड़ गपराव हुई । कुपहरी को एक नींद से गन्ध था । वह शरारत अब दूर हुई ।

हापर के कपोंवाले की जगह आजकल धाड़किलवालों ने ली है । मित्र बोला, हाथ में हैकिल पकड़े हवा में ठके लय रहे हैं । मैंने पुकारकर कहा—“अजीबो” -- ।”

देखा, रुक गये—ठतर धाये । मुस्कटाकर गीर पूछे ही कहा—

“बरा वो ही होस्का की तरफ ।”

मैंने बबान दांत से काटकर पूछा—“मैं भी क्या सकता हूँ ?”

“कस्तूर ।”

बाहा बलू, पर रुक गया । एक साथ कई सपने लग गई ।

बह ईंसकर क्या बिबे, मैं रह गया । तब हुआ, बूझने की ठहरी । सब सोम क्या पड़े । मेरे पैर में पुरानी जूते, छिर की बोपी नवतरब पर भर जाने की फुर्लत कहाँ, और हवाचल भी नहीं ।

साबे बार बज चुके थे । इसकी धूप हवा का आर्तिगन करती हुईं हुई नहीं माझूम पकती थी । हरे हरे सेतों की जडा फुली सरसों का आनंद नाच । नीरव, मिर्जीव प्रकृति में सखीव कसिल, साकार सौंदर्य और अनंत संगीत सुन्वभाव से किसी आकाश आगोचर के चरखों में अपनी आबलि अर्पित कर रहे थे ।

मदर की हरी-हरी छीमी चुम्बते हुये हम सोम जैसे । लहरों को झूकर आते हुये अनिला और आपस के विमोद से पच-भम भी झुका हो गया ।

मंत्रों का रस छूक गया है । आनकल बस कन्ध है । बही इतिहास का गर्वन, बही विचार का कसबाछाप । लेकिन मरी के निच कच्चार में हम का रहे थे, बहा प्रकृति का बेमन छुट रहा था । भी सारा हो गया । मित्रों की बहबहाहद में मन मचलकर कहने लगा—एक कुटी बने । बही रहकर रस बहती हुई कविता को इहम के पनों में बढेर लिखा जाय ।

दूर चले के जेत से एक किसान के लड़के ने गाथा—“उठु अलबेसी  
 दुहारी आउ अगमा । उठु ”। मासूम बच्चा, लचमुल ही अलबेसी  
 मक़तव मस्त नहीं इच्छा रही है । बच्चे का कायल मोला बंद उस मधुर  
 कर्तव्य की आर ठेक रहा है ।

[ दो ]

कहाँ कोई लक्ष्य नहीं वहाँ निरक्षय भी नहीं । अनिश्चय चले । पूरव  
 बन्धुन, उत्तर-बन्धुन-आवृत्त ही कोई दिशा छुड़ी हो । किसी से पूछना  
 दुर्मय और कुछ बतलाना माय । सभी बुधबुध अचानी-अपनी कुन में,  
 मस्तानी जाल से, चले जा रहे थे ।

मरु की क्षीमीं चुक गई । कच्चार की विस्तार-सीमा घमसत हुई ।  
 ईर्षी की संशयता को ठेक लगी । लौटकर देखा—ओहो ! घर तो दूर बूझ  
 गया था ।

कोई हल नहीं, यालु किनारों पर चढ़ने लगे । पैर में चट्टी भी न ।  
 उसका पुराना तस्मा ठकल गया । कहीं आकलत हुई । मित्र कहलाने-कलसे  
 शत्रुओं ने एक कहकहे से मेरी परेशानी का स्वागत किया । छत्र करके  
 आगे बढ़ा । हो कहलम बाद ही एक मरकटिये पर पैर पड़ गया । कटि  
 चुन गये । मैं उलझ गया, फिर बैठकर उगई निकालने लया । तबतक  
 मित्र मँडली में आमुर्वेद का विचार उपरिपठ हो गया । बाद नहीं आता,  
 किन किन-रंगों के सिने मरकटेश के पीछे, पत्ते छीर चढ़, धब का ठस्केल  
 होने लगा । कांटों से फुल्लत पाकर मैंने कुछ कुछ मलाहट के साथ कहा—



मात्स्य पकता है, अब कल्पवृक्ष की जगह इसी मापवीसता ने ली है ।

सुतस्यार की तरह स्वच्छ मुक्कुराहट का बेवर्षी से बिखेरते हुए किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ । सुतस्यार समस्त पहा, कल्पवृक्ष की बिया के जो कुछ पत्ते जा गये थे, वे सब इन्हीं हाथों में बरामद कर लिये हैं । अब विषय ही कुछ गन्ध तो मटकड़ेया ही क्यों, नागफली उठक्यरा, बूर और ब्रह्मवर्षी सभी बारी-बारी से आने लगे । सभी की सेवन बिबि की शास्त्र-सम्मत विवेचना मय अनापान के होमे लगी । किसी ने मँबरी भ्रूङ्ककर काँटे चुमाये, किसी ने फूल तोड़कर कड़वे दूध में हाव बिपबिपा सिवा । मेरी बारी आई । खूब हँसा, लुब बनाया । एक-एक की अन्तरी तरह नवर ली । बी बुरा हो गया । सब लाग आगे बढ़ गये । बके सो सिर्फ एक पनबद पर । गर्ब की बहुर्य छण्डित हिलियों की तरह बृषद के भीतर से एक वृषदी का सुह पाकने लगी । पानी भरनेवाली मैं पानी मरना ठेक दिया । प्यास तो सभी की शास्त्र सभी का, पर किससे कहते । परदे की प्रया का मम-ही-मम भाव करते हुमे चल पड़े । गर्ब में प्रवेश किया ।

भकभूके की बुकाल मिली । हरे-हरे अनाम भूके जा रहे थे । शहर की टोली कर बी बलपाम । कुछ पैसों के बने सुनाये गये । मोलीमल्ली सलीली मुबली ने ममक-मिली बगीर पैसों के ही बेकर ठण्डू-सम दिलों को कुतसता के रेशमी आगे में मापी कर लिया । अगर आगे जाने की ठण्ड ठण्डकता न होती, तो कुछ देर वहीं बठकर बने चबाये जाते ।

गर्ब के वृषदे सिरे पर जाकर एक ससली साधु की कुटी में विभाज किया, जल पिया और की थोकी देर तक बेदाँठ-बर्ष । पने

बगिचे के अ बल में, बिराल बट के नीचे पक्षियों के बोसले की तरह, वह कुटियां थी। बराबरी देर में समस्त बिकार तिरोहित होकर अ ठहराव स्वप्न निर्मल ॥ गन्ध ।

## [ छीन ]

बिन अपने ठगले फुले हुए बच्चों को समेट रहा था और संभव भूमिल उच्छीन का उतारकर बैठ रही थी। चलाचली का वक्त था। स्वर्णर विहग अपने अपने नीकों में आभाव लेने जा रहे थे। हम लाग भी चले।

बाहर द्वार से बरबादे लौट पड़े थे। अपनी ता कह सकता हूँ, मेरा हृदय अपनी गबोड़ा पत्नी की आकुलतामयी प्रतीक्षा का अनुभव कर बैक हो रहा था।

बिनोदिनी पावठी के समी सदस्य अरुह्य जपानी के रंग में रंगे थे, सिर्फ महामात्र गोकुलचन्द्र उर्फ बीनतान ही एक ऐसे थे, बिन पर बुझाये का उन्मत्त साव्य पड़ चुका था। वह हम लोगों के नेता थे, मुझों के—हर बात में हर काम में। क्योंकि उनका बिल अभी तक पूर्ण स्वस्थ और अभिन बना हुआ था। वे आगे आगे बबल मार्ज करते हुए चले। लाग मातगाड़ी के बच्चों की तरह उनका अनुसरण करने लगे।

एकएक हाव हो गन्ध। मिछर बीनतान अपने समवयस्क किसी लुल्ल से उल्लभ पड़े। राम-बुहार बुई। कुशल-खेम पूछी। आमादक ने कहा—यही जा रहा हूँ। गाँव के पोस्ट-आफिस में लकड़ी है म।

मिछर बीनतान में गंभीरता ॥ सिर हिलाया। मातूम हुआ, किस

मात्स्य पद्धति है, जब कल्पवृक्ष की जगह इसी मात्स्यीशता में ली है ।

मुक्तकाल की तरह स्वच्छ मुक्तकाल को मेढ़री से विस्तरेते हैं किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ । जबभर समस्त पक्षा, कल्पवृक्ष की विद्या के जो कुछ पन्ने ला गये थे, वे सब इसी लोगों ने बरामद कर लिये हैं । जब विषय ही झिड़ गया तो मदकटैया ही क्यों, नागकनी छटक्यता, बूढ़ और ब्रह्मर्षी समी बारी-बारी से आने लगे । समी की सेवन विधि की शास्त्र-सम्मत विवेचना सब अनोपान के होने लगी । किसी ने मन्त्री भड़ककर कटि चुमाने, किसी ने फूल तोड़कर कड़वे दूध में हाव बिपविषा सिवा । मेरी बारी आई । खून रसा, खून बनाया । एक एक की अन्धी तरह लहर ली । भी सुश हा गया । सब जोय आगे बढ़ चले । बके तो सिर्फ एक पनपट पर । गंध की बहुरं सशक्ति हितिये की तरह बुध के भीतर से एक घुंटी का मुह टाकने लगी । पानी भरनेवाली ने पानी भरना रोक दिया । ध्यस तो लगी थी शायद समी को । पर किसीसे कहते । परदे की प्रथा का मन-ही-मन आदर करते हुये चल पड़े । गंध में प्रवेश किया ।

मकमूँके की बुकान मिली । हरे-हरे अनाम सूँजे जा रहे थे । शहर की टोली का भी ललचावा । कुछ पैसों के बने मुनाबे गये । मोक्षीमाली छखोली सुवती ने नमक-मिर्च वगैर पैसों के ही देखकर ठण्डू-जल बिसों को कृतज्ञता के रेशमी जाले में माली कर लिया । अगर आगे आने की ठकन ठसुकता न होती, तो कुछ देर वहीं धठकर बने बनाने जाते ।

गंध के बुधरे सिरे पर जाकर एक ललगी साधु की झुटी में विजाम किया, जस विषय और की मोड़ी देर तक मेढ़री चर्चा । बने

बगीचे के आ बल में, विशाल आ के नीचे पक्षियों के बोझों की तरह, यह  
 कुटिया थी। अचानक देर में समस्त विकार तिरोहित होकर आ तरहकर स्वप्न  
 निर्मल हो गया।

[ तीस ]

दिन अपने ठण्डे ठण्डे हुए बच्चों को समेट रहा था और संभव  
 भूमिगत उत्पीड़न को उत्तरकर चेंक रही थी। अचानक का एक था। स्वर्णद  
 विरग अपने-अपने मीलों में आगम लेने आ रहे थे। हम लोग भी नहीं।

बाहर द्वार से आवाह लौट पड़े थे। अपनी तो कह सकता हूँ,  
 मेरा हृदय अपनी मजबूत पत्नी की आकुलतामयी मतीका का अनुभव कर  
 बैचन हो रहा था।

विनादिनी गायत्री के सभी उत्तर आहूत आधारी के रंग में रंगे थे,  
 विरग महामय येकुलचर उर्ध्व नीलतान ही एक ऐसे थे, जिन पर बुझाने का  
 उत्पन्न एक पक्ष लुका था। वह हम लोगों के मिला थे, सुखी थे—हर  
 बात में हर काम में। क्योंकि उनका विश्व अभी तक पूर्ण स्वयं और अज्ञान  
 का हुआ था। वे आने आने बसत मार्ग करत हुए नहीं। साग मालगाड़ी  
 के बच्चों की तरह उनका अनुसरण करने लगे।

एकाएक हास्य हो गया। मिथर नीलतान अपने समकक्ष किछी  
 कष्ट से उत्पन्न पड़े। राम-तुहार हुई। कुल-चोम पड़ी। आगस्त्य ने  
 कहा—क्यों आ रहा हूँ। गंध के बोझ-आफिस में लड़की है न।

मिथर नीलतान ने गंभीरता से फिर दिलाया। माझूम हुआ, कैसे

माखूम पकटा है, जब कल्पवृक्ष की जगह इसी मापवीक्षता में सी है ।

मुक्तपरा की तरह स्वच्छ मुक्तपराह्य का नेवटी से मिलते हुए किसी ने कुछ कहा, किसी न कुछ । सपना समझ पड़ा, कल्पवृक्ष की दिशा के जो कुछ पत्ते लगे गये थे, वे सब हरी लोचने ने बराबर कर लिये हैं । जब विषय ही झिड़ गया तो मदकटेरा ही क्यों, नागकनी ऊँठकपरा, गूँद और ब्रह्मदेवी सभी बारी-बारी से खाने लगे । सभी की सेवन विधि की शास्त्र-सम्मत विवेचना सब मनोपान के होने लगी । किसी ने मँझरी मँझकर कोंटे चुमाये, किसी ने फूल तोड़कर कड़वे दूध में हाथ बिपबिपा दिया । मेरी बारी आई । कुछ ईसा, लव बनाया । एक-एक की अच्छी तरह खबर ली । बी बुरा हो गया । सब लोग आगे बढ़ गये । बके तो सिर्फ एक बनघट पर । गाँव की बगुएँ सशक्त हिरणियों की तरह बूँद के मीठ से एक दूसरी का मुँह ठाकने लगीं । पानी भरनेवाली में पानी भरना ठोक दिया । प्यास तो लगी थी शायद सभी को । पर किससे कहते । बरबे की प्रथा का मन-ही-मन आदर करते हुये बस पड़े । गाँव में प्रवेश किया ।

मकभूँजे की दुकान मिली । हरे-हरे अनाज सूँजे जा रहे थे । शहर की देखी कर की जगजागा । कुछ पैसों के बने मुनाये गये । मोतीभासी छोटोनी बुवठी ने समक-मिर्चें बगीर पैसों के ही देकर अर्ध-राज दिलों को कुतबता के रेशमी धागे में लपकी कर दिया । अन्न आगे आने की डरकट अनुकता न होती, तो कुछ देर वहीं बठकर बने बनाने जाते ।

गाँव के बुरे धिरे पर जाकर एक ससगी साधु की कुटी में विनाश किया, बस पिया और की पोकी देर तक बेदांत-बर्बा । बने

बगीचे के झरने में, विद्यालय बर के नीचे पश्चिम के बोंसों की तरह, यह कुटिया थी। अगली देर में समस्त विचार तिरोहित होकर झटाकर लम्बे निर्वृत हो गया।

## [ तीस ]

दिन आपने ठगते हुए हुए बच्चों को समेट रहा था और संभव भूमिगत उत्तरिण को उतारकर घोंक रही थी। चलाचली का बहक था। स्वर्णद विद्या आपने अपने बच्चों में आनंद लेने जा रहे थे। हम सांग भी चले।

बाहर हार से चरबाह लौट पड़े थे। आपनी तो कह सकता हूँ, मंगल हृदय आपनी नबोला पत्नी की आशुलतामयी मन्त्रीका का अनुभव कर बैचन हो रहा था।

विश्वोद्विगी माय्डी के सभी सदस्य अहहक आपनी वि रंग में रंगे थे, सिर्फ महात्मा यशुलतामयी उन्हें भीमताल ही एक ऐसे थे, जिन पर कुड़ापे का जलजल एक पक्ष लुका था। वह हम लोगों के नेता थे, कुटुरे थे—हर बात में, हर काम में। क्योंकि उनका दिल अभी तक पूर्ण स्वस्थ और बचान बना हुआ था। वे आगे आगे डकल मार्ग करते हुए चले। साथ मासगाकी के बच्चों की तरह उनका अनुसरण करते लगे।

एकएक हास्य हो गया। मिस्टर भीमताल आपने समभवत्क किसी श्रुत से उत्तमक पड़े। राम-अहार हुई। कुशल-सोम पृथ्वी। आगस्त्य ने कहा—यही जा रहा हूँ। गंध के बोझ-आफिल में लकड़ी है म।

मिस्टर भीमताल ने गंभीरता से सिर हिलाया। माय्म हुआ, जैसे

वह सब कुछ जानते हैं।

राज्य साधकों की दशा का उन्हें अनुमान था इसलिए फिर कहा—अच्छा बाइए। बहुत दिनों से आपका पुरान बजने को नहीं मिला, किसी दिन मकान पर लाइएगा।

“हां-हां, बल्क” —कहकर वे अपनी राह लगे और हम सोना घर की तरफ मुड़े। मैंने मि बीनतान से पूछा—वह कौन थे बज्ज की पेटी में चूरन था।

बीनतान—हां, इनका बका सबेदार और बका लम्बा किस्ता है। बेचारे आनकल चूरन बेचते हैं।

एक साथी ने कहा—हां, हाकल से माहूम पकठा है, बड़े गरीब हैं।

[ चार ]

जब पहुँचने में देर थी। मेरे आग्रह से बीनतान मध्यम ने किस्ता आरम्भ किया, कहा—बीस बाईस बरस पहले वह कहीं से बरस कर अपने वहाँ बाँकलाने में आया था। उसी समय एक और बाबू भी आया। दोनों ने परदेही, दोनों ही ने अनेके। मुहम्मद कुछ गई। साथ ही-साथ रहने लगे—मित्र मित्र की तरह, मार्ग-मार्ग की तरह। एंटी भी साथ, रस्ना भी साथ ही, और गणशप भी साथ ही। मजा था—सिर्फ मजा।

कुछ दिन बाद दोनों अपनी-अपनी किशों को भी ले आये। एक बड़ा-सा मकान निकल गया। ऊपर-ऊपर के कमरे बाँट लिये गये नीचे-नीचे के।

बैसा पुरुषों में मेज था, उससे अधिक किशों में हो गया। एक

हूसरी के बिना बच-भर कम न होती । दोनों मित्र यह बैक-बैककर मन ही-मन झुठ होते, मुलकित खीर प्रसन्न होते थे । दोनों परिवारों को अपने-अपने घर भूल गये थे ।

कुछ दिनों बाद इन्होंने अपने मित्र खीर सायी को नवीन सृष्टि की रूपना पर बधाई दी । उन्होंने टुटकर कहा—आशा है, मुझे भी खीर ही ऐसा अचरित मिलेगा । दोनों की भीमतिव्य सुन रही थी । बड़ा ठमाया रहा । मन ही-मन कुठ होकर भी दोनों ही अपने-अपने कुछ स्वामियों से रुठ गये ।

इसके मित्र अपनी बली को घर से जा रहें थे । इसकी पत्नी की राय के कुत्सक इन्होंने रोक दिया कहा—अजी, वहीं रहने दो । घर क्या है, मेरी जी सज कर लेनी ।

समय हो चुका था । बच्चा दो-चार दिन में होने ही वाला था कि इसके तबादले का हुक्म आ गया । बीबीस बच्चे में दो छोटी मीन बहूच कर पार्श्व लेना था । बड़ी आकलन आ पड़ी । मित्र बचपन गये । मित्र की स्त्री अपनी असहाय दशा का अनुमान करके रा बड़ी ।

आखिर तब किस—कुछ दिन के लिए अपनी को वहाँ छोड़कर चले जायें । मित्र ने सप्तर्ष्य इसके मेहरे की तरफ देखा, दोनों ही निर्वर्ण स्तब्ध रह गई । मित्र की जी ने तो अनेक व्यवसाय दिये ।

यह जल पड़े । कुछक मित्र स्टेशन तक साथ आकर इन्हें खड़ी घर बिठा गये ।

आठ बस दिन बाद इन्होंने अपनी जी की चिट्ठी मिली—बीबी का



वह सब कुछ जानते हो।

शायद साधियों की वशा का ठगै अनुमान था, इसलिये फिर कहा—अच्छा बाइए। बहुत दिनों से आपका चूरन बख्शने का नहीं मिला, किसी दिन मकान पर लाइएगा।

“हां-हां, बकर —कहकर वे अपनी राह लगे और हम सोनबर की तरफ मुड़े। मैंने मि बीनतान से पूछा—वह कौन थे बख्त की पेटी में चूरन था।

बीनतान—हां, इनका बका मन्सूर और बका लम्बा किस्ता है। वेपारे आबकल चूरन बेचते हैं।

एक साथी ने कहा—हां, हासल से माखून पकटा है, बड़े गरीब है।

[ चार ]

कर पहुँचने में बेर थी। मेरे आग्रह से बीनतान महारज ने किस्ता आरंभ किया, कहा—बीस-बाईस बरस पहले वह कहीं से बहस कर अपने वह डाकूजाने में आया था। ठीकी समय एक और बाबू भी आया। दोनों ने परदेसी, दोनों ही ने अपने-अपने। मुस्मस कुछ गई। साथ ही-साथ रहने लगे—मित्र मित्र की तरह, भाई भाई की तरह। छोटी भी साथ, रहना भी साथ ही, और बचपन भी साथ ही। मना था—छिर्के मना।

कुछ दिन बाद दोनों अपनी-अपनी छिर्के को भी ले आये। एक बड़ा-सा मकान स्थिर मकान। ऊपर-ऊपर के कमरे बाँट लिये गये नीचे-नीचे के।

वैसा पुरुषों ने मेला था, उससे अधिक स्त्रियों में हो गया। एक

दूसरी के बिना क्षण-भर कल म होती । दोनों मित्र यह खेल-खेलकर मन ही-मन कुछ हाते, पुकड़िष्ठ और प्रसन्न हाते थे । दोनों परिवारों का अपने अपने घर भूत गये थे ।

कुछ दिनों बाद इन्होंने अपने मित्र और साथी को नवीन सुविधा की दृष्टि पर बसाये दी । उन्होंने दसकर कहा—आशा है, मुझे भी दृष्टि ही देखा प्रचुर मिलेगा । दोनों की प्रीतिष्ठ तुन रही थी । बड़ा तमाशा रहा । मन ही-मन कुछ होकर भी दोनों ही अपने-अपने कुछ स्थानियों के रुठ गये ।

इनके मित्र अपनी पत्नी का घर लौटा रहे थे । इनकी पत्नी की राप के अतिविष्ट इन्होंने रोक दिया कहा—अभी, नहीं रहने का । घर क्या है, मेरी को सब कर लेगी ।

समय ही चुका था । बचता दो-चार दिन में होने ही वाला था कि इनके तमाशों का दुःख आ गया । बीबीस बन्त में दो ही मील पहुँचकर चारों होता था । बड़ी आफ़त आ पड़ी । मित्र बचप गये । मित्र की लौ अपनी अस्तित्व दृष्टि का अनुमान करके लौ पड़ी ।

आखिर तब किन्तु—कुछ दिन के लिए पानी का पछे छोड़कर भोजे चारों । मित्र ने चारों इनके बहरे की तरफ देखा, दोनों ही निर्विष्य छात्र रह गये । मित्र की लौ में लौ अनेक कथवाय दिये ।

बह बल पड़े । कुछ मित्र स्थान तक साथ आकर इन्हें गायी पर बिठा गये ।

आठ दस दिन बाद इन्होंने अपनी लौ की पिट्टी मिली—बीबी का

वह सब कुछ जानते हो।

शास्त्र साधियों की वशा की उन्हें अनुमान था इसलिए फिर कहा—अच्छा जाइए। बहुत दिनों से आपका चुरन बताने को नहीं मिला किसी दिन मकान पर लाइएगा।

“हाँ-हाँ, बकर —कहकर वे अपनी राह लगे और हम कोय पर की तरफ मुड़े। मैंने मि० बीनटान से पूछा—यह कौन वे ब्राह्मण की पंढी में चूरन था।

बीनटान—हाँ, इनका बड़ा मजेदार और बड़ा लम्बा किस्ता है। बेचारे आजकल चूरन बेचते हैं।

एक छापी ने कहा—हाँ, हास्य से माहूम पड़ता है, बड़े गरीब हैं।

[ चार ]

कर पहुँचने में देर थी। मेरे आग्रह से बीनटान मछमन ने किस्ता आरंभ किया, कहा—बीस-बाईस बरस पहले यह कहीं से बरस कर अपने वहाँ बाकसाने में आया था। उसी समय एक और बाबू भी आया। दोनों ने परदेही, दोनों ही वे आये। शुभम्भुत कुछ गई। साथ ही-साथ रहने लगे—मित्र मित्र की तरह, भाई भाई की तरह। रामो भी साथ, रत्ना भी साथ ही, और गणेश भी साथ ही। गया था—सिर्फ गया।

कुछ दिन बाद दोनों अपनी-अपनी स्थितियों को भी हो आये। एक बड़ा-सा मकान प्राप्त गया। ऊपर-ऊपर के कमरे बाँट लिये गये नीचे-नीचे के।

बैसा पुरुषों में मेला था, ठण्डे आँखों में हो गया। एक

हूसरी के बिना घब भर कहा न होती । दोनों मित्र वह देक-देककर मन ही-मन कुछ होते, पुनर्कित और प्रसन्न होते थे । दोनों परिवारों का अपने-अपने घर भूल गये थे ।

कुछ दिनों बाद इन्होंने अपने मित्र और साथी को नवीन सृष्टि की सुचना पर बर्खास्त । उन्होंने दसकर कहा—आशा है, मुझे भी शीघ्र ही ऐसा अवसर मिलेगा । दोनों की नीमतिथ सुन रही थी । कहा लगाया रहा । मन ही-मन कुछ होकर भी दोनों ही अपने-अपने धुइ त्वाभिष्टे से रुक गई ।

इनके मित्र अपनी पत्नी को घर ले जा रहे थे । हमचीपत्नी की राव के मुताबिक इन्होंने रोक दिया, कहा—बच्ची, वहीं रहने दो । घर क्या है, मेरी की सब कर लेगी ।

समय हो चुका था । बच्चा दो-चार दिन में होने ही बाला था कि इनके तबायले का हुकम आ गया । चौबीस घन्टे में हो ही मील पड़कर चारों होना था । बड़ी आकल आ पड़ी । मित्र बचता गये । मित्र की स्त्री अपनी आसहाय दरा का अनुमान करके ११ पड़ी ।

आखिर तब किन्तु—कुछ दिन के लिए पत्नी को पछे छोड़कर चले जाय । मित्र ने सारबर्ष इनके चेहरे की तरफ देखा, दोनों ही स्निग्ध स्तम्भ रह गई । मित्र की स्त्री ने तो अनेक कम्पवाह दिये ।

वह चले पड़े । कुछ मित्र स्टेशन तक साथ आकर इन्हें गम्भीर पर बिठा गये ।

आठ बस दिन बाद इन्हें अपनी स्त्री की पिट्टी मिली—बीबी का

हाल बहुत खराब हो रहा है । बच्चा नहीं हो रहा है । मनोहर बाबू सोचते हैं आपरेशन हा जाय । कहीं बीबी को कुछ हो न जाय । उनकी सुरी बर्या है ।

उधे दिन पाँकी डेर बाद मिक्कर मनोहर बाबू का तार मिला—  
बी का स्पर्शास हो गया । आपरेशन का कोई फल नहीं हुआ ।

तीसरे दिन फिर बी की चिट्ठी मिली । उसने लिखा था—तार  
मिल चुका होगा । बीबी की मुसु के कारण मेरा तो दिव्य दूट गया है ।  
मनोहर बाबू का तो हाल बे हाल है । पिछले तीन दिनों से वे बेहोश पड़े हैं ।  
आम कुछ-कुछ सुसार मी है । ईस्वर ! पता होना है !

बह बेचारे बड़ी आफत में पड़े । ऐसी बधा में बी का लेने  
कैसे पहुँच जाय ? मर्य जाकर लर्च करने की सामग्य नहीं । पत्र का  
उत्तर दे दिया । शीम ही लुट्टी लेकर पहुँचने का सिल दिया ।

आठ दिन बाद दरखाला ही । कुछ मम्ह हुई लेकिन बड़े दिन  
की लुट्टियों के बाद । बात कितने ही दिनों को ठल गई । पाँच का सात  
बनसरी को रेल में सवार हाकर वहाँ पहुँच गये । इक्का किन्ना, छीबे पर  
का पहुँचे । पर घर में तो बड़ा-सा ताता पड़ा था । बड़ोसियों से  
पूछते कर-स्य लग्य । बस, डाकलाने की तरफ भागे ।

डाकलाने का मी कायकल्प हो चुका था । सब मसे-मसे बाबू  
थे । पता किन्ना, उत्तर मिला—बाबू मनोहरलाल का पदादला हो  
गया है । पदादला मी गजबीक नहीं तीन छी मील दूर । कालों पर  
बिरास बड़ी हुआ ।

आप पूरा मे मित्र परिचय गये । और छी का कुछ बता नहीं, किसे दुई । आकाश बूम गया, धूमिल दिखने लगी, मस्तिष्क चकरा गया, की छनछना आवा । माथे की दाढ़कर बाहर बेच पर ही बैठ गये । अन्त बेर में एक पुराने पोखरी में आकर पहचाना । बंदगी करके पूछा—बाबूजी, आप कहाँ ?

“वहीं आया था । बाबू मनोहरलाल ।”

“जी हाँ, अब से आप गये, ठग बेचारे पर बड़ी दुसीबें आई । सुना हो हागा उनकी छी ।”

“हाँ, सब सुना है । अभी तो यहाँ आया था ।”

“उम्हें भी आप ही की तरह चौबीस घंटे में चारों ओरों का दुस्म मिता का । बेचारे ताकतोंक मागे ।”

मित्र की निवृत्ति का कथन किया अपनी शरणागत प्रकृति को निस्कार । मन ने कहा—वह खूब ही होकर पहुँचेंगे । उन्हें कुछ ही कम कम किछु छोटी छोटी जा न पहुँचे हो । आगे जाने की कल्पना नहीं समझी । वहीं से पर लौट आये । दो-चार, आठ-पन्द्रह दिन और गये । न कुछ कसर, न कोई लक्ष । हृदय में बेकसी बढ़ने लगी । एक दो-तीन न-बाने किताबें पत्र लिख मारे पर कुछ फल नहीं । अन्तिम छुट्टी होकर चला ही तो पड़े ।

छुट्टी के घंटे रेल में बिठाकर बसास्थान पहुँचे । पास्टमार्किट में मित्र मिले । मुँह नीचे झिपा लिया । हँसी-धुरी का बिकर नहीं । यह भी बैठे रहे । एक-दो बार उनकी छी की चर्चा चलती, वह भी आगे न बढ़

सकी । शाम को मित्र घर चलने लगे, पूछा—चलागे न ?

यह बगैर उत्तर दिने ही चल पड़े । मित्र ने अचानक सामान कमरे में छोड़ दिया था । पहुँचकर कुछ ही सड़कदर्द । दुर्भाग्य से कमरे में एक परिचित व्यक्ति भीतर दरवाजे तक आकर रुक गई । किन्नाह कुछ खड़े, पर कोई नजर न आया । चुपचाप कुछ ही कोशिश कर एक क्षण कर के अन्दर छिप गई । पूरी तरह न देखकर भी उन्होंने पहचान लिया ।

बाहर बैठक में मे पान को ठहराकर मित्र अन्दर खड़े । वस पत्र, बीस-पच्चीस मिनिट की जगह एक घंटे से अधिक हो गया, लेकिन कोई न आया ।

कमरा कितना अत्यन्तपूर्ण हो गया, पर कोई खबर लेनेवाला नहीं । किसी तरह न रहा गया, तो उन्होंने धीरे से अन्दर झाँका । वस भी कोई नहीं । साहस करके अन्दर प्रवेश किया । बालन को पारकर बालन में, बालन से दूसरी बालन में, फिर उसी तरह चुपके से जाने में चढ़ गये । ऊपर कुली छत पर पाँच-पाँच तीन कमरे न । एक कमरे से रोशनी निकल कर छत पर फैल रही थी । दूसरा कमरा अंधेरा पड़ा था । उसी में घुस गये । किन्नाह की बराज में आँख लगाकर देखा—वर्द्धित गुलाबी रेशमी साड़ी पहने इनकी पत्नी मित्र की गोद में बैठी थी । शायद आँसू पड़ा रही थी । मनोहरलास मलबहियं डाढ़े उसके आँसू पोंछ रहा था ।

छोब सकते होगे, उस समय की इनकी दशा । फिर भी बहादुर लड़ा ही रहा । मित्र ने स्त्री का बार-बार प्यार करके कहा—तुम बरती क्यों हो ? मैं जाकर उन्हें भिट्टी दिने देता हूँ । समझदार होगे तो अभी चले

बाँटो, कहीं पर्येशाला में बाँकर डेरा डालेंगे । गड़बड़ करेंगे, तो एा कनके देकर निकल दूँगा ।

क्रोध के कारण इनका शरीर कांपने लगा । हफ्ता ठहर कमरे में ठहारा किन्तु कुछ मिला नहीं । जी में आया, आखी छुब ही पहुँचकर होने के लिए लड़ाकर फाँक डालें, यारें और मर बाँधें । लेकिन फिर कुछ खोजकर समझ गये । सुपचाप काँपते हुए बाहर निकल आये । भीम से होकर बैठाक में पहुँच गये । सब आसपास वहाँ खोजकर सिर्फ एक लोथर होकर निकल रहे ।

कई दिन बाद मनोहर बाबू में एक पत्र लाकर अपनी माई की का दिया । आशीर्वाद बाँचकर उसका भी मारी हो गया ।

### [ पाँच ]

बीलताल महाशय ने कहा—अब जाइए अपनी घर, आते किसी भीर सिन सुनाएँगे । पर किसी ने न माना, ऐसी मजेदार कहानी सुनने के लिए सभी आसुर हो रहे थे । एक जगह उन्हें पकड़कर बिठा लिया गया ।

बीलताल महाशय ने विषय झूकर कहना शुरू किया—जो घर से एक लोडा होकर निकलता है वह सीधे साधुओं में आ मिलता है । हिंदुस्तान में वह प्रथा बहुत पुरानी है । इन्होंने भी अक्सर में सम्मेलन कर लिया । बस्तियों में आना लोक किया, मनुष्यों से मिलना काफ़ दिया । पर्वत बनो में, निर्जन जंगलों में रहकर आत्मा के लिए शांति की खोज करने लगे । वरुँ उपरचर्च में भीत गई । शुरू बस्तियों में हमकी खेहरत हो गई ।



यह स्वामी-पुरुष इनका पहुँचा हुआ महात्मा समझने लगे । इनके मुँह से आशीर्वाद के हा शब्द सुनने के लिए वे अपना सर्वस्व छोड़ने को तैयार थे । लेकिन इनके मन में शंति न थी, आत्मा अन्तर की अग्नि-ज्वाला से भस्मसात हुई जा रही थी ।

अस में यही प्रतीतकर यह व्यक्त हो उठे कि किस अदृश्य शक्ति ने उस समय मेरे हाथों का बलक दिया था मेरी बुद्धि को कुम्भित कर दिया था ! मुझे चेत हो मी छा बैठे ! वे शान्ति आनन्द उठाते रहे और मैं अकर्मस्व बनकर आत्मानन्द में लीन होने की चेष्टा कर ! नहीं, उनके आनन्द का आनन्द उन्हेद किसे वगैर मुझे शंति कहाँ !

विष्णु-कृत पञ्च का सपन आ पल छोड़कर एक दिन महात्माजी फिर ललक छतार की तरह पल पड़े । लज्जामुद्रित मुख-महकल पर वही राग-हँस या और भी वही ईर्ष्या लिपि ।

बाबू मनोहरलाल फिर पुराने बपतार में पहुँच गये थे पुराना ही मकान फिराने पर ले रक्खा था । इन कई बरसों में उनकी अच्छी तरहकी हो गई थी । एक लकड़वा और दो शकटिचर तीन लंछन थे । यहस्वी के समी मुक्त उन्हें प्राप्त थे ।

अस इन्होंने आकर वहीं बस्ती में अपनी भूमी रमाई, तो उपभुक्त बातें शीघ्र ही मात्तूम हो गई ।

चार ह्द दिन में महात्मा के अलख बिराम की चारों तरफ चर्चा होने लगी ! महात्माजी किसी की पार्थ कूते न थे । हाँ, भक्ति माध से पहुँच जाता, बन्ध-बो बन्धे सर्वत्र करता, उसे आशीर्वाद दे देते । उनकी बहुत

जी बाँटें तो अक्षरशः साथ देनी जाती।

एक दिन संध्या के कुछपुटे में लड़के को गोद में लिए एक ली हा लड़कियों के साथ आई। महात्माजी प्राश्नासम कर रहे थे। ली आकर कुछपुटे दे गई। जबल बालक लड़की से मिक कर रो बड़ा। महात्माजी की समाधि मग हो गई। बड़ी देर तक एकटक लड़के लड़कियों की बालिका देखते रहे।

महात्माजी की समाधि खुलते देखकर ली ने मुककर बरसों में सिर मवाक और दुःखित आर्त बँट से कहा—महाराज मैं बड़ी पापिन हूँ फिर भी इस जीवन में मैंने बड़े आनन्द ठठाले हैं। सब इच्छार्थ तो पूर्ण हो चुकी, केवल एक शेष है। वह पूर्ण होगी कि नहीं, यही आपसे पूछने आई हूँ।

महात्मा ने सिर हिला बिना। वह ली को अभी तक पहचान न सके थे। ली ने उची तरह सजल नेत्र अर्पित जीवन की सारी कथा सुनाकर कहा—मगन्, मेरे स्वामी उची समथ, उची अक्षिरी एत में बने मने। आप के आकरय ने मुझे इतना तक रक्ता वा कि मैं कुछ न कर सकी। चौधरे दिन उनका पत्र आया। उसमें उन्होंने मेरे मर्षण पाप-सम्बन्ध को कलने-फूटने का आशीर्वाद दिया था। उची के फलस्वरूप आज मेरी शोध मरी-पूरी है। मगन् मेरी एक ही अमिताया शेष है कि एक दिन मेरे स्वामी आकर अपने आशीर्वाद के फल को देल जाय। मुक्त पापिनी के परमस्थित हृदय को अपने शोशल बरौन से शांत कर जायें। मगन् ।

महात्मा की आँखों से थोड़े-से आँसू, लंबी बिल्ली हुई कटाओं में गिर गये । उन्होंने एक बार फिर तीनों लकड़े-लकड़ियों पर सहरी मजदूर काटकर भरी हुई आधारा में उतर दिया—हाँ, वह अवरुध आयेगे । रोको नहीं, माफ़वती ।

और मैं आमुक्त होकर उल्टा से पुछा—कब ?

“बहुत शीघ्र”

“आसिर, कब तक ? मैं रास्ता देखती-देखती बहुत थक गई हूँ ।”

“निराशा रहो, शान्त रहो ही आ जाव ।” —महात्मा ने अविश्रान्तपूर्ण स्वर में कहा ।

और वही भय के साथ महात्मा के करणों से मरणा देकर अन्धकार में एक ओर चली गई । महात्माजी ने बीपक बुझा दिया । घूनी पर हाथ उलट दी और बट के नीचे आह भरकर लेट रहे । छापी रात करवटें बढ़कर जाती । आँखों से फिस्मा पानी निकल गन्ध, हृदय का फिटना अमृत बुझा गन्ध । बार बार रह-रहकर एक-एक बात की याद आती थी । सोचते थे हाव वह अदीप्त । आह मरते थे और शून्य में बुझ कोचते थे । फूल-से कोमल उम्र बालकों की हल्की-सी आँखों के सामने माफ़ती थी ।

मातृकाल महात्माजी ने गार्ड को बुलाकर कहा मुझसे । घूनी का लफफ़ उल्लासकर पेंक दिया और बिमले कर्मका को अंतिम मरकर करके एक सीधे-साधे नागरिक की तरह उठ खड़े हुये । छह मर गहले

के जरा-सहस्रारी महत्त्वा की मूर्त हो गई, और उनकी सगह आविर्भूत हुए बरसक मंद पुष्प । पूरे ग्यारह बरस बाद एक बार फिर बाबू मगोहराल के दरवाजे की सांझा पीठकर यम्मीर भाव से सहे हो गये । बड़ी लक्ष्मी ने निकलकर कहा—बाबू दफ्तर गये हैं, आप कहाँ से आये हैं ?

इन्होंने कहा—हुमहारी माँ कहाँ हैं ? आपको उन्हें कुछ खानो ।

लक्ष्मी माँ को बुला लाई । आठे ही स्त्री ने पहचान लिया ।

वह बिनाक पकड़कर सबी रह गई । उसकी आँखों से आँसू की धारा झरझर गिरने लगी । लक्ष्मी और लक्ष्मी से वह आँसू न मिला सकी ।

इन्होंने कहा—मुझे पहचाना सरला ?

सरला ने सिर झुकाकर कहा—बस, क्या कीजिए । मैंने क्या पाप किया है ।

इन्होंने कहा—सौर, अब उसका बिक्र करने की जरूरत नहीं । मरम्मत बड़ा प्रबल होता है । मूल काफ़ी ठस बात को, अब मैं हमारे घर मेहमान होकर आया हूँ । बोलो कुछ खातिर करोगी ।

सरला के मुँह से एक भी शब्द न निकला । उसका कलेजा शायद गले में आकर अटक गया था ।

शाम हुई । मगोहर बाबू आये । रात में वे अनायास प्रकट हुए स्त्रियों की तरह मित्र को घर पर कच्चा जमाने देखकर उसका कलेजा घटाय । कुछ कहा नहीं । जाना जाना, चुपचाप सोट रहे । रात को बस बने मेहमान स्वयं आकर उपस्थित हुआ, बोला—मित्र, हो गया छो हो गया । शानि से आत्मा को गिराने की जरूरत नहीं । बस आनन्द से रहो ।

मेरा तो बही आशुषीर्वाह सब का और सब भी है । हाँ एक बात विशेष है अगर इकाकत हो, तो मैं भी घरवाले की कोठरी में पड़ा रहूँ । इन सब लड़कियों का मोह मेरे पैरों में बेड़ियाँ बाल रहा है ।

मनोहर बाबू को अनिच्छा होते हुए भी सम्मति देनी पड़ी । मेहमान का बेरा ठीकी समय से बाहर कोठरी में पड़ा है । वहीं वे सब मीरहते हैं । दिन भर खून बेंचकर कुछ देते या खाते हैं और लड़के-लड़कियों में बाँट देते हैं । सरसा के बच्चे इनसे विशेष दिते हैं । बड़ी लड़की का ब्याह हो गया है । इन्होंने ही कन्यादान किया था । कभी-कभी एक-दो दिन के लिए यह बड़ी लड़की को बेकने बसे आते हैं । काम भी वहीं गये हैं । अब तक यह छोट न आसंगे, छोटी लड़का और लड़की सरसा की काम का बालेंगे । उन लड़के-लड़कियों को अपना ही समझने के लिए मगवान ने इन्हे सुझा दे ही है लेकिन मनोहर बाबू की रुका खाबर सभी तक कम नहीं हुई है ।

## हत्यारा

मृत की सबसे सुन्दर छह हैं उसके सगवान् उन्हें बनाकर फिर वह उसी से कलम की प्रेरणा पाता है । हीनामाय की सबसे सुन्दर छह की मुक्ति साधना । क्योंकि उसीमें उसे इसकी प्रेरणा हुई । जिस दिन उसने सोचा—संसार एक मंज है, एक कायागर है, वहाँ सभी सच्चे सुख रहे हैं, उस दिन उसकी वैदिक आत्मा बंधी की तरह झटपट उठी ।

जिस क्षण से दो हजार साल पहले महात्मा ईसा मसीह पर यह सवे से, जिस विचार से राजकुमार सिखार्व ने कवितबलु के राजमहल को छोड़कर उसी की लाक झानना जीवन का लक्ष्य रियर किया था, ठीक उसी क्षण से हीनामाय ने इस शताब्दी में अपना नया प्रयोग आरम्भ किया । एक ही जगह के लिए आसना आसना रास्तों से चलना मुश्किलों का स्वभाव है । ऐसा अपने लिये नहीं संसार के लिये मरे से ; कुछ के कोविज्ज का सुन्दर प्रवास पंडित विश्व के लिये ही किया था । हीनामाय ने भी रीति मुक्ति को मुक्त करना अपना परम कर्तव्य मान लिया ।

पहले पहल उसे बस आई एक मचली पर, जो पंखों पर बैठने

के लिये मिनमिना रही थी । बीमाबाब ने अपनी खाली शिन्ना में तीन बार शक्ति देकर बोला—शायद वह बहाक मारकर रा रही है वा अपने दुष्कर्मों में बेवफा है । शोक । शोक ।—पगोपकार तेरी शक्ति खींच हो पर । तू मुझे कुछ कम नहीं दे सकता कि मैं इस दुष्कर्मप्रसक्त आत्मा व संभवता दे सकू । ये मातृमन्य शक्तिकार । तू ने एक प्रकाश की किरण तक मेरे पास नहीं रहने दी । मारा । खनकाया ।

बीमाबाब चौंक पड़ा । एक मकड़ी ने मक्खी को दबोच लिया । बोझी-सी मिनमिनाहट, बोझी-सी करकड़ाहट । फिर सब शांत, मौन, गिरा ।

शक्तिकार का हृदय चीरकर प्रकाश छाँकों में भर गया । अब कमजोरी ही कुछ और है । पीलपी लगी है । महीनों का रास्ता बहियों में खन होता है । मुझ को ज्ञ करके से कदा कदा का और बीमाबाब की शायद छ मिला से भी कम । उन्हें एकलक कर्म में साक्षात् हुआ था, उन्हें अपने कमानाले की उच्छादी के समर ।

बीमाबाब ने मस्त खींच कर जल करके मकड़ी को खनानी दी—  
बाह, लड़ ।

[ दो ]

उस दिन से पहले, उती घण्टे से बीमाबाब मुक्ति का लीला रास्ता का गया । दृष्ट भर की साक्षा में उसे प्रकाश की को शक्ति मिली, वह उसकी समस्त से अपूर्व थी । वह संकल्पपूर्ण भीषित विरव को उस ओर ठेसकर की-संस्थापकों का कर्म करके लगा ।

उसे प्रत्यक्ष रूप से यह प्रतिपादित हो गया कि मासिमात्र में सुख और शांति की चिरंतन अनुभूति का अभाव है । सभी स्थितियों में, सभी वक्तों में उस अभाव की विशेष भाषा से बेकली बंद रही है । कहीं भी संतुष्टि नजर नहीं आती । कष्ट, दुरिश्चय और शोक से जीव मग्न स्थायित्व हो रहे हैं ।

सांसारिक तथ्य के कारण जीवन में या क्षाम उत्पन्न होता है, उससे किसी का भी निस्तार नहीं । वह क्षाम जितना अशक्त और अनिश्चित है, उतना ही वह अनिवार्य-या हर-एक के पीछे लाग है या जितने वेग से भागकर उससे भाग चुकना चाहता है, वह उतनी ही उत्पन्नता से उसके मते का द्वार बनकर उसके साम लम्बा रहता है ।

दीनानाथ का सम्मुख हा इस बात पर हाता था कि अनेक जगह के आधिपतियों में मनुष्य ने क्यों अपने जीवन का दुरुपयोग किया । जो पिता सबसे बहुरी पी, वही क्यों नहीं स्वाभाविक रीति से किसी के प्रतिष्ठा में उदय हुई । जिन लोगों ने जीवन-मरण के लोगों को परदे से बाहर लाने का प्रयत्न किया, वे क्यों नहीं हस्तक्षेप हुए । इतना भीषण-सा रहता उन्हें क्यों नहीं लम्बा । क्या मृत्यु ही जीवन का परमार्थ नहीं है । ओह । उसकी ओह वैसी निश्चिन्तापूर्ण है । अनन्त सुख और चिरंतन शांति में वही तो जीवन की समस्त इच्छा को निहीन कर लेती है । उसके द्वार के अन्दर पैर रखते ही अभावों का अभाव हो जाता है ।

उसी की उज्ज्वल आलोक-पूर्ण मुखवाहि को लोगों ने धन बनकर की आसिमा समझने की भूल की है । मनुष्य की अमूर्त्य बुद्धि के नय-मुखने



संस्कारों को देखकर कहना पड़ता है कि अगर ऐसी मिरचीक चीज कहीं बाजार में बिकती होती, तो कोई उसे खाने के सिक्का के मोल भी नहीं खरीदता । लेकिन बिकता की परम कृपा का फल मानकर आज भी उसका आचरन किया ही गौरवस्पर्द बना है । और जब कि हीनालाब को सफ़ा की तरह का ठिकाना मालूम हो गया है, तो उसकी महत्त्व और भी अनुभव हो गई है ।

बस मृत्यु को जीवनरूपी दिव्य की विराति-मूर्त्यै रामि मानकर हीनालाब मन ही-मन अपनी सफ़लता का अनुभव करने लग्य । लेकिन वह उसकी विद्याल-दृढता है कि उसने कब ही उस परमसत्त्व का आस्थादन करने का काम नहीं किया ; बल्कि मित्रुक्त नीम काटती तरह, समस्त संसार के लिये उसका द्वार खोल दिया । वही क्यों, अपने ही वाचनाभिभूत हाथों से उसने इस परम वाचन अनुष्ठान का आरम्भ किया ।

### [ तीन ]

जीवन-रक्षा के लिये कैम-साधनों की सतर्कता अनिवार्य है । उनकी दिनचर्या का विवेक अथवा अमन्य अर्थस्य कीदृशाधुनों के बचाव में ही व्यव होता है । हीनालाब की जगह उनसे भी कहीं बढ़ बढ़कर थी । उसे तो दिन-रात सोते-जागते वही चिन्ता रहती थी कि किस तरह छत्रि को संधारिक क्लेश से दूरधारा दिला दिया जाय । शाब्द वह एक दिन में उठने जीवों को परलोक अवश्य ही पैर देता था, मितने कई साधु मित्रकर बना न सकते होते ।

दीनानाथ के एक मित्र के शब्दों में अगर उसकी पुर्तों का वर्णन करने लगे, तो कहेंगे कि उसने निश्चय तक का हरा जिया था। बड़े शक्तिहीन बहुतनन बारा जब तक एक की सृष्टि करते थे, तब तक वह चार का समास कर देता था। चलते फिरते, ठठते बैठते साथे बंते और सते जागते दीनानाथ अपना काम भूलता नहीं था। बीच बाईं नजर पड़ जाता, दूरत उस वह पड़नाच में मिला देता। अगर रामकीर्ण कावून बाकफ न होता और सवार की मूर्खता इसी सुख गई होती कि वह उसका कार्य को ठगारक का काम समझती, तो अकर्म हा अब तक मानव जाति का भी बहुत कुछ उपसंहार हो गया होता। लेकिन कुर्मग्य कर्मकि अनुप्य के बराबर कार्य मूर्ख नहीं। अनन्त कष्ट मागकर भी रात-दिन नारकीय दशकाओं में कृत्ययना उसे पछन्द है, लेकिन जीवन से हटकाया जाने का बिता नहीं। मृत्यु से उस डर लगता है, परम शान्तिवाप्ति, मोक्ष की सहजता से वह भयभीत रहता है। अनेक तरह के अस्वाभाविक साधना से वह अपने जीवनकाल का बीपैतर करने ही में लगा रहता है। वह एक मानव जाति पर ही अपना प्रभाव करने में हप्पा रखते हुये भी दीनानाथ समर्थ न हो सका।

भक्त-मन्त्र कुत्से-किस्ती तथा और सभी कामचारों का दीनानाथ पुर्तों से परमनाक की तरफ भेजन लगा। वह एक भी काम देसा नहीं करता जिसके साथ उसके जीवन का सकल दूर हो जाता, अब तक उसे दो-चार जीव दबकर मछल जाने का पूरा विश्वास नहीं होता। इसी वही कुशी बड़े ठगाह और बड़ी तत्परता से वह हिंसा मउ-साधन द्वारा परमाधे का आदर्य ठहरित करने लगा।

कर्मों के अनुसार ही स्वभाव में कोमलता और कठोरता का सम्मिश्रण होता है । ब्रह्मण्य पशुराम में क्षमिष्व और क्षमिष्व कुम्भरेण में ब्रह्मण्यत्व की विशेषता समी जागते है । बीमानाथ के स्वभाव में भी परिवर्तन शुरू से ही आरम्भ हो गया था । धीरे धीरे दूसरों के दुस्सों की अनुभूति से उसके मन विरक्त हो गया । झट्टे-झट्टे चीखों से बलकर वह बंधे-बधे चीखों को मारने लगा । उनके झटपटाने, उनके बिस्ताने का उसके आन्तरात्मा पर कुछ भी असर नहीं पड़ता था ।

एक दिन जब वह लाठी का प्रहार एक सते हुए कुत्ते पर करना चाहता था उसके मित्र कालिकासहाय ने आकर कुत्ते को मगा दिया और एक ओर सका होकर हँसने लगा । मित्र की सिंठई और नादामी पर बीमानाथ को कितना बड़ा पटुँचा, वह शास्त्र कालिकासहाय को बात न हुआ । बीमानाथ को इस तरह अपनी ओर घूरते देखकर कालिकासहाय ने हसकर कहा—क्यों मक्का उसने क्या कियाका था ?

बीमानाथ ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा—तुम जो बात नहीं समझ सकते, उसके लिये किन्हीं मायापक्की करने से फाकदा ?

वह इतना कहकर सीधे से अपने कम के लिये चला गया । कालिकासहाय कका-कका उसके विभिन्न स्वभाव की आलोचना करता रहता ।

बीमानाथ की उससे मित्रता थी, वह बात समझ सकता कहिय है । कारण कि बीमानाथ सदा से ही निर्मोही, निहङ्ग और निरुद्ध था । वह किसी से लयान नहीं रखता था । जहाँ किसी तरह के सम्बन्ध की गत

आती, वहाँ से वह दूर जा लुका होता । उसके असाधारण जीवन में प्रेम और स्नेह के आस्थाचार का कभी छद्म न था । माँ-बाप से नहीं । भाई-बहनों की भी उसे याद न थी । उसका जीवन कठोरता और दृढ़पटीनता के समुद्र में डूबा था ।

कालिकासहाय भी अत्यन्त स्वभाव का था । स्नेह-सम्बन्ध के कट्टर शत्रु बीनानाय से बारबार मित्रता उसे पसन्द आता था । जब देखो तब वह उसी के पक्ष में पड़ा रहता था । ठगर बीनानाय उसकी रच भी परवाह न करता था । इस तरह विभिन्न गति से उन दोनों की मित्रता समझे पड़े वस्तु रही थी । एक क्षण भी उसी बनाकर ही कालिकासहाय धृष्टाव कर रहा था । लेकिन ऐसा वह क्यों कर रहा था ? इसका जवाब शायद उसके पास भी न था ।

आज जब कालिकासहाय ने एकाएक आदर कुर्से का मग्न दिग्गज को बीनानाय सह न सका । वह मन-ही मन विवशिताकर एकतरफ में चला गया और किसी विचार में मग्न हो गया । बड़ी देर तक ध्यानावस्थित होने के बाद वह यह सोच सका कि कालिकासहाय आदानी है । उसे इतना ज्ञान नहीं है कि वह एक मक्की की तरह अपने जीवन की असाधारणता समझ सके । 'मक्की' का ध्यान आते ही उसे मक्की का भी ध्यान आ गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी दिव्य कब्रिस्तान में उसे कुछ संकेत दिया है । उसने कहा—हाँ, बल्कि उसे असाधारणता से मुक्त करना होगा । वह मुझसे दित्त मालता है । शायद उसकी अन्तरात्मा इसीकिये उसे बार-बार इन्कर के आती है । और, आज उसे कह नहीं करना पड़ेगा । मैं फिर ही चलाकर उसकी

कर्मों के अनुसार ही स्वभाव में भोमसत्ता और कठोरता का समावेश होता है । ब्रह्मण पशुराम में क्षत्रिय और क्षत्रिय कुलदेव में ब्राह्मण्य की विशेषता सभी जानते हैं । बीमानाथ के स्वभाव में भी परिवर्तन हुए से ही आरम्भ हो गया था । धीरे-धीरे दूसरों के दुर्गों की अनुभूति से उसका मन विरक्त हो गया । झूठे-झूठे चीन्हे से बसकर वह बड़े-बड़े चीन्हे को मारने लगा । उनके छड़पड़ाने, उनके चिड़काने का उसकी अन्तरात्मा पर कुछ भी असर नहीं पड़ता था ।

एक दिन जब वह छाठी का प्रहार एक साते हुए कुत्ते पर करना चाहता था उसके मित्र कालिकासहान ने आकर कुत्ते को मग्न दिवा और एक ओर लड़ा होकर हँसने लगा । मित्र की दिठाई और तादाबी पर बीमानाथ को कितना खूब पड़ुँचा, वह शब्द कालिकासहान का बात न हुआ । बीमानाथ को इस तरह अपनी ओर झुंके देखकर कालिकासहान ने हसकर कहा—क्यों मरता उसने क्या बियाड़ा था ?

बीमानाथ ने अधिकारपूर्वक स्वर में कहा—तुम का बात नहीं समझ सकते, उसके सिने पिछ्छान मानापक्की करने से अप्रदा ?

वह इसका कहकर शीघ्रता से अपने कम के सिने चला गया । कालिकासहान लका-लका उसके विविध स्वभाव की आलोचना करता रहा ।

बीमानाथ की उससे मित्रता थी, वह बात समझ सकता कठिन है । कारण कि बीमानाथ सदा से ही निर्मोही, निहत्त और निरुह था । वह किसी से लगाव नहीं रखता था । यहाँ किसी तरह के सम्बन्ध की तंग

आती, वहाँ से वह दूर जा लड़ा होता । उसके असहाय जीवन में प्रेम और स्नेह के आस्थाचार का कभी सहा न था । माँ-बाप ने नहीं । माई-बहनो की भी उसे याद न थी । उसका जीवन कठारता और हृदयहीनता के छाये में दसा था ।

कालिकासहाय भी अन्ध स्वभाव का था । स्नेह-सम्बन्ध के कष्ट अनु रीतिनाय से बारबार भिड़ना उसे पसन्द आता था । जब देखो तब वह उसी के पंख पड़ा रहता था । तब रीतिनाय उसकी रज भी परवाह न करता था । इस तरह विभिन्न गति से उन दोनों की मित्रता लगभग पैंरो चक्कर रही थी । एक क्षण की तात्नी बसाकर ही कालिकासहाय संताप कर रहा था । लेकिन ऐसा वह क्यों कर रहा था ? इसका जवाब शायद उसके पास भी न था ।

आज जब कालिकासहाय ने एकाएक आकर कुछ को भण्डा दिया तो रीतिनाय सह न सका । वह मन ही-मन विस्मयित होकर एकल में चला गया और किसी विचार में मग्न हो गया । बड़ी देर तक ध्यानावस्थित होने के बाद वह यह सोच सका कि कालिकासहाय अज्ञानी है । उसे इतना बाल नहीं है कि वह एक मक्खी की तरह अपने जीवन की असाध्यकता समझ सके । 'मक्खी का ध्यान आते ही उसे मक्खी का भी ध्यान आ गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी दिग्गज कथेति ने उसे कुछ संकेत किया है । उसने कहा—हाँ, चकर उसे आसामता से मुक्त करना होगा । वह मुझसे रित मानता है । शायद उसकी अन्तरात्मा इसीलिए उसे बार-बार इकर ले आती है । और, अब उसे कह नहीं करना पड़ेगा । मैं शुरू हो चलाकर उसकी

कर्मों के अनुसार ही स्वभाव में कोमलता और कठोरता का अभिव्यक्ति होता है । ब्रह्मन् बहुराम में क्षमिता और क्षमिता तुल्यता में ब्रह्मन् की विशेषता सभी जानते हैं । ईशानाश के स्वभाव में भी परिवर्तन शुरू से ही आरम्भ हो गया था । धीरे-धीरे दुर्गों के दुर्गों की अनुभूति से उसका मन विरक्त हो गया । छोटे-छोटे चीजों से बसकर वह बड़े-बड़े चीजों को मारने लगा । उसके कृत्य करने, उसके चिन्तने का उसकी आन्तरिकता पर कुछ भी असर नहीं पड़ता था ।

एक दिन जब वह लाठी का पहार एक सप्ते हुए कुत्ते पर करना चाहता था उसके मित्र कासिकासहाय ने आकर कुत्ते को मग्न किया और एक और लड़ा होकर ईशाने लगा । मित्र की विचारों और मन्त्रादी पर ईशानाश को कितना कम पड़ता, वह शब्द कासिकासहाय का बात न हुआ । ईशानाश को इस तरह अपनी आत्मा बुरा देखकर कासिकासहाय ने हसकर कहा—क्यों भला उसमें क्या निम्नता था ।

ईशानाश ने आश्चर्यपूर्ण स्वर में कहा—तुम का बात नहीं समझ सकते, उसके लिये किञ्चित् मानावणी करने से पड़ता ।

वह इतना कहकर शीघ्रता से अपने कमरे के लिये चला गया । कासिकासहाय लड़ा-लड़ा उसके विभिन्न स्वभाव की आलोचना करता रहा ।

ईशानाश की उसके मित्रता भी, वह बात समझ सकता कठिन है । कारण कि ईशानाश सदा से ही निर्दोषी, निरद्वन्द्व और निरद्वन्द्व था । वह किसी से जगता नहीं रहता था । जहाँ किसी तरह के सम्बन्ध की रचना

जाती, वहाँ से वह दूर भा लका होता । उसके असहाय जीवन ने प्रेम और स्नेह के अत्याचार को कभी सहा न था । माँ-बाप ये नहीं । भाई-बहनों की भी उसे मदद न थी । उसका जीवन कठारता और हृन्महीनता के साथे में हुआ था ।

कालिकासहाय भी अजब स्वभाव का था । स्नेह-सम्बन्ध के कट्टर शत्रु हीनानाथ से बारबार मिड़ना उसे पसन्द आता था । जब देखो तब वह उसी के पंखे पका रहता था । तब हीनानाथ उसकी रस भी परवाह न करता था । इस तरह निश्चिन्त गति से उन दोनों की मिथता सागरे पैरों चल रही थी । एक क्षण की ठाकती बजाकर ही कालिकासहाय संतोष कर रहा था । लेकिन ऐसा वह क्यों कर रहा था । इसका जवाब शम्भू उसके पास भी न था ।

शाम जब कालिकासहाय ने एकाएक आकर कुत्ते को भग्न दिख तो हीनानाथ सह न सका । वह मन-ही मन सिलमिलाकर पकाट में चला गया और किसी विचार में मग्न हो गया । बड़ी देर तक आमावस्थित होने के बाद वह यह सोच सका कि कालिकासहाय अज्ञानी है । उसे इसना ज्ञान नहीं है कि वह एक मक्खी की तरह अपने जीवन की असाध्यकता समझ सके । 'मक्खी' का प्यार आते ही उसे मक्खी का भी प्यार आ गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी दिव्य क्योति ने उसे बुझ लकैत किया है । उसने कहा—हाँ, जरूर उसे अज्ञानता से मुक्त करवा होगा । वह मुझसे बित्त मामला है । शास्त्र उसकी अन्तरात्मा इच्छितिये उसे बार-बार हथर से आती है । और, अब उसे यह नहीं करना पड़ेगा । मैं खुद ही चलाकर उसकी



आत्म्य को अमरमुख पहुँचाकर मृत कर गया ।

वह अठपट्ट एक कमचमाटी कुँव लुगी होकर अपने अहाली मित्र की तलाश में निकल पड़ा । बोकी ही दूर गया होगा कि कराइने की एक शीश्र आवाज ने उसे चौंका दिया । उसमें देखा—एक बकस-मान मानवमूर्ति रास्ते में एक ठरफ बड़ी थी । उसमें शीत और एक का शरीर एकदम अभाव हो चुका था ।

दीनानाथ का हृदय न जाने क्यों वह दृश्य देखकर काँप गया, पर वह दुरन्त समझकर कहा हो गया । मन को दुरिबर बरके बूझना चाह-  
कहे, विध्वंसि की शब्द में जाना चाहते हैं । क्या मैं तुम्हारे उद्देश्य में सहायता दूँ ?

मृत्यु को मरने से लड़कते हुए पुरुष ने वह से अविचल स्वर में कहा—कहा जानी ।

दीनानाथ के तन-बदन में आग सी लग गई । वह बोला—अभी तक पानी पीने की इच्छा रखते हो ?

उस पुरुष ने झालें काज की । भारी आर देकर कहा—हा एजहुसारी कहा गई । मेरी प्यारी बच्ची—

दीनानाथ—क्यों क्या चाहते हो ।

पुरुष—जीवन, मैं केवल जीवन चाहता हूँ । क्या तुम कोई देवता हो मेरा ? हा । मेरी प्यारी राजकुमारी ।

दीनानाथ—जीवन नरक है, तुम नरक की क्यों कामना करते हो ।

पुरुष—जीवन नरक । छोड़ गमन, जिसमें अनेक दुर्गा की

ठपकमि हुई, वह " वह —

दीनानाथ—हा, बहो ! तुम प्रहलसा में पड़े हो । कहा तो तुम्हें  
घाव से छुटकारा मिला है । बोला शीघ्र, मेरा अमृत्यु समय जा रहा है ।  
उसने अपनी देव हुरी हाथ में ले ली ।

पुरुष की धारों कुल गई । उसने कहा—बाह ! तुम इन्ध  
जगमे, इन्ध ! अभी नहीं, मेरी बन्धी राजकुमारी ।

दीनानाथ ने पेट के पास हुरी ल जाकर कहा—तुम मुर्ख हो ।  
बाबा, वह सीन्हा रास्ता है—बस ।

[ पांच ]

अपरान्त-काल की क क्षिप्त क्षिरधों पड़ रही थी । दीनानाथ ने  
जाकर काशिकातहल का पुकारा । कुन्नी कुन्नी दीनानाथ दरवाजे को  
ठेककर बाहर दालित हुआ । वह आश्चर्य से अवाक लड़ा रह गया ।  
"एक अद्भुत तावकमयी कुन्नी मुझसे लड़की सामने लड़ी थी । उसके  
अद्भुत बेहरे पर सिपाह की क्षाया ने आशय बना लिख था । दीनानाथ सुन्ध  
माथ से कई क्षुब्ध तक उसकी आभ दकड़की लगाए लड़ा रह गया । वह  
लड़की भी मूर्खित । उसके एक तरफ निकल जाने की प्रतीक्षा में उड़ी तरह  
अपकल गनी रही ।

काशिकातहल ने आम्ह से पुकारा—क्या करते लया है, दीनानाथ !  
कब कोई पिछार हाथ लग गया है ?

अह र्वय हुआ । दीनानाथ का शरीर एक पछा ऊपर से नीचे

वक धिहर उठा । उसने भी पर शासन करके कहा—अभी फिर हो, मैं तो शिकार की ही तलाश में आया हूँ ।

इस वृक्ष पर चले आओ—कहकर कालिकासहाय उसकी प्रतीक्षा में दृष्टान्त लगा । बीनानाथ पहुँचा तो कालिकासहाय ने ध्यान के भाव से पूछा—आय क्या करत पड़ गई ?

बीनानाथ ने अपनी कमर की छुरी पर हाथ फेरकर कहा—मुझे तुम्हारे ऊपर कड़ी दया आती है । कई दिन से मैं यह निश्चय कर रहा हूँ कि कम-से-कम अपने एक परिचित मित्र को तो कुछ उपदेश दे सकूँ ।

कालिकासहाय ने हँसकर कहा—मैं तो तुम्हारा उपदेश ग्रहण करने लायक नहीं हूँ । अभी मेरी बुद्धि परिपक्व नहीं है, अभी संसार की किसी चीज से मुझे विरक्ति नहीं हुई है, इसलिये मैं उसका अविष्मारी नहीं । हाँ, तुम्हारे उपदेश का एक भाग मुझे मिला गया है । वह मैं तुम्हें सिपुर्दे कर सकता हूँ ।

बीनानाथ उसके मुँह की ओर बेलने लगा । उसने फिर कहा—कहो तैयार हो ।

इसी समय कालिकासहाय की बहन कमलानदी उस लकड़ी को साव होकर वृक्ष पर आ पहुँची । कालिकासहाय ने बीनानाथ से कहा—देखो, नहीं वह लकड़ी है । इसका पहले ही से तुम्हारे मत की तरफ झुकाव है । अक्सर तुम इसे अपने कमरे में मही रोते, तो कमलानदी छारे पुरुष की माया होगी । एक तो इसके शरीर में जाम ही कितनी है, दूसरे कमलानदी उसे ठेक-ठेककर ममपुरी में बँसा चाहती है । बेचारी बड़ी गरीब असहाय और

नियोज्य है। तुम जाओ तो आकर पाँका बहुत उपवेश रोक कर का सबते हो।  
 जब वह पूरी तरह से दुगहारी अनुमाप्ति हो जायगी, तो कोई उसे रोकनेवाला  
 नहीं। सब पुझा ता हमारे मत की साधकता इसी तरह के प्राप्ति में सिद्ध  
 हो सकती है।

नवै ठर्क-वितर्क के बाद कालिकासहाय ने दीनानाथ का ठेकार  
 कर लिया। उसने मन ही मन कुछ हाकर पुछा—कमलावती अपना  
 उपदेश कब करके उसे हथ से का। उससे लिए मय मास्टर साइब रस  
 लिए गए हैं।

कमला ने वहीं से पुकारकर कहा—नहीं मास्टर की जरूरत  
 नहीं है। वह मास्टर से नहीं बड़ेगी। हम दोनों स्वतः रही हैं।

कालिकासहाय ने कहा तीन स्वर में कहा—बस-बस बहुत बात न  
 बना। मालूम पड़ता है, एक मास्टर सेरे सिने भी खाना होगा। दिन भर  
 बेसली रहती है।

मास्टर के नाम से सहमती हुई कमलावती अपनी छोली का  
 झकमक कर उसे कालिकासहाय के पास ही आई।

दीनानाथ कीर्तव्येश की तमाम बातें मूलकर एक साधारण मास्टर  
 की तरह उस अवगत अवस्थिति कालिका का पढ़ाने लगा। अंत में  
 कालिकासहाय कीरे से ठठकर नीचे जाता गया।

[ छ ]

रात का नवै गर्म के साथ कालिकासहाय ने अपने पिता के सामने

कहा—बाबूजी, मैंने ठीक कर दिया है ।

पिता ने पूछा—क्या बीनानाम ने अपना स्वीकार कर लिया है वह बड़ा सैलानी लड़का है, तुम चरा उसकी फिर रक्तमा । वह किसी काम में भी लगा सकेगा इसका मुझे विश्वास नहीं ।

कामिकासहाय—जी नहीं अब वह रात आयाग ।

पिता—ह, तब तो बहुत ठीक । बेचारी गरीब लड़की का जीवन सुपर आपग और दीनानाम बन्धन प्रस्त होने से मरगानी ग कर सकेगा ।

पिता ने ही नहीं माता ने भी कामिकासहाय को उसकी सफलता पर बहुत साधुवाद दिए । तमाम घर के लोग उसकी तारीफ करने लगे । अचैती कमलावती की भाई का बन्धना बिलकुल पसन्द न आई । वह अपने मास पुताए हुए एक तरफ बैठी रही । लेकिन उसका किसी पर कुछ असर नहीं हुआ । कमलावती क्यपि बिल में कई बार लड़ाई मचाई करती थी, पर वह उनकी पक्की बारावा थी कि बड़-भयभर भी उसका अपनी सक्ती पर का अधिकार है, वह किसी वृत्तरे का हरदम पार करके भी नहीं हो सकता ।

दीनानाम बो-तीन बिल तक बड़े उत्साह से उस अनाम बालिका को पढ़ाने आता रहा । उसी थाने-स समय के प्रयास ने उसके जीवन की चरा में अपूर्व आकांक्षाओं की खोज कर ली । यद्यपि प्रकाश्य रूप से वह उन्हें समझ नहीं सका पर उसकी सूक्ष्म दृष्टि के लिये उनका आभास ही काफी था । बही बजह थी कि अन्तरास्तास के साथ साथ ज्ञानि का एक भाग भी उसके हृदय में अपनी जग गहरी जमा रहा था ।

एक दिन शाम को जब वह झूटकर शाबा, तो उसके द्वार में बड़ी घर्षाति पैदा हो गई । उसे ऐसा प्रतिभास हुआ कि वह सचमुच कई दिन से अपना कतघ्न पूर्ण नहीं कर रहा है । यद्यपि समय के बहुत बड़े भाग में वह अपने आचार में कोई त्रुटि नहीं करता फिर भी एक शिथिलता आ गई है । वह एकाएक नींद के झोंके से चौंक पड़ा । उसे प्रतीत हुआ जैसे कासिकासहाय ने उसे ठग लिया है । उसके लिये माह का एक साल बिछाना कर उसने सार्वभौमिक हृष्टि से अपने जीवन की रक्षा कर ली है ; पर वास्तव में हमने अपनी आपत्तिमय प्रवृत्ति कर ली है ।

दीनानाथ ने गुरम्त तब किया कि वह ऐसा न हामी देगा । वह अपने सज्जानी मित्र का अवश्य ही जीवनसूत्र करेगा ।

बस, दुसरे दिन से वह पूर्णतः बड़ी तत्परता से अपने कर्म में व्यस्त हो गया । मास्टर के कम में कासिकासहाय के मकान की तरफ जाना बंद कर दिया और कोई न नही कमजावती तो उसके हृत्त कर्त्तव्य से प्रसन्न हो हुई ।

### [ पाठ ]

कई दिन प्रतीक्षा करने के बाद भी जब कासिकासहाय ने आश तो दीनानाथ से रहा न गया । वह कुछ ही उसकी तलाश में निकल पड़ा था तब उसने तय कर लिया था कि कासिकासहाय की कबर खोनी ही होगी ।

वह बड़ी तेजी से अपने मित्र के मकान की तरफ दौड़ गया ।

कासिकासहाय का मकान छड़क पर था । दूर से उसका द्वार मकर

दीनानाथ अब तब भीषणता से बैठा था। उसने दृष्टांत पाकर उल्लासने के दो-तीन शब्दों में ही हृत्प की समस्त बेरमा उल्लेख कर पूछा—  
मुझे कब तक ही न दी !

कालिकासहाय ने धीरे से कहा—तुम मृत्यु का ही जीवन समझते हो इसलिये यद्यपि राजकुमारी ने स्वर्ग तुलार की तीव्रता के समान तुम्हें कई बार मार दिया था।

दीनानाथ का सारा शरीर काँपने लगा। राजकुमारी ! राजकुमारी ! उसके कानों में गूँजने लगा। उसको धाँसों के सामने उस बृद्ध पुरुष की समस्त बातें प्रत्यक्ष हो उठीं। उसे ऐसा मालूम पड़ा, जैसे समस्त छद्म चरकर समा रहा है। वह आचमकुर्सी पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

कालिकासहाय रोगिणी की श्वास की गति पर ध्यान दे रहा था। वह दीनानाथ की हालत का अनुमान नहीं कर सका।

थोड़ी देर में दीनानाथ को होश हुआ। फिर उठाव, बैठा—  
कतुप सेत के दिष्ट की बच्ची बीभी जल रही थी। कालिकासहाय भी अपनी कुर्सी पर उल्लेख रहा था।

दीनानाथ ने मित्र का कंधा हिलाकर कहा—तुम जाकर बैठो। मैं बैठा हूँ। जिन में तो मुका हूँ, मुझे बिलकुल नींद नहीं है।

कालिकासहाय—नहीं।

दीनानाथ—क्यों नहीं जाया, तुम जाकर बैठ रहो।

कालिकासहाय—जाकर की ताकीद है। आज की राति अतिम है। मैं आज उठकर न जाऊंगा।

दीनानाथ मुन न सका, उसकी आँखों में आँसू की बूँद मलमलाने लगी । कानिकासहाय ने कहा—यह बच, तुम — तुम इस तरह ।

हाँ, भाई—कहकर दीनानाथ चुप हो गया । आगे उसके बाला न मण । कानिकासहाय ठमके मनोभाव को देखकर वहाँ से उठ गया ।

दीनानाथ शमिष्ठी के श्वाभ पर एकटक ध्यान लगाए बैठा रहा । वर भी स्पन्द होने से वह समय हो जाता था । उसके दृढ़ हुए हृदय में एक ही अस्मिता थी । वह भी पूरी न हो सकी । रामबुलारी ने आँखें न जोड़ी । न लाली । रात्रि के अवनतन के साथ उसके जीवन का भी अवनतन हो गया ।

उसके मृत शरीर में भी जीवन का स्पन्द शोचता हुआ दीनानाथ विकल भाव से चारबाई पर बैठा रहा । जिसका समस्त समय बराबर मृत्यु में ही सुख का अस्तित्व मानने में व्यस्त रहता था, वह आज जीवन की एक-एक श्वाभ के सिधे तरह गया ।

निर्मम में ममता का छोट फूट गया । हल्क़रे में कड़वा की शमिष्ठी बच उठी । आद्यकरक निश्चय की हृद वीचार एक ही आश्रय में द्विध-मिध हो गई । हाथ रे । परिकर्तन । दीनानाथ चुपचाप भावों की उम्यत शहर में रामबुलारी की मृत्यु का अपनी हल्काई की सूची से अलग रखना चाहता है पर न जाने कौन आकर उसके नाम फिर जोड़ देता है । अद्वय के उस हाथ का रोकने की समता कहाँ । वह बेहद उद्विग्न और उचैधित होकर हक्क ठक्क देना चाहता है, पर कुछ दिखाई नहीं



हृष्य ]

कहा—कुछ धमझ में मही जाता । संसार के पय-प्रदर्शक को आज  
आपने पय-प्रदर्शक के लिए किछी भी मिठास आवश्यकता है ।

## व्यवधान

हिमालय की तराई में, मुक्तिरुत काग्यार के आरम्भ से हकर, लक्ष्म धनिया सरिता की कमर में लटका हुआ एक बड़ा-सा समस्तल भूकरक पड़ा था। उसमें नीचू-नारंगी की किस्म के बहुत से जगमगी मछड़े थे। बीच-बीच में तरह-तरह के पहाड़ी वृक्ष विरोपकन से लगाये गये थे; उनके बनपने के शिष्ट पर्वत सावन में झुमने लगे थे। उस भूमाय का तीन बीघाई हिस्सा हरित स्वामल शम्भ से ढका हुआ था। शीतल वायु के झेलों से एक साव अस्वस्थ पक्षियों के हिल उठने से एक विचित्र प्रकार का आनन्द छगीत हृदय में भर जाता था। उसके बीचोंबीच एक उदृत रंग से बनावा हुआ पकल था। डीक बीड़-झूँट की तरह पर बैठता—अकृश्ल हाथों की अरीगरी का सजीव नमूना। ऐसा जान पड़ता था मानो बनदेरी की आसौकिक रुक-रूथि की आकस्मात् एक अलक याकर आरिपुत्रय सब कुछ मूलकर उसके पीछे सबन काग्यार की ओर बीड़ गये हो और उनका भूकरकार मातप पुत्रचार लका रह गये हो।

उस लक्ष्मभर एकलत मशन में लकल मस्तक, उभरे बक्षरक और उठडी हुई ठंयोंकासे, राव शम्भय की तरह, वो मुक रहते थे।

वचन ]

एक का नाम मदन और दूसरे का किशोर था । दोनों कृपक थे । पूँछों को झोतकर बोना, काम को हकट्टाकर और फल-पूँछों को मरकर राजबन्सी में मेक देना, वस वही उनके काम थे । वे दोनों एक ही वचन को उच्चारक मुराबि थे । साप-साप रहे थे । साप-साप खोले-आये थे । साप ही साप जलवा की परिवर्ति के सख रहे थे । उनके दो शरीरों में निष्ठा ने एक ही प्राण की प्रतिष्ठा की थी । एक का हँस दूसरे की आह थी । एक का बसीना दूसरे का रक्तसाप था ।

पेड़ों में बहारे छातों और जली छाती । फूलों में यौवन निजरता और निष्ठा और निजर जाता, वर उन दोनों के रूप में की बार से कचकर गिरे थे । मलबपवम के उत्तरमिमुख गलेकों को साप ही साप आह्वित करते थे । इसी हुई कलियों को कभी मरेसे में देकर कुछ होने का शोम किसी के मन में खान न पाता ।

वे दिन उनकी निम्न के दिन थे । पराजय का नाम उनके निम्नित कामों के लिए अपरिचित था ।

[ दो ]

अनाकत ही दूसरी कुटी का जन्म हुआ । उसमें रहने के लिए आकाश से एक चन्द्रमा उतरकर आया । वन-भी शोभाय हो गई, पक्षियों के मन में माधुरी भर गई, फूलों से हरी मरने लगी, और सहरो में यौवन प्रवर्धित होने लगा ।

उस कुटी के मरोक सभी पक्षियों पर मरते थे । फिर से

भी निकला बावमन की ज़ाँमे खुली हुई मिलती थी । कुट्टी की स्वामिनी अपने झरोखे में बैठकर किसी की प्रशंसा करती थी । कभी द्वार पर रसाल की हास का आशय लेकर पीठ पर दिखाने हुए केरों का मुन्नाती और कभी मेंहरी रचाये हाथों से मीरों को ठहाती हुई कज़ियाँ चुना करती । उसकी हँसी में पूँज भरते थे । उसको चञ्चल चितवन में अमृत बरसता था ।

फिराँद और मरन ईसते हुए घर से निकलते थे ; लेकिन वह हँसी कहीं गगन में ही रह गई । जेठ निराने समय पौषे खींचते समय वे दोनों एक ही विषय का चिन्तन कर रहे थे—पर कोई कुछ न कहता था ।

वह कौन है ? उसने किसकी आँस देखा था ? देखा दानो ही का होगा पर शावर मेले आँस विशेष रूप से । उसकी दृष्टि में मीठी हँसी भी थी । उस हँसी में कोई संकेत भी ना । और वह ठा बिलकुल स्पष्ट हो था—वही खोब-खाबकर उन दोनों के हृदयों में मेघ भाव का जन्म हुआ । अविच्छेद में अन्तर बह जाता ।

## [ चीन ]

उस दिन से मरन और फिराँद का किसी ने साथ आते जाते न देखा । घर से निकलते वा दानो के वा मुहा रास्ते होते । एक पूरव बलदा ठा दूसरे का पश्चिम वाला आवश्यक होता । एक इस कोने पर काम करता तो दूसरा खेत के उस कोने पर । घर आते वा आग-वीह । एक का मिस्तर एक ओर लगता तो दूसरे का दूसरी ओर । खान-पान में भी कोई किसी की प्रशंसा न करता । बागों में ठहरावना भी, व्यवहार में एक तरह का

विभिन्न अलगाव । दोनों-दोनों की आँखों से बचकर उस शावस्यमयी मुद्रा की कुट्टी की आर कामा चाहते तो पुपचाप लिसक जाते । एक दूसरे को कानों-कान लहर न होने देने के लिए मरसक सतर्क रहता । हर वा, कहीं पड़ते ही दूसरा जाकर उस पर अपना असर न बाल दे ।

दोनों छिप छिपकर पहुँचने लगे । परिचय हुआ और निर्वेगता की सुविधा पाकर बलशाली की तरह बह गया । आत्मप होने लगा फिर मेंटे बढ़ाई जाने लगी । अपना अपना पुचापा ठेकर दोनों ही एक दूसरे से बचकर जाने लगे । एक परिचय-द्वार से जाता तो दूसरा पूर्ण द्वार से । एक लम्बा की लाली के साथ पहुँचता तो दूसरा छोछोटी की फिरछो के साथ जाकर अपना अर्थ समर्पित कर जाता । जो फूल किसी कमल देवार्चन के उपकरण थे वे आजकल न जाने किस तरह जाकर उस रमणी का श्रद्धा करते । पुष्प-गंधर्विणी प्रीति प्रसरित देव प्रतिमा की आर किसी का ध्यान न जाता । सबीब-साकार सौंदर्य प्रतिमा के सामने प्रस्तर-मूर्ति की कौन परवाह करता ?

हर में, हर से बाहर का कुछ दर्शनीय और बहुमुख्य मिलता वह देवीजी के चरणों में अर्पित हो जाता । रमणी के सामने दोनों ही अपने का समान सम्यक् का स्वामी पतते । कोई मूलकर भी अपने छापी का काम बचान पर न जाता ।

कोमलाङ्गी सुबती इन दोनों बलशाली युवकों के विभिन्न आचरण पर हसती और तरस जाती थी । मनुष्य अपने उद्देश्य बल पराक्रम का चाहे कितना गर्व करे, पैरों की कमक से पृथ्वी का कपाने की शक्ति मने ही

रहता है, पर कुम्हरी वस्त्री कुम्हरी के समस्त वह सदा दया का रूप है  
 उसके कोमल बाहु-पाश के सामने उसकी ललकार कुटिल हाँसी है  
 उसकी मीठी-मधुर मुसकान का स्नेहा बहो से बड़ा बड़ा मानता है । इन्हीं  
 वह कुम्हरी भी इस मरनेभय कुम्हरी बाड़ी पर असीम दया रगनी थी । व  
 उसकी दया के ही पाश में ।

[ चार ]

मरन और क्रिपे पर इस प्रकार प्रेम के चक्कर में पड़ चुके थे ।  
 जब इन्हीं निम्न उस कुम्हरी के सामने खड़ी गई-नई सातवाएँ ल बाहर  
 अर्पित कर देते थे, जब बारम्बारिक छोड़ने का कल्प लूँ ही निविष्ट हो  
 मरता था । उस समय उनकी बराबर छपर में अर्पित ला रही थी । प्रत्येक  
 परिवर्तन का स्थिति ही अत्यन्त ही ठन्डे मिठाया था, अत्यन्त का पद-तल  
 उठना ही उनके पास से बिछकता जाता था ।

उसके जीवन की सादगी नष्ट हो चुकी थी । विज्ञान ने आत्मा के  
 पवित्र मन्त्र को ध्वस्त कर दिया था । सापरवाही में घर की अत्यन्त  
 लक्ष्मी का हार कर्म कर दिया था । लड़कों में शस्त्र-की की इतिहास नहीं  
 छाड़ती थी । अरिता के बड़े हुए लक्ष में पूरा पड़नेवाले कमलों की आभा  
 से प्रान्तर प्रवेश शून्य हो गया था । कुम्हरी-कुम्हरी का मकरन्द वस्त्र की  
 दशा ने बसन्त के प्रमत्त में ही मुग्ध बनाया था, पर ठहर देखता ही जीवन ।  
 किसे यह सब ठाढ़े रहने का अवकाश रह गया था ।

मिठा की रमणीयता, कुम्हरी की कान्ति और अन्तर्गत

अपवधन ]

शाक्यत्व अपना अपना स्वाम छोड़कर बैठे उस सुन्दरी सखानी पुण्यती के मज्जा  
विकास में ही जा बस थे । उषी की वितथम में अपने चिरवाञ्छित, चिर-  
राहित सम्पौष्ट्य का समाप्त हुआ देखकर ये युवक युगल भी बैठे प्रसिपल  
उसकी आर किये जा रहे थे । अबसर पले ही उनमें से प्रत्येक उसकी  
अनुपम इबिमसी रूपमाधुरी को आंकों के पले पी जाना चाहता था ।  
उसकी साफ्ना-संविष्ट अभिन्न पुष्प-प्रतिमा को अपने हृदय-मन्दिर के विमूढ  
अन्तराल में क्षिपा रक्षना चाहता था ।

[ पांच ]

कुत्ती का नाम मासली या पर क्या कुतुम्बिता मासलीकता उसे जाती  
थी ? मदम और किशोर के मूक प्रेम-निवेदन की भाषा पढ़ने में मासली  
को प्रवास नहीं पड़ा था ।

एक दिन उसने किशोर से एकान्त पाकर कहा—आपको वह  
जुनकर प्रसन्नता छगी कि मैं अब सामाजिक क्लम में सब जाना चाहती हूँ ।  
मगर से बाहर समाज से दूर रहकर भी मुझे उसके निष्कमल की आकर्षकता  
प्रतीत होती है । आशा है, आप मुझे सहायता देंगे । मैं देखती हूँ इसके  
बिना हम लोगों का स्नेह चिरस्वामी नहीं हो सकता । बैठे बिरके लार्थ  
की सीमा बाह्य पर अस्त होगी वहीं उसके शीघ्रता का भी शाप हो जायगा ।  
किशोर का हृदय कुत्ती से मात्त ठठा । इन्हीं बातों को सुनने के लिए वह  
अन्ध हो रहा था । मासली ने फिर कहा—उसके लिये इसी पूर्विका का  
दिन निश्चित है ।

फिर क्या था—किशोर सरसमुख हाकर उस नर्तन योग्या का हृदय से स्वागत करने लगा । उसके प्रेम में आज विशेष मृदुता थी ।

मासती ने उस दिन मीठे-मीठी मृदुल हंसी हसकर और कुछ-कुछ लज्जित उसे बिदा किया और चलते चलते अनुरोध कर दिया—रात की मण्डरा के निकट आज विवाह से पहिले मेट न । छेयेगी ।

महल के साथ भी यही व्यवहार हुआ । उस दिन दोनों ही कुर्सी से फूट रहे थे और छिपे छिपे आसानी का रहे थे कि कहीं दूसरे पर रहस्य न प्रकट हो जावे । हप से नींद उड़ गई थी । कुर्सी से भूक-प्यास हरण हो गई थी । बस, उसी मंगलमहलक की ठलुक् प्रतीक्षा थी ।

दोनों ने व्याह के लिये बड़ी तैयारी की—सज्जन-सज्जग गुपचुप और बिल्कुल एक दूसरे से गुपक् ।

## [ क ]

मासती का आश्रय फूलों से सजा था । बन्देन लताओं ने बढ़कर उसके द्वार पर कन्दनचारे बांधी थी । बाठाकों के द्वार पर सुलसी हुई शालाओं पर बैठकर कश्चित् मंगल गान गा रही थी ।

मासती ने भी अपने शरीर को बन्धामूपका से सजाया था । केसर के रंग में रंगी हुई साड़ी उसकी देह-लता में मिली जा रही थी ।

दायी ने द्वार काटकर बड़ी शिष्टता से मदम को भीतर बुला लिया । उसकी छाई हुई अमूल्य मेट लेकर मीठी निगाह से मुत्करले हुए



एक ओर रक्त थी ।

मदन ने अपना स्थान लिया ही था कि किशोर ने प्रवेश किया । उसकी भी अनुपम प्रशस्ति-स्मृति को वाली में उसी तरह से भर रक्त किया । किशोर भी वहीं मण्डप के नीचे बैठ गया ।

आज ही प्रथम बार वे दोनों मासती के वहाँ साव-साव पकड़े थे । दोनों का ठाठ निराशा था । दोनों राजकुमारों की तरह खनकर आने थे, और इस प्रकार बैठे थे जैसे एक दूसरे को जानता ही न हो । दोनों म्ल ही मन कुद रहे थे ।

इसी समय दोनों की आँखों में अमिरबाध और आश्चर्य की लुट्टि करते हुए मासती ने प्रवेश किया । आज लज्जा और छद्म से उसकी शोभा अपार हो रही थी । वह एक अनिमित्त सुन्दर युवक के हाव का आभय लिए हुए थी । मण्डप में प्रवेश करते ही उसने किर्कटवन्धिमूढ़ इन दोनों युवकों को अनेकानेक कथनाव देते हुए कहना आरम्भ किया—आप लोगों को कितना बड़ दुआ है, मैं जानती हूँ । आप ही की असीम कृपा से आज मुझपर प्राप्त हुआ है जब कि मेरे आराध्यदेव वहाँ उपस्थित हुए हैं । उनके लिये मैंने जीवन की अमूल्य भक्तियों में, एकांत निर्जन में कठोर तपस्या की थी, आज वे आप लोगों के सामने हैं । आप लोग ही हमारे माता पिता माई कन्धु हैं । आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने स्वामी की परम सेवा के उपयुक्त हो सकूँ ।—पर वे दोनों अवाक एक दूसरे को ठाक रहे थे । उनकी मुक्त भी मस्तिन और विचर्य हो गई था । कोई उत्तर सुन से न निकलता था ।

वहाँ से लौट आने पर एक बार फिर मरुत और किशोर एक हो गये । अभी तक वे हिमालय की चपन सुन्दर उपत्यका में विचरते हैं । माताजी वहाँ से चली गई है, पर उसकी याद कभी कभी उन दोनों के मन को म्लानि से भर देती है । वे अपने उस पागलपन पर हँसते भी हैं और शक्ति भी पर तु ह से एक शब्द भी उस संन्यस में निकालते डरते हैं ।

## निष्फल-स्वप्न

अहम के कप्तान हडसन ने अपने एक मस्तूह के कन्वै में उगड़ी मकाकर कहा—लानतोंने ! वे क्षितिज पर बाइल उठ रहे हैं ! क्या तुम उनके गियन में कुछ कह सकते हो ?

लानतोंने ने मर्दन फिराकर अबाव बिना—मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि वे हठमी तेजी से बढ़ रहे हैं, जिसका उन्हें कभी अन्विकार नहीं।

हडसन ने कपसा हस बिना फिर कहा—उनके अन्विकार का बिचार करना हमारे बस के बाहर की बात है।

लानतोंने ने ठही तरह लापरवाही से सिर हिलाकर कहा—बेशक !

कप्तान अपने कमचारियों को हुक्म देने वाला था कि इस का एक बोरेदार मोका आग, और अहम तीन फर्तीय की बूरी पर जा पहुँचा। हडसन ने को नहीं जाने दिया। उसके सिने यह लापरवाह बात थी। उसने पिछाकर कहा—एधन।

दूधरे ही क्षण एक-दो-तीन गन्धों ने अहम को बुरी तरह झकझोर डाला। बस पहले समुद्र को शांति और सोम्य था, बसने ऐसा मयङ्कर रूप बदल किन्ना, जिसकी उपमा बेसकर समझना असंभव है।

पक्षताकार भीषण लहरों पर वह हजारों मम का जहाज टूटी पत्ती की तरह झपने लगा । ऐसा बार बिकट शब्द होने लगा कि कानों के परदे फटे जाते थे । मात्स्य पकड़ा था कि जैसे सारा ब्रह्माण्ड ठलट-पुसट कर मलम की तैयारी में लगा है । बायीं की तरह मतवाली ध्वजस्तम्भ अक्षराणि और उसमें वे तरंग मालाएँ खरीब पर्वत श्रेणियों की तरह डेक के ऊपर से निकल जाती थीं ।

विश्राब्धों का ज्ञान नहीं रह गया था । एकाएक अभूतपूर्व बज्जनाद से उस मन्दिर त्पन्न का मी हृदय हिल गया । जहाज एक मंजी कठोर ज्वालन से टकरा गया । दूधरे चरा ठम्पल लहरों और उद्दण्ड वायु के झोंकों से सर्वांक और अर्धमृत लाशों के शरीर समुद्र में बिखर गये । जहाज के टूटे हुए मखल बेकार हो गये । छारे कल पुर्बे लहरों में हफ़र उफ़र बहने लगे । बेकत बेकत जहाज का नाम निशान मिट गया । केवल विराटकाम तरंग-सम्राट अपनी दुर्बल शक्ति का अपूर्व प्रदर्शन करते हुए लहरों का हाहाकार मचाये रहे । मनुष्य की कुछ हीन मेरखा तन्त्र के साम्राज्य की तरह विलीयमान हो गई ।

## [ दो ]

मोरच अन्धकार को बेचकर शुभ्र, सौम्य, शान्त और उज्ज्वल प्रमात धीरे-धीरे पूर्ब आकाश से उदय हुआ । कसों या वह भीषण त्पन्न और किन्नर या वह महाप्रलय ! आदी-सोमे के सितारों से उज्ज्वल सैकड़ कूत कल की राशि से कितना मिला था, लेकिन अदृश्य-अभिन्न शक्ति के पाछ बही

निकल-स्वप्न ]

कितना समीप था ? सामने विविध तक पेसी हुई अपरिमित नील जल-राशि  
 कितनी शांत और आर्चनल थी ! उसे देखकर नील कह सकता था कि  
 वही सीमा सागर सञ्चल होने पर बेसा उम्पल हो जाता है ! जब सानतोमे  
 ने सिर ठठाकर सूर्य की अक्षय-किरण की ओर देखा, तो वे सारी बातें  
 उसके मन में एक साथ आकर प्रविष्ट हो गईं । उसने अपने विविध शरीर  
 को बन्धु के उसी विद्यौने पर अलस भाव से बल दिया । झल्लें कब  
 करतीं । और कब राशि की मटना का अपनी समस्त शक्ति से स्पर्श करने  
 लगती । लेकिन वह कैसे किनारे का लगा, बहाव क्या हूब यथा और सब  
 शोभों की क्या दशा हुई ! इसका कोई आभास उसे न मिल सका ।

सानतोमे ने झल्लें झोलाकर एक बार अपने चारों ओर देखा ।  
 सामने वही महोदधि इहराकर नीलवर्ण मेघ की तरह गुपचाप छा रहा था ।  
 ऐसा प्रतीत होता था जैसे कल की उदयक बोहा के बरपाव् उसे पूर्वनिगम  
 की आभयवकता हुई है, वा मन ही मन शान्ति के भाव से मरकर सु ह ठका  
 नहीं कर रहा है । सानतोमे ठठकर बैठ गया, पीछे निबल बाहुआमय  
 प्रवेश था । उसके स्वभाव में सदा से जो आपरवाही और मल्ली थी वह इस  
 समय न जाने क्यों दूर हो गई थी, और उसका कीम मुलमल्ला विरता के  
 गभीर मेघों से आच्छन्न हो गया था । वह ठठकर कड़ा हो गया और चारों  
 ओर म्बकुल दृष्टि पीकाने लगा ।

समुद्र के महामयकर लफान से, या कहिये मलु के सु ह से, निकल  
 आने की उसे झुरी हानी चाहिये थी । जिस ऐसी शक्ति ने उसे सुपुष्ट  
 उपद्रव पर से बाहर मुवा दिया था, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकटा करने के

बढ़ते वह मन ही मन शिन्न ॥ गया । हुआ वह कारण नहीं कि वह कुत्सप  
 का बहक एक बार मौत की पूरी फफणा सह लेने के बाद मुबारक फिर उसी  
 से माफी लेने के आसार दिखाई दे रहे थे । इस समय वह वा समुद्रों के  
 बीच में कड़ा या एक बाजू का समुद्र या और एक वह जिससे निकलकर  
 ठहरे प्रायः बचते थे । बानों निर्जन थे । कहीं कोई नगर न आता था ।

हानतोंने कबाल आदमी था । कबाली की अर्धग शरीर में मरी थी ।  
 रस-रस में उल्लुङ्गता का लुन लहरा रहा था । वह आ गझाई लेकर कगार के  
 ऊपर एक-एक पैर रखता हुआ बढ़ गया । चारों ओर उत बिछड़ विहीन,  
 निर्धन निस्सन्ध, अनहिल बल बल प्रदेश की ओर देखा, कहीं कोई कष्टम  
 आता जाता दिखाई न देता था । एक दीर्घ निवास लेकर वह उठर ही रहा  
 था कि एकएक उलझी इधि पास ही पड़ी हुई किसी श्वेतवस्तु पर पड़ी ।  
 उसने समझा, समुद्र का केन एक स्थान पर आ लगा है, वही पूर्व की  
 फिरफों में मिलमिता रहा है, तबानि बगैर देखे उससे रहा भी न मना ।  
 वह झुकी से उसके अनुसन्धान के लिये चल पड़ा ।

### [ तीन ]

उसका अनुमान एकदम गलत न था, श्वेत कल से सिपटा हुआ  
 एक अस्तम्यस्त शरीर समुद्र की लहरों में पड़कर गड़ा आ गया था । उस  
 कमरूप स्थान में एक जीवित या मृत कैसे भी छापी की प्रत्यक्ष अवस्थिति से  
 सामर्थ्य का इतक अनिर्बचनीय आनन्द से ओतप्रोत हो गया । उसने अपने  
 बड़े और सिद्धि शरीर की परवाह न करके उस शरीर से केन को दूर

इसी समय लान्तोने एकाएक उद्युक्त पड़ा, और जोर से लंबी हिसाफ़र निझाया । करीब दो मील की दूरी पर एक जहाज जा रहा था । अनुकूल बहने वाली हवा ने सौभाग्य से उसका सकेत बस तक पहुँचा दिया । एक क्षण में जहाज में अपना बल बदल दिया । अब मारे लुट्टी के सालोने वागस्त हुआ जा रहा था ; पर अमेरिकन उसी तरह उदात्त मान से उसकी ओर देख रहा था । आखिर उसने कहा—लान्तोने ! यदि कभी हम भार्सिलीज पहुँच जायें, तो पहलू के उस पार भागियों की बस्ती में जरूर जाना । वहीं शहरून के बगीचे के पास अगूर की बेसि से दफा हुआ, एक मकान मिलेगा । वह मेरी प्रेयसी का घर है । अगर वह उसमें न मिले—और नहीं मिलेगी, क्योंकि आज शाम के बाद वह सदा से मेरी होकर भी मेरी न रहेगी—तो लोगों से बचा लग्न कर जरा उसके पास तक चले जाना । आज मेरे प्रतिस्पर्धी जोसेफ के साथ उसके जीवन का सम्बन्ध-सूत्र प्रविष्ट कर दिया जायगा । कृपाकर मिसिज जोसेफ के पास मेरी विद्युत्ता का स्ना-चार पहुँचाना न भूलना कि अमेरिकन वहाँ से आकर ज़ौब में मर्ती हो गया था । परिन्देरे सिपाही के पद से बहकर वह सेना का नसान हो गया । उसने अनेक मुझ विजय किये । अतने भाग्य और समय की शर्त उसके पिता ने लगाई थी, उससे सहस्र गुना उसके पैरों पर लोडते थे । वह चाहता, तो बीच में ही झूटकर ने सारी शर्तें पूरी कर डालता ; पर महत्वाकांक्षा ने उसे ऐसा करने से रोक दिया । कुर्मग्य उसे एक मुझ में ले गया । यराबन हाथ रही । वह बन्दी हो गया । अतस्त विराजो एक व्याप्त महासागर के दून-निर्जन दापू में, एक अति भयंकर ज़िन्दे में, बन्द कर दिया गया । घारे

सुनार की ओर से वह मुखा दिशा गया था, पर किसी की याद में उसका अस्मिन्मन्त्रमय शरीर सदा ही व्याकुल रहता था । वह एक निश्चित तिथि यशना में हर समय अपनी आत्मा इन्द्रिया का व्यस्त रहता था । एक दिन वह पहरेदारों आदि की जरा भी परवाह न करके मृत्यु का मुख समझकर, समुद्र में कूद पड़ा । मृत्यु का डर अब उसे नहीं था । डर या समय के निष्कल जाने का । पर हाव । वह कहाँ हुआ । अन्त में उसे अविनियोगित की ॥ उपलब्धि हुई ।

जहाँ से लूटी हुई बोली अब किनारे का गई थी । लानताने ने जिमेरिन से बहुत का कहा, पर वह तैयार न हुआ । बोला—आओ मित्र, तुम आओ । मेरे लिए अब संसार में कुछ नहीं है । सारे प्रकार, समस्त सार्वभौम का अस्तित्व एकदम लुप्त हो गया है । अब मैं ही तुम्हें अकेला कर दिया है तो संसार में साक्षी-साक्षियों की चेष्टा करना निष्कल और व्यर्थ होगा ।

लानताने को आग्रहपूर्वक नाव पर बुलाकर वह निर्विकार भाव से आकर मद्धमी पकड़ने लगा । कीड़े की असमर्थ किनारे ने उसे अन्त में कर दिया । लानताने एक गहरी सास लेकर, हर्ष और विषाद के मध्य से बरोदान हाँकर मीठी से मुँह में ठा—वह कौन सा द्वीप है ?

अभी इसका नामकरण नहीं हुआ—कहकर मीठी बहने-आती बंध लेने लगा ।

[ आर ]

को बात स्वयं जिमेरिन ने नहीं छापी थी, लानताने किस तरह



इसी समय खानतौने एकदम उड़ल पड़ा, और खोर से भंडी हिलाकर निघान्त । करीब दो मील की दूरी पर एक बहाज का रहा था । अनुकूल बहने वाली हवा ने सौभाग्य से उसका संकेत उस तक पहुँचा दिया । एक क्षण में बहाज ने अपना रुक बंद कर दिया । अब मारे मुरी के खानतौने पागल हुआ का रहा था । पर किमेरिन उसी तरह उदास माँह से उसकी ओर देख रहा था । आखिर उसने कहा—खानतौने ! यदि कभी तुम मार्सिसीव पहुँच जाया, तो पहचानी के उस पार मामिन्सों की बस्ती में बस जाना । वही शहर के बगीचे के पास, खगूर की बेल्सि से ठका हुआ, एक मकान मिलेगा । वह मेरी प्रेयसी का घर है । अगर वह उसमें न मिले—और नहीं मिलेगी क्योंकि आज शाम के बाद वह सदा से मेरी होकर भी मेरी न रहेगी—तो लोगों से बता लगा कर जरा उसके पास तक चले जाना । आज मेरे प्रतिस्पर्द्धी जोसेफ के साथ उसके जीवन का सम्बन्ध-सूत्र प्रविष्ट कर दिया जायगा । हुआकर सिसेस जोसेफ के पास मेरी निष्पत्ता का समाचार पहुँचाना न भूलना कि किमेरिन वहाँ से आकर पीछे में मर्ती होगया था । बरि-बरी सिपाही के बंद से बंदकर वह सेना का बखान हो गया । उसने अनेक कुछ विजय किये । अतने माग्य और वमब की शर्त उसके पिता से लगाई थी, उससे सहज गुना उसके पैरों पर लोड़ते थे । वह चाहता, तो बीच में ही लौटकर वे सारी शर्तें पूरी कर जायता । पर महासाम्राज्या ने उसे ऐसा करने से रोक दिया । बुर्भाग्य उसे एक कुछ में ले गया । पयजब हाथ रही । वह बन्दी हो गया । अनन्त दिशाओं तक व्याप्त महासागर के सूक्ष्म-निर्जन टापू में, एक अति मंदकर जिले में, बन्द कर दिया गया । सारे

कमल की ओर से वह मुखा दिख गया था, पर किसी की धड़ में चलता प्रतिफलराम्य शरीर वहाँ ही स्थिर रहता था । वह एक निश्चिन्त निद्रि-  
 कवना में हर समय अपनी आत्मा इन्द्रियों का मन्त्र रहता था । एक दिन वह  
 शरीरों आदि की जरा सी परवाह न करके, मृत्यु का तुम्ह ममम्बर,  
 छत्र में हूँ पड़ा । मृत्यु का हर सब उसे नहीं था । हर था समय के  
 निष्कल जाने का । हर रात । वह कहाँ हुआ । अन्त में उसे अग्रिम  
 अवस्था की ही उपलब्धि हुई ।

अब वह खूनी हुई होकर सब किनारे का गई थी । लालताने ने  
 विमोहित हो खड़े हो कहा, वह वह हैकर न हुआ । बन्ना—अन्ना निज,  
 हम आत्मा । मेरे लिए सब संसार में कुछ नहीं है । तार प्रकाश, समस्त  
 कार्यकला का अन्तिम एकदम संपन्न शक्ति है । वह भाव ने ही मुझे  
 अकेला कर दिया है, तो संसार में बाकी-सर्वज्ञों की शक्ति करना निष्कल  
 और स्वयं होकर ।

लालताने की आत्माशुद्धि नाव पर बढ़ाकर वह निर्विकार भाव से  
 आकर मद्धकी बचने लग्य । छोटे छोटे अलमल किनारे ने उसे आनंद में  
 कर दिया । लालताने एक महान् लीन होकर, हर और विवाद के भाव से  
 शरीराल होकर योगी न पूछ दिया—कह कौन था हीन है ।

अभी इसका नामकरण नहीं हुआ—कहकर योगी कहते-कहती  
 बात लेन लग्य ।

इसी समय जालघोमे एकाएक उखल उठा, और जोर से रॉई  
 रिसाकर बिछाया । करीब दो मील की दूरी पर एक जहाज था रहा था ।  
 अनुकूल बहने वाली हवा में सौभाग्य से उलका सकत उस तक पहुँचा दिख ।  
 एक घण्ट में जहाज ने अपना दस्त बरस दिया । अब मेरे कुरी के जालघोमे  
 पागल हुआ था रहा था । पर क्रिमेरिन उसी तरह उदास भाव से उसकी  
 ओर देख रहा था । आसिर उसने कहा—जालघोमे ! यदि कभी तुम  
 मार्सिसोथ पहुँच जाओ, तो पहाड़ी के उस पार माफिसोथ की बस्ती में बसर  
 जाना । वहाँ राष्ट्र के बगीचे के पास, जंगल की बैलि से टका हुआ,  
 एक मकान मिलेगा । वह मेरी मेवली का घर है । जमर वह उससे न  
 मिले—और नहीं मिलेगी, क्योंकि आज शाम के बाद वह उदा से मेरी होकर  
 भी मेरी न रहेगी—तो लोगों से बसा लग्न कर कर उसके पास तक चले  
 जाना । आज मेरे प्रतिस्पर्धी जोसेफ के साथ उसके जीवन का सम्बन्ध-द्वय  
 प्रविष्ट कर दिया जा रहा । हुआकर मिलेस जोसेफ के पास मेरी निश्चिन्ता का समा-  
 पन पहुँचाना न भूलना कि क्रिमेरिन वहाँ से आकर जीवन में मर्ती होगया था ।  
 धीरे-धीरे सिपाही के बंद से बढ़कर वह सेना का जमान हो गया । उसने  
 अनेक मुझ विजय किये । जितने माण्य और धन की शर्त उसके पिता  
 ने लगाई थी, उससे सहस्र गुना उसके पैरों पर कोटछे है । वह चाहता, तो  
 जीवन में ही लौटकर वे सारी शर्तें पूरी कर सकता । पर महलाकाबा ने उसे  
 ऐसा करने से रोक दिया । कुर्मांग उसे एक मुझ में ही मग्न । परमेश्वर हाथ  
 रही । वह बन्दी हो गया । अमन्त विशाखों तक आते महाकाव्य के शून्य-  
 निर्जन राहू में, एक अति मर्यकर कितो में, बन्द कर दिया गया । चारों

वह उसकी ओर भी उसी के साथ नहीं गई ; और वह बराबर जिमेरिन की प्रतीक्षा में बैठी रहती थी । अभी ठीक तीन घण्टे पहले वह निराश और हताश होकर वहाँ से नहीं गई है । उसने आकाश बुझा दी रहने का कठिन प्रयत्न ठाना है । वह एक छिन्ने-से गर्म में रहती है । अभी तक कभी-कभी आकाश से बिड़ल होकर वह आकाशों से उठरनेवाले तारों को देखने आती है । खानदानों को ऐसा माहूम पड़ा, जैसे एक बार फिर से दृष्टान्त उसके नाशों की ओर से घेर रहा है । ओह ! यदि वह सीधे सीधी समस्त मार्सिनीय जाता । यदि एलिसा अपने प्रियतम का संदेश पाकर उसके मिलने के लिये न भी बौझ सकती, तो उसके हताश हृदय के भीतर आकाश का एक तार झन-झन कर उड़ता, और वह बात सुनाकर जिमेरिन को वापस लाकर आना बुझकर न था ।

[ 'प्रातः' ]

अपने लापरवाह स्वभाव पर समाम होय महकर वह एलिसा की संज्ञा में स्वप्न-मार्ग से जाता पड़ा । जिस समय वह तीसरे दिन उस अनिष्ट प्रसंगों में मारी ने जागकर उसके द्वार तक पहुँचा, तो भूल भ्रम के कारण वह फिरकर कुछ देर के लिये बेहोश हो गया ।

आँख खुली, तो देखा, एलिसा उसके सिर पर फूल के छंदी दे रही है । खानदानों ने किया परिचय के ही उसे पहचान लिया था उसने इस तरह सम्बोधन करके कहा, जैसे निरस्तन काल से वह उसे पहचानती हो । उसने कहा—एलिसा ! जिमेरिन अभी तक बीठा है । वह समय के आग्रह नहीं

उसका अनुमान करता : इधरलिए तीन बार पाँच से गुजर जाने पर श्रीकृष्णने मरिचिहीन में जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी । खीचा था, जब कभी ठण्डा शहर में जाता होगा, तब देख लूँगा । वह कुलह-संवाद कभी न भी पहुँचाया था, ता कोई हल नहीं । और वह कौन कह सकता है कि वहाँ उसके मुनने के लिए कोई बटा ही होगा ? बरखों के पुनने और शिविल में म को कोई मुचली अपने हृदय में बाल-पाँच रही हामें, इस पर लानतोंने को कतई चिरबास न था ।

इधरलिए ठीक पाँच बरस बाद उस शहर में जाने पर वह बहाम से ठहरकर पक्षिमा का बता लगाने लगा ।

बड़ी मुश्किल से एक बूढ़ी औरत ने बतलाना—ठीक है, उस तरफ सत्रह-बोसह बरस पहले एक कर था । वहाँ पक्षिमा रहती थी, पर अब कई छाता से वहाँ नहीं है । अगर उस नाम की औरत से जाइने, वहाँ मातूम कीजिने । शायद कुछ बता सके । यह तो बहुत दिनों की बात है ।

लानतोंने ठहर गया । वहाँ न तो पक्षिमा का मकान था, न अगूर की बेसि । केवल लंकाहर देखाकर इतना ही अनुमान हो सकता था कि वहाँ कभी स्तुप्न रहते थे । बहुत देर तक लानतोंने वहाँ एक प्राचीन वृक्ष की छाया में बैठा हुआ पक्षिमा की कल्पना करता रहा । फिर इधर ठहर पहुँचाई करने से मातूम हुआ कि वह किनारे से दूर किसी गगर में रहती है । छाब ही वह भी मातूम हुआ कि पिता की मृत्तु के बाद उसने ब्योरेक को कोरेड उधर दे दिया था कि पिता की प्रतिष्ठा पावन के लिए वह तैयार नहीं है ।

वह उनकी नीम थी, ऊँची के साथ चली गई और वह बरकर त्रिमेरिस की प्रतीक्षा में बैठी रहती थी। अभी सिर्फ तीन बरस पहले वह निराश और हताश होकर वहाँ से चली गई है। उसने आन्ध्रम कुमारी रहने का कठिन प्रयत्न ठाका है। वह एक छोटे-से गाँव में रहती है। अभी तक कभी-कभी आशा से बिहस होकर वह जहाजों से उतरनेवाले लोगों को देखने जाती है। जानतेले को ऐसा मालूम पड़ा, जैसे एक बार फिर से तृप्यन्त उसके चारों ओर से घेर रहा है। ओक। यदि वह सीधा जहाँ समय मार्क्सिनीय जाता आता। यदि एलिजा अपने प्रियतम का संदेश वाकर उसके मिलने के लिये न भी रोक सकती, तो उसके हताश हृदय के भीतर आशा का एक तार झन-झन कर उठता, और वह बात सुनाकर त्रिमेरिस का श्वास क्षान्ध जाता हुआ न था।

## [ \* बाँध ]

अपने लानरबाह स्वयं पर तयाम दाव मढ़कर वह एलिजा की तलाश में स्वयं-मार्ग से चल पड़ा। जिस समय वह तीव्र दिग्गज जलजल पर्वतों में चलकर उसके द्वार तक पहुँचा था मूल जल के कागज वह फिरकर कुछ देर के लिये बेहारा हा गया।

अन्ध सुती, हा देखा, एलिजा उसके तिर पर चल कर छुट्टि दे रही है। जानतेले ने बिना परिचय के ही उस पहिचान लिया था उसने हज मग्न सम्पन्न करक कहा, जैसे विरन्ध्र जल न वह उस पहिचाननी हा। उसने कहा—एलिजा! त्रिमेरिस अभी तक जीता है। वह समय के अग्रज नहीं

निष्कर्ष-स्वप्न ]

आ सका, ईछलिय उछने अपना संदेश कहने को मुझे भेजा है । उसे स्वप्न  
बता कि तुमने जांचेक से बग़ाह नहीं किया है । ओफ़ । नहीं तो वह बकर  
ही भाटा । वही सब सांचकर उछने संसार त्याग दिया है ।

इस तरह उछने मस्तिन बेव चरिणी मुरम्माई हुई लता तुम्ह  
बकरा एलिजा से सारी कथा कह सुनाई । एलिजा की आँखों से मर मर  
आँसू गिरने लगे । वह बेर से ककर लाने क ककर लाने से किसी  
तरह नाराज न हुई, बल्कि अपने ही मस्तक को पीछे धाँसा ।

जो मूल लाने में स्वप्न की थी, उसके उत्तरदायित्व ने तथा  
उन मस्ति-मुग्ध के मार्मिक और ककर बिरह में उसे सबबुर किया, और  
वह अपने भाषा की बड़ी भाष में एलिजा को लेकर एक बार फिर तरंगकुल  
महासागर के बड़ को चरिता हुआ उस अमास निर्बल द्वीप की ओर  
चल दिया ।

अस्तित्व सूर्य की आरक्त किरणों के साथ वह बोट भी मौल-मल-  
प्रचलित ऊँचे किनारे से जा लगा । लाने में अटपट ऊपर चढ़ गया, रस्ती  
बालकर उछने एलिजा को भी ऊपर लीच दिया । देखा थोड़ी दूर पर  
जहाँ वह झा छाँट वहलें भाष पर चढ़ा था, जहाँ वह जिमेरिन को मस्तली  
पकड़ते छोड़ गया था, वहीं ठोक ठकी लान पर समुद्र की धार ताकता हुआ  
वह भाष भी बैठा है । वह मस्तक एलिजा को लेकर उछर दौड़ा । सोचा  
था, चुपचाप जाकर उसे सामने करके वह मित्र का चक्रित कर दैग्य । पर  
जहाँ पहुँचते-पहुँचते वे दोनों लुर ही चक्रित और मूर्तिभूत कड़े रह गये ।  
आह । जिमेरिन का मिथ्या शरीर दल दल में बँधा हुआ कड़ा था ।

एलिजा और लानटोने दोनों की आंखों से आंसू टुकटुक रहे थे ।  
 वह बेचारी कन्या के अन्धकार में उसी तरह लकी-लकी घाबरी रही कि  
 उसका जीवन भी वैसा निष्कल-स्वप्न था ।